साहित्य अमृत
मासिक

वर्ष-२३ अंक-१० ❖ पृष्ठ ८४ | ज्येष्ठ, संवत्-२०७५ | मई २०१८

संस्थापक संपादक
स्व. पं. विद्यानिवास मिश्र

पूर्व संपादक
स्व. डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

संपादक
त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

प्रबंध संपादक
श्यामसुंदर

संयुक्त संपादक
डॉ. हेमंत कुकरेती

कार्यालय
४/१९, आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-११०००२
फोन : २३२८९७७७ • फैक्स : २३२५३२३३
इ-मेल : sahityaamrit@gmail.com

शुल्क
एक अंक —₹ ३०
वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—₹ ३००
वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—₹ ४००
विदेश में
एक अंक—चार यू.एस. डॉलर (US$4)
वार्षिक—पैंतालीस यू.एस. डॉलर (US$45)

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी श्यामसुंदर द्वारा
४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२
से प्रकाशित एवं ग्राफिक वर्ल्ड, १६८६,
कूचा दखनीराय, दरियागंज, नई दिल्ली-२ द्वारा मुद्रित।

साहित्य अमृत में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

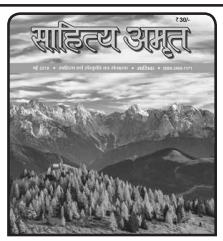

इस अंक में

संपादकीय
अभिव्यक्ति का अधिकार व सहनशीलता ४

प्रतिस्मृति
अमृताश्व/ *राहुल सांकृत्यायन* ९

कहानी
छोटू/ *नीरजा माधव* १४
बाबू साहब/ *राजेश सहाय* २२
संवेदना/ *लक्ष्मी रूपल* ३४
पैंतरेबाज/ *दामोदर दत्त दीक्षित* ४६
अपना-पराया/ *रंजना किशोर* ५८
मिड-डे मील/ *मंजरी शुक्ला* ६४

आलेख
हिंदी पत्रकारिता के मूल्यों के प्रतिमान गणेश शंकर विद्यार्थी/ *कृपाशंकर चौबे* १८
वैदिक वाङ्मय में जल का महत्त्व/ *शकुंतला शर्मा* २८
नैतिक-सामाजिक मूल्य और साहित्य/ *सुरेश शर्मा* ३८

लघुकथा
अंधानुकरण/ रचना गौड़ 'भारती' २७
नकली मोती/ रचना गौड़ 'भारती' ५७
दर्जा/ रचना गौड़ 'भारती' ६३

कविता
झुकाता शीश जिसे संसार/ बाबूलाल शर्मा 'प्रेम' २१
फिरता मारा-मारा क्यों/ *कृपा शंकर शर्मा 'अचूक'* ३७
ईश्वर तेरी दुनिया में/ *मालिनी गौतम* ४१
दहलीज के भीतर/ *रचना दीक्षित* ४४
आँसू बनकर बह गई/ *पुरु मालव* ४५
आराध्या/ *रवींद्र कुमार उपाध्याय* ४८
उसको बारंबार प्रणाम/ *बसंता* ४९
घंटों तक घूरता है/ *तुषार सिंह* ६९
नारी ईश्वर की अवतार/ *रीमा मौर्या* ७५

संस्मरण
कुछ साहित्यिक महाविभूतियाँ/ *श्रीधर द्विवेदी* ३०

राम झरोखे बैठ के
दूसरों को दोष देने की प्रतिभा/ *गोपाल चतुर्वेदी* ४२

स्मरण
केदारनाथ सिंह : सिर्फ मेरी दिनचर्या बदल जाएगी/ *हेमंत कुकरेती* ५०

व्यंग्य
भैयाजी/ *शंकरलाल माहेश्वरी* ६०

साहित्य का भारतीय परिपार्श्व
बड़े क्लोजअप का फ्रीज शॉट/ *सुनील दास* ५४

साहित्य का विश्व परिपार्श्व
भाग्यवान् लड़का/ *रेमन डेल वालेक्लेन* ६२

लोक-साहित्य
राजस्थान के विश्वप्रसिद्ध लोक-वाद्ययंत्र/ *दुर्गादत्त ओझा* ६६

यात्रा-वृत्तांत
उदयपुर व आबू की यात्रा/ *रुक्मणी संगल* ७०

बाल-संसार
हिरणा की सूझ/ *मथुरा कलौनी* ७४

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ ७६
वर्ग-पहेली ७७
साहित्यिक गतिविधियाँ ७८

संपादकीय

अभिव्यक्ति का अधिकार व सहनशीलता

हम अभिव्यक्ति के अधिकार के समर्थक हैं, और जब-जब किसी पुस्तक, आलेख या कलाकृति को प्रतिबंधित करने की माँग उठी है, तब इस स्तंभ में विरोध करते रहे हैं। इसी प्रकार किसी वक्ता को कुछ लोग नहीं सुनना चाहते हैं तो उस सभा को अस्त-व्यस्त या भंग करने की कोशिश को वाजिब नहीं कहा जा सकता है। हमारे यहाँ शास्त्रार्थ की परंपरा रही है। तर्क का उत्तर तर्क द्वारा होना चाहिए। हमारे यहाँ खजुराहो आदि में ऐसी कलाकृतियाँ हैं, विदेशी जिनकी आलोचना करते हैं, क्योंकि वे उनके निहित अर्थों को समझ नहीं पाते हैं। हमारे यहाँ रोमन कैथोलिक चर्च की तरह इनक्विजश्न जैसी प्रथा नहीं रही है, न पुस्तकों या पुस्तकालयों को जलाया जाता है और न उनके पढ़ने पर कोई बंधन। हमारे यहाँ ईशनिंदा अथवा धर्मनिंदा (अपधर्म) जैसे सिद्धांत नहीं रहे हैं। चार्वाक ऋषि माने जाते हैं, यद्यपि वे घोर नास्तिक और भौतिकवादी थे। भर्तृहरि ने शृंगार शतक लिखा और नीति तथा वैराग्य शतकों की भी रचना की। कामशास्त्र को शास्त्र की मान्यता है और इसके रचनाकार वात्सायन को ऋषितुल्य माना जाता है। गैलीलियो सिंड्रोम को भारत में पनपने नहीं दिया गया। आज जब देखो, यह बहाना लेकर कि हमारी भावनाओं को चोट पहुँच रही है, कोई भी वर्ग खड़ा हो जाता है और शांति भंग की नौबत आ जाती है।

पिछले दिनों पद्मावत फिल्म को लेकर कितना हंगामा हुआ। सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के बाद, जो राज्य सरकारें उसके प्रदर्शन पर रोक लगाने की घोषणा कर चुकी थीं, उन्हें भी पीछे हटना पड़ा। स्वयंभू नेता और हुड़दंग मचानेवाले सिरफिरे लोग दुम दबाकर बैठ गए। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि यदि सेंसर बोर्ड किसी फिल्म या डॉक्युमेंट्री को मंजूरी देता है, तो वह सर्वमान्य होना चाहिए। उसके बाद एक ब्राह्मण संगठन ने आवाज उठाई कि रानी लक्ष्मीबाई पर जो फिल्म बनाई जा रही है, उससे ब्राह्मणों की भावनाओं को क्षति पहुँचेगी। मामला बहुत आगे नहीं बढ़ा, स्पष्टीकरण के बाद विरोधी तत्त्व शांत हो गए। केवल सुर्खियों में आने के लिए कुछ लोग इस प्रकार के विवाद बिना सोचे-समझे खड़े करते हैं। अब गुरु नानक देव पर एक सिख अनुयायी सिक्का ने फिल्म बनाई, उसका विरोध हुआ है। सिक्का का कहना है कि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी से पहले इसकी स्वीकृति मिल चुकी थी। सिक्का ने सर्वोच्च न्यायालय में गुहार लगाई। न्यायालय ने वही निर्णय दिया, यदि सेंसर बोर्ड से अनुमति या सर्टिफिकेट मिल गया है तो फिल्म दिखाई जा सकती है। सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि सृजनात्मक कृतियों में इस प्रकार धर्म के नाम पर हस्तक्षेप अस्वीकार्य है। सिक्का ने यह भी कहा कि पंजाब में वे फिल्म को प्रदर्शित नहीं करेंगे, किंतु फिर भी विरोध शुरू हो गया। यही नहीं, वे एस.जी.पी.सी. के फैसले के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में क्यों गए, इस कारण उनको पंथ से निकाल दिया गया, यानी तनखैया घोषित कर दिया। उनके बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ था, उसको भी कैंसिल कर दिया गया, मानो कुछ ऐसा हुआ ही नहीं। गुरु नानकदेव हम सबके अत्यंत आदर के पात्र हैं, फिर इस प्रकार की असहिष्णुता क्यों, यह समझ में नहीं आता है। राम जेठमलानी सर्वोच्च न्यायालय में सिक्का के वकील हैं। सिक्का के अनुसार उनकी फिल्म गुरु नानकदेव के सिद्धांतों का ही प्रचार करती है। यह भी विचित्र है कि तथाकथित उदारवादी बुद्धिवादी इस विषय में चुप्पी साधे बैठे हैं।

इसी संदर्भ में देश में एक होड़ सी प्रारंभ हो रही है—महान् व्यक्तियों की मूर्तियाँ तोड़ने की या उनके साथ छेड़छाड़ करने की; उसकी भी हम भर्त्सना करते हैं। हमें इस विषय में सहनशीलता दिखानी चाहिए। पेरियार, डॉ. अंबेडकर, डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी, गांधीजी की मूर्तियों के साथ छेड़छाड़ करने, कालिख पोतने या तोड़ने के समाचार मिले हैं। यह खेदजनक है। इन सब नेताओं का देश के लिए अपना-अपना अवदान रहा है। उन्होंने अपनी सोच के अनुसार देश और समाज की सेवा की है। उनके विचार मानने या न मानने के लिए हर व्यक्ति स्वतंत्र है। हमको यह अधिकार नहीं है कि किसी के आदर्श पुरुषों की मूर्ति तोड़कर उनके दिल को दुखाएँ। यह काम नासमझ लोगों का है या ऐसे असामाजिक तत्त्वों का है, जो समाज में उत्पात पैदा करना चाहते हैं। विभाजित समाज को और विभाजित करना चाहते हैं। त्रिपुरा में राज्य परिवर्तन के बाद लेनिन की मूर्ति गिरा दी गई, हम उसको भी गलत और अनुचित ही कहेंगे। बेशक लेनिन के विचारों से सहमत न हों, पर कोई इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि वह एक मौलिक चिंतक थे, जिनकी विचारधारा वैश्विक विचारधारा का एक भाग बन गई है। व्यावहारिक रूप से हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि प्रजातंत्र में सत्ता-परिवर्तन होते रहते हैं और जिनका आदर हम करते हैं, उनकी मूर्तियों का अनादर न हो। अनेक विदेशी महापुरुषों की मूर्तियाँ देश में स्थापित हैं, उनके नाम से सड़कें हैं।

रामास्वामी पेरियार तमिलनाडु में कांग्रेस के बड़े नेता रहे हैं, पिछड़े वर्गों में आत्मसम्मान और सामाजिक न्याय के प्रति सतर्कता जाग्रत् करने में उनकी महती भूमिका रही है। गांधीजी को हमने राष्ट्रपिता की संज्ञा दी है। उनके विषय में कुछ और कहना आवश्यक नहीं है। डॉ. अंबेडकर हमारे संविधान के निर्माताओं में मुख्य हैं। संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने इस विषय में संविधान सभा में ही उनकी बहुत सराहना की थी। उनकी विद्वत्ता की सब धाक मानते हैं और उनके सतत प्रयास के कारण ही आज दलित वर्गों में आशा और आकांक्षाएँ पैदा हुई हैं तथा एक शिक्षित नेतृत्व उभर रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी की सेवाएँ, कश्मीर के विलयन में जान की बाजी लगा देना, देश

के विभाजन के समय बंगाल के विभाजन के लिए संघर्ष आदि इतिहास में रेखांकित हैं। इस विषय में न केवल राज्य सरकारों को सतर्क रहने और कड़ा रुख अपनाने की आवश्यकता है, राजनैतिक दलों को भी अपने उत्तरदायित्व का भान होना चाहिए।

शीर्ष न्यायालय का स्पष्टीकरण

२० मार्च को सर्वोच्च न्यायालय ने एक फैसले में कहा कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के उत्पीड़न के कानून के कारण निर्दोष व्यक्तियों को भी जेल जाना पड़ता है, क्योंकि एक शिकायतकर्ता की शिकायत के बाद न किसी प्रकार की जाँच होती है और न आरोपी व्यक्ति को जमानत मिल सकती है। उन्होंने गिरफ्तारी के पहले कुछ शर्तें लगाईं, इससे दलित वर्गों में बहुत उत्तेजना फैल गई। उनका कहना है कि यह विशेष कानून इसलिए बनाया गया था, ताकि इन वर्गों को न्याय मिल सके, क्योंकि ये बेचारे उससे वंचित रहते हैं। सत्ता दल के कई सांसद इस विषय में बहुत मुखर हुए, विरोधी दलों को भी यह प्रचारित करने का एक अच्छा मौका मिला कि मोदी सरकार दलित विरोधी है। सरकार की ओर से कहा गया कि वह कानूनी दृष्टि से सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का अध्ययन कर रहे हैं और शीघ्र आगे की काररवाई करेंगे। इस बीच में यह मामला तूल पकड़ता गया। दलित वर्गों में काफी भ्रम फैल गया कि सरकार आरक्षण में भी कमी करेगी, उसे कमजोर करेगी, जैसे कि सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय ने उनके उत्पीड़न निरोधक कानून को कमजोर कर दिया गया। दलित समुदाय में रोष तो वाजिब है कि उनको सैकड़ों साल से न्याय और मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया है। पिछले दिनों भी कुछ क्षेत्रों से दलितों के उत्पीड़न, उनकी महिलाओं के साथ बलात्कार आदि के समाचार आते रहे हैं। इससे वातावरण काफी दूषित हो गया। दुर्भाग्य से यह सिलसिला अब भी जारी है। विरोधी दलों द्वारा इन भावनाओं का राजनीतीकरण हो रहा है, क्योंकि २०१९ में आम चुनाव होनेवाले हैं। २०१४ के आम चुनाव में अनुसूचित जातियों और जनजातियों का बहुत बड़ा समर्थन नरेंद्र मोदी को मिला। भाजपा में ही अनुसूचित जाति और जनजातियों के सर्वाधिक सांसद हैं। बसपा को तो एक भी सीट नहीं मिली थी।

विरोधी दलों को इस मामले में तिनके का सहारा मिल गया। भाजपा, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ एंटी-दलित हैं, यह प्रोपेगेंडा जोर पकड़ने लगा। सरकार की ओर से कहा गया कि कानून को डायलूट नहीं होने देंगे, पर जितनी जोर से और जिस प्रभावी ढंग से कहा जाना चाहिए था, वह संभवत: नहीं हुआ। सरकार ने जब निर्णय लिया कि वह पुनर्निरीक्षण के लिए सर्वोच्च न्यायालय से अनुरोध करेगी, यह संदेश भी सर्वसाधारण तक नहीं पहुँचा। टीवी पर एकपक्षीय दृष्टिकोण ही काबिज रहा। मार्च की छुट्टियों के कारण भी रिव्यू में देरी हुई। इस बीच अनेक छोटे-मोटे दलित समुदाय के दलों ने सोशल मीडिया पर २ अप्रैल को भारत बंद का आह्वान किया। विरोधी दलों की शह तो थी ही। राहुल तथा अन्य जनप्रतिनिधि विरोध जताने के लिए राष्ट्रपति से मिले थे, यह सब जानकारी इन वर्गों तक पहुँची। गृह मंत्रालय ने राज्यों को भारत बंद के विषय में सावधानी बरतने की सलाह तो भेजी, पर खुफिया तंत्र को, एक बंद बिना नेतृत्व के इतना विशद हो सकता है, इसका अनुमान न था बंद की संभावित गंभीरता का आकलन गुप्तचर विभाग नहीं कर सका। जिसमें करीब १२ व्यक्तियों की जान गई। सरकार (कहना चाहिए जनता) के माल का कितना नुकसान हुआ, इस समय कहना कठिन है। इसके जवाब में तथाकथित अगड़े वर्गों के कुछ गुटों ने सोशल मीडिया द्वारा १० अप्रैल को आरक्षण विरोध में भारत बंद की घोषणा की। मध्य प्रदेश, राजस्थान में थोड़ा-बहुत असर रहा, किंतु ऐसे सिरफिरे लोगों के कारण माहौल तो व्यर्थ में बिगड़ता ही है।

केंद्र सरकार की ओर से एटॉर्नी जनरल ने सर्वोच्च न्यायालय में अपने निर्णय को स्थगित करने का अनुरोध किया, पर स्थगन प्रस्ताव को न्यायालय ने अस्वीकार कर दिया। कोर्ट का कहना था कि जिन लोगों ने विरोध किया है, उन्होंने निर्णय को न पढ़ा है और न समझा है। अपने निर्णय के द्वारा न्यायालय ने अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के उत्पीड़न निरोधक कानून की प्रक्रिया को और मजबूत ही बनाया है। एटॉर्नी जनरल वेणुगोपाल ने अपने लिखित आवेदन में बहुत तर्क दिए हैं। कहा है कि न्यायालय को इस प्रकार के निर्णय का अधिकार नहीं है। न्यायालय ने पार्लियामेंट या विधायिका के क्षेत्र में हस्तक्षेप किया है, जो स्वीकार नहीं किया जा सकता है। आगे मामला न्यायालय में सुना जाएगा, क्या नतीजा निकलता है, यह तभी पता चलेगा। दलित वर्गों की ओर से यह माँग भी है कि केंद्र सरकार अध्यादेश के द्वारा न्यायालय के फैसले को निरस्त करे, ताकि प्रभावित लोगों का आक्रोश शांत हो। आक्रोश को तुरंत ठंडा करने का यह तरीका है, परंतु अध्यादेश को भी चुनौती दी जा सकती है और न्यायालय उसको स्थगित कर सकता है। हम समझते हैं कि केंद्र सरकार अध्यादेश के रास्ते को न अपनाकर न्यायालय की अगली तारीख का इंतजार करेगी। वैसे समाचार है कि जरूरत पड़ने पर अध्यादेश भी तैयार है। केंद्रीय सरकार के अतिरिक्त केरल सरकार ने भी पुनर्निरीक्षण के लिए आवेदन किया। अब राजस्थान, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड की सरकार भी फैसले के रिव्यू के लिए सर्वोच्च न्यायालय जा रही हैं। देखना है कि इस संवेदनशील विषय में न्यायालय का क्या रुख रहता है। दलितों का विक्षोभ समाप्त होना चाहिए और देश में शांतिपूर्ण वातावरण रहे, ताकि सबका साथ, सबका विकास में अनावश्यक रुकावटें न आएँ।

यह तो रहा कानूनी पक्ष, पर इस विवाद का एक गंभीर राजनैतिक पक्ष भी है, जो २०१९ के आम चुनाव से संबंधित है। संयोग से १४ अप्रैल को डॉ. भीमराव अंबेडकर का १२७वीं जयंती दिवस भी था। भारतीय जनता पार्टी को एक सत्तारूढ़ होने के कारण ही नहीं, बल्कि उसके अपने भारत की एकता, अखंडता तथा समरसता में अटल विश्वास के कारण भी आवश्यक है कि दलित वर्ग की भ्रांतियों के निवारण के लिए जो भी कदम जरूरी हों, वे शीघ्रतातिशीघ्र उठाए जाएँ और निरंतर ध्यान रखा जाए कि उनका अनुपालन सही तरीके से हो। प्रधानमंत्री का यह कहना काफी हद तक सही है कि पिछले चार वर्षों में जो काम उनकी सरकार ने दलित वर्ग के लिए किए, वैसे कांग्रेस के इतने लंबे शासन में नहीं हुए। 'जन धन', 'उज्ज्वला', मुद्रा आदि का लाभ बड़े पैमाने पर

उपेक्षित समुदायों को हुआ है। इसी प्रकार की अन्य योजनाएँ हैं, जैसे स्टार्ट अप आदि, जिनसे कार्यक्षमता बढ़ती है, उसका भी फायदा उन्हें हो रहा है। जिस प्रकार शिक्षा आदि की सुविधा से उपेक्षित वर्गों में मुखर एवं कुशल नेतृत्व उभरकर सामने आया है, उसी प्रकार कुछ समय के उपरांत इन योजनाओं का लाभ दिखने लगेगा, क्योंकि ये योजनाएँ उनको सक्षम बनाने अथवा शक्तीकरण की योजनाएँ हैं, ये लुभावनी वस्तुओं का वितरण नहीं हैं। लंदन में जिस स्थान पर डॉ. अंबेडकर अपने प्रवास में रहे, उसको सरकार ने खरीद लिया है। उसको भारतीय विद्यार्थियों के रहने के उपयोग में लाया जाएगा। दिल्ली में अलीपुर रोड पर, जहाँ डॉ. अंबेडकर का निधन हुआ, प्रधानमंत्री ने उसका उद्घाटन मेमोरियल के रूप में किया। वहाँ शोध, प्रदर्शनी, गोष्ठियों आदि सबकी व्यवस्था है।

बस्तर में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने नक्सलवादियों से अपील की कि वे हथियार रख दें, बाबासाहब अंबेडकर ने जो संविधान दिया है, उनमें उनके अधिकार दिए हुए हैं और उसका कार्यान्वयन सरकार का काम है। 'आयुष्मान भारत', जो स्वास्थ्य एवं चिकित्सा की सुविधाओं की दृष्टि से एक बहुत बड़ा कदम है, उसके प्रारंभ की घोषणा भी प्रधानमंत्री ने की है। यह एक क्रांतिकारी कदम साबित होगा। प्रधानमंत्री ने यह भी अपने भाषण में कहा कि वे एक गरीब माँ के बेटे और पिछड़े वर्ग के होने के बावजूद प्रधानमंत्री बन सके, क्योंकि बाबासाहब ने जन-साधारण में अपने अधिकारों के विषय में चेतना का प्रसार कर दिया था। उन्हीं को श्रेय है मेरे प्रधानमंत्री बनने का। पिछले दिनों में जो घटनाएँ हुई हैं और जिनके कारण दलितों में भाजपा के प्रति जो शंका उत्पन्न हुई है, उसके समाधान के लिए सरकार और पार्टी स्तर पर भाजपा को अपनी रणनीति ऐसी बनानी होगी, जिसके नतीजे तुरंत दिखाई दें और जो दीर्घकालीन दृष्टि से भी दलितों को शक्तिवान बनाएँ। उनकी शिकायत-शिकवों पर तुरंत ध्यान देने की आवश्यकता है। कुछ राज्य सरकारों ने भी डॉ. अंबेडकर की जयंती के अवसर पर कुछ सुविधाओं और योजनाओं की घोषणा की है, पर उनको ध्यान देना जरूरी है कि जो वादे किए गए हैं, उनका कड़ाई से अनुपालन हो और उसका लाभ इन वर्गों को मिले। सबसे जरूरी है कि समाज में सबकी मानसिकता बदले। ये सब वर्ग हमारे ही हैं, अपने हैं और उनकी उन्नति के सब मार्ग प्रशस्त होने चाहिए। समता, समरसता और भाईचारे के निर्माण की भरसक कोशिश होनी चाहिए।

एक बात हम फिर दोहराना चाहेंगे कि पार्टी के नेताओं, सांसदों, विधानसभा के सदस्यों को, वे जो बोलते हैं, उन्हें अपने शब्दों को तौलकर कहना चाहिए। वाणी में संतुलन आवश्यक है। आचरण भी ऐसा होना चाहिए कि कथनी और करनी में भेद न लगे। आजकल टीवी और सोशल मीडिया का जमाना है। एक भी शब्द अगर गलत निकला तो बात का बतंगड़ बन जाता है। उसे मीडिया सनसनीखेज बना देता है। कितनी भी सफाई दी जाए, वह कोई प्रभाव नहीं छोड़ती। भले पार्टी भी उसे नकार दे, किंतु उसको बार-बार दोहराया ही जाता है और वह लोगों के दिमाग में घर कर जाती है। इससे सावधान रहना बड़ा जरूरी है। बड़बोलों की जबान पर नियंत्रण जरूरी है। भावनाओं में उद्वेलित होकर वे क्या कह रहे हैं, उसका क्या नतीजा होगा, उसका उन्हें भान नहीं रहता। इससे पार्टी की सदाशयता और ईमानदारी को गंभीर नुकसान होता है। उनकी स्वयं की पार्टी भाजपा, जिसे राष्ट्रवादी कहा जाता है, जो सामाजिक सौष्ठव, समरसता और भाईचारे के लिए प्रयत्नशील है, उसको समाज-विभाजक और दलित विरोधी कहने तथा बदनाम करने की सामग्री इन बड़बोलों के कथन से मिल जाती है। माननीय राष्ट्रपति ने डॉ. अंबेडकर के जन्मस्थान मऊ जाकर अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित किए। अपने उद्बोधन में उन्होंने याद दिलाया कि लोकतंत्रीय व्यवस्था में अराजकता, असंवैधानिक तौर-तरीकों का कोई स्थान नहीं है। हर विवादास्पद मसले को कानून और संविधान के दायरे में हल करना होगा। डॉ. अंबेडकर के इस संदेश की देश को आज के वातावरण में, जब राजनीति सब सीमाओं का उल्लंघन करती दिखती है, बहुत आवश्यकता है।

कठुआ और उन्नाव कांड

कठुआ (जम्मू-कश्मीर) और उन्नाव (उ.प्र.) की दो बालिकाओं के बलात्कार के मामलों ने निर्भया केस के बाद पुनः देश का दिल और दिमाग फिर झकझोर दिया है। कठुआ की तरह सूरत में भी इसी प्रकार एक नाबालिग बालिका के साथ सामूहिक बलात्कार और उसके बाद हत्या का समाचार आया है। कठुआ में एक बकरवाल की आठ साल की लड़की अपने जानवरों को जंगल से लाने गई थी, उसका अपहरण हो गया और बाद में लाश पाई गई। बकरवाल एक घुमंतू जाति है, जो जानवरों को पालती है। सर्दी के मौसम में ये पहाड़ियों से मैदानी इलाके में आते हैं और गरमियों में फिर चारे की तलाश में पहाड़ियों में चले जाते हैं। ये अधिकतर मुसलमान होते हैं। इन चरवाहों ने ही १९४७ में और फिर कारगिल में पाकिस्तान से आए आक्रमणकारियों की जानकारी कश्मीर अधिकारियों को दी थी। यह एक मुसलमान बालिका थी। ऐसे तथ्य मीडिया में आए हैं और उनके विवरण में जानना अनावश्यक है, जो हुआ वह जघन्य अपराध है। फिर भी यह मामला और भी दयनीय है। उसके पिता ने बताया कि इस लड़की को, जब वह घुटनों चलती थी, तभी अपने एक रिश्तेदार से गोद ले लिया था, चूँकि इसके दो लड़के एक दुर्घटना के शिकार हो गए थे। माँ-बाप की सांत्वना के लिए रिश्तेदार ने इस लड़की को दे दिया था और आशा थी कि वह बड़ी होकर अपने असली माँ-बाप के पास चली जाएगी। जब भी इसकी असली माँ और बहनें इसको वापस आने के लिए कहती थीं तो उसका उत्तर यही होता था कि मैं आ जाऊँगी तो मेरे माँ-बाप अकेले रह जाएँगे और फिर जानवरों की देखभाल कौन करेगा? आरोपी हिंदू हैं और कहा जाने लगा कि उनको झूठा फँसाया जा रहा है। उनमें एक पुलिसवाला भी है। जघन्य अपराध का कोई धर्म नहीं होता। जम्मू का वातावरण ऐसा सांप्रदायिक हो गया कि हिंदू एकता मंच के अंतर्गत न केवल भाजपा के, बल्कि कांग्रेस, एनसीपी, पैंथर्स पार्टी आदि के लोग शामिल हो गए और उन्होंने आंदोलन शुरू कर दिया कि मामले की तफतीश राज्य का क्राइम ब्रांच न करे, यह केस सी.बी.आई. को दे दिया जाए। क्राइम ब्रांच ने जाँच पूरी कर ली, पर कठुआ बार एसोसिएशन और जम्मू बार एसोसिएशन ने

चार्जशीट को अदालत में पेश करने में अड़चन पहुँचाई।

हत्याकांड और बलात्कार की शिकार बच्ची के परिवार की ओर से वकील दीपिका सिंह राजावत को भी धमकियाँ मिलने लगीं कि वह अपने को इस मामले से अलग कर लें। सर्वोच्च न्यायालय और बार एसोसिएशन ने स्थानीय बार एसोसिएशनों को चेतनावनी दी और कानून में अड़चन न पहुँचाने की ताकीद की। आंदोलन में भाजपा के दो मंत्री भी शामिल थे, उन्होंने जाँच सी.बी.आई. के द्वारा होने की माँग का समर्थन किया। यह अत्यंत अनुचित था, उन्हें इस्तीफा देना पड़ा। स्थानीय वकीलों का कार्य उनकी व्यावसायिक तथा नैतिक संहिता के खिलाफ था। अब मुकदमा शुरू हो गया है। इस बालिका को गाँववालों ने वहाँ दफन नहीं होने दिया, जहाँ परिवार के और लोग दफन हुए थे। उसको आठ कि.मी. दूर जंगल में एक बकरवाल की जमीन में दफनाया गया। दु:खी माँ-बाप, जिन्होंने गोद लिया था, इस वर्ष वे एक महीने पहले ही पहाड़ की ओर चले गए। हिंदू एकता मंच की काररवाई को किसी रूप में ठीक नहीं माना जा सकता। स्थानीय बार एसोसिएशन का रुख तो बहुत ही गलत था। वे अपने व्यवसाय और मानवीय कर्तव्यों को भूल गए। जम्मू-कश्मीर पुलिस ने आरोप-पत्र के दाखिले में बाधा पहुँचाने के लिए कुछ वकीलों के खिलाफ प्राथमिकी भी दर्ज कराई है। लड़की के असली पिता ने सर्वोच्च न्यायालय से प्रार्थना की है कि जम्मू के सांप्रदायिक वातावरण में न्याय की आशा नहीं है, अतएव मुकदमा चंडीगढ़ स्थानांतरित किया जाए। राज्य सरकार से जवाब माँगा गया है, उसके बाद न्यायालय निर्णय करेगा। सर्वोच्च न्यायालय ने परिवार और उसके वकील दीपिका सिंह राजावत की सुरक्षा के निर्देश दिए हैं। देश में जगह-जगह इस बलात्कार को लेकर प्रदर्शन हो रहे हैं। विरोधी दल तो ऐसे समय में तरह-तरह से मामला उठाकर आग में घी डालने का काम करेंगे ही। न्यायपालिका के कार्य में इस प्रकार बाधा डालना एक प्रकार से संविधान को चुनौती है। धर्म के चश्मे से अपराध को देखना सर्वथा निंदनीय है। इस प्रकरण का संज्ञान राष्ट्र संघ के सेक्रेटरी जनरल ने भी लिया है। व्यर्थ में कुछ व्यक्तियों की अदूरदर्शिता के कारण मानवीय अधिकारों के संरक्षण की दृष्टि से वे देश के चेहरे पर कालिख पोतने का काम कर रहे हैं।

इसी प्रकार उन्नाव कांड भी देश में लज्जा और विवाद का विषय बन गया है। तथ्यों के विवेचन की आवश्यकता नहीं। एक लड़की के साथ बांगरमऊ के विधायक कुलदीप सिंह सेंगर, उनके भाई और अन्य लोगों ने पिछले वर्ष सामूहिक बलात्कार किया, जब वह नाबालिग थी। पीड़िता का बयान अब लखनऊ में सी.बी.आई. अदालत में दर्ज हो गया है। पीड़िता के पिता को विधायक सेंगर के एक भाई ने बहुत मारा और पुलिस ने उसको जेल में बंद कर दिया, जहाँ उसकी मृत्यु हो गई। दलबदल विधायक सेंगर हर राजनैतिक दल की ओर से विधायक रह चुका है। बाहुबली है और क्षेत्र में उसकी धाक है। ऐसा मालूम होता है कि स्थानीय प्रशासन ने उसके दबदबे में मामले को दबाने का काम किया। अब डॉक्टर और कुछ अधिकारी निलंबित कर दिए गए हैं। विधायक का भाई पहले ही गिरफ्तार कर लिया गया। विधायक की गिरफ्तारी में पुलिस आनाकानी करती रही। इसी से असंतोष बढ़ा। जगह-जगह प्रदर्शन हुए और राज्य सरकार की कटु आलोचना हुई। डी.जी.पी. और राज्य के गृह सचिव पर समाजवादी पार्टी ने विधायक सेंगर को बचाने का अभियोग लगाया है। केस सी.बी.आई. को देने के बाद आवश्यक काररवाई शुरू हो गई है। सेंगर अब हिरासत में है। कुछ और अपराधी पकड़े गए हैं। आगे न्यायालय निर्णय करेगा, किंतु कुछ हीलाहवाली ऐसे मामले में हुई, इससे उत्तर प्रदेश सरकार की साख और प्रतिष्ठा को गहरा धक्का लगा है। इस प्रकार के आचरण से विरोधियों को भाजपा को महिला विरोधी तथा अल्पसंख्यक विरोधी बताने का मौका मिलता है। प्रधानमंत्री ने दोनों बलात्कार और हत्याकांडों की कड़ी भर्त्सना की है, उससे जनता में विश्वास पैदा होगा। उन्होंने संपूर्ण न्याय का आश्वासन दिया है। यदि प्रधानमंत्री अपनी सब व्यस्तताओं के बावजूद पहले अपनी बात कह देते तो माहौल दूसरे प्रकार का होता। दोषियों को चाहे वे किसी भी जाति के हों, किसी भी दल के हों, उनको राज्य प्रशासन से किसी प्रकार की मदद नहीं मिल सकती है। यह संदेश जनता में जाना चाहिए। राज्य की संवैधानिक शक्ति, नैतिक शक्ति के सामने चाहे कोई कितना भी बाहुबली हो, चाहे कितना भी पैसेवाला हो, मुकाबला नहीं कर सकता। अपने राजधर्म के निर्वाह करने में ही राज्य की सार्थकता है।

भ्रष्टाचार और बैंक घोटाले

एक और प्रकरण चिंता का विषय है। यह है भ्रष्टाचार का विषय, परोक्ष और अपरोक्ष रूप में। मलय्या, नीरव मोदी और चौकसी के बाद नए-नए घोटाले सामने आ रहे हैं। विजिलेंस कमीशन की चेतावनी के बाद भी पंजाब नेशनल बैंक ने नियमों में सुधार तथा संवेदनशील पदों पर कितने दिन किसी व्यक्ति को रखना चाहिए इत्यादि, मुद्दों की ओर ध्यान नहीं दिया। क्यों? किसी के बाहरी दबाव के कारण अथवा अधिकारियों की निष्क्रियता की वजह से अथवा राजनेताओं, बैंक अधिकारियों और निदेशक मंडल की मिलीभगत के कारण। यु.को. बैंक के पूर्व सी.ई.ओ. और अध्यक्ष कौल को करोड़ों रुपए के घोटाले के आरोप में गिरफ्तार किया है। प्रश्न उठता है कि इनफोर्समेंट विभाग, इनकम टैक्स विभाग, फ्रॉड ऑफिस आदि निगरानी क्यों नहीं रख रहे हैं। यही बात रिजर्व बैंक और वित्त मंत्रालय के बारे में भी कुछ हद तक कही जा सकती है। पहले एन.पी.ए. के बारे में आशा रहती थी कि कुछ अंश तो वसूल हो ही जाएगा। पिछले वर्षों में ऐसा हुआ भी। रिजर्व बैंक के आँकड़ों के अनुसार वापसी में भी अब कमी ही होती जाती है। चाहे पब्लिक सेक्टर के बैंक हों अथवा प्राइवेट, दोनों ही समस्याओं से ग्रस्त हैं, अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि पब्लिक सेक्टर बैंकों का निजीकरण एक विश्वसनीय नीति है। व्यवस्था में बहुत परिवर्तन करने होंगे। अब वोडाफोन के धूत आई.सी.आई.सी. लोन ट्रांजेक्शनों पर प्रश्नचिह्न लगा रहे हैं। आई.सी.आई.सी. की सीओ चंदा कोचर के पति के व्यापारिक संबंध धूत के वीडियोकॉन से हैं। ६४ करोड़ का लाभ उन्हें हुआ है। उनसे सी.बी.आई. की पूछताछ चल रही है। उनके बोर्ड के लिहाज से इसमें कोई Conflict of Interest हुआ, अभी कहा

नहीं जा सकता है कि बैंक के और सी.ई.ओ. के दायित्व के बीच कोई आपसी लेन-देने हुआ है। इसकी जानकारी नहीं है।

नैतिकता एवं औचित्य का सवाल तो उठता ही है। क्या यह व्यवहार उचित था। कोचर के देवर से भी पूछताछ की गई। उन्हें सिंगापुर जाने से रोका गया। कहा जाता है, उनके पति पर भी विदेश जाने की पाबंदी है। उधर एक्सिस बैंक की सी.ई.ओ. श्रीमती शर्मा का जो कार्यकाल बढ़ाया गया था, उसे भी दिसंबर तक सीमित कर दिया गया है। इन सब बातों से बैंक व्यवस्था की साख घटती है। आर्थिक दृष्टि से इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। उधर सरकार में देखें तो एक जे.पी. अग्रवाल, जो गृह मंत्रालय में संयुक्त सचिव थे और उसके बाद डी. डी.ए. में हाउसिंग कमिशनर बने, रिश्वत लेते रँगे हाथ पकड़े गए। इसी प्रकार समाचार आया कि पाँच सौ से अधिक आई.पी.एस. अधिकारियों ने, अपनी वार्षिक प्रॉपर्टी की जो रिपोर्ट देनी पड़ती है, नहीं दी है। कुछ दिनों पहले आई.ए.एस. अधिकारियों और इंडियन फॉरेस्ट सर्विस के अधिकारियों के बारे में समाचार आया था। अधिकारी इसको गंभीरता से क्यों नहीं लेते हैं ? कारण कि स्वयं सरकार इस मामले में गंभीर नहीं है। जो अधिकारी कोताही करते हैं, सरकार उनके विरुद्ध काररवाई नहीं करती है। इस सबमें जाति-पाँति, राजनैतिक संबंध आड़े आ जाते हैं। ऐसे में हम कैसे प्रशासनिक व्यवस्था के चुस्त और ईमानदार होने की आशा कर सकते हैं। हम स्वच्छ प्रशासन, निष्पक्षता और पारदर्शी चाहते हैं, वे केवल मौखिक जुमले बनकर रह जाते हैं। उच्च स्तर पर चाहे थोड़े ही अधिकारी दोषी हों, उनका कुप्रभाव दीर्घ दृष्टि से गहरा और व्यापक होता है।

लोक का प्रभाष

लब्ध-प्रतिष्ठित पत्रकार एवं बहुआयामी सोशल एक्टिविस्ट प्रभाष जोशी की जीवनी देखकर प्रसन्नता हुई। 'लोक का प्रभाष' के लेखक रमाशंकर कुशवाहा बधाई के पात्र हैं। (राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्रकाशन) रामबहादुर राय का पुरोकथन महत्त्वपूर्ण है। वह न केवल प्रभाष जोशी के जीवन एवं कार्यशैली को उजागर करता है वरन् किस प्रकार का मार्गदर्शन एक संपूर्ण जीवनी के लेखन के लिए नए युवा लेखक को मिला, उसका भी कुछ विवेचन इसमें है। इससे लेखक के प्रयास को उल्लेखनीय सफलता मिली। प्रभाषाजी के बारे में सामग्री एकत्र करने के लिए, जहाँ जोशीजी का रहना हुआ, लेखक वहाँ गया और उनके मित्रों, सहयोगियों व जाननेवालों से साक्षात्कार के द्वारा जानकारी प्राप्त की। लेखक ने प्रभाष जोशी के अपने लेखन का भी पूरा उपयोग किया। राम बहादुर राय ने प्रभाषजी के लेखन को 'आत्मकथ्य शैली' की संज्ञा दी है। प्रारंभ से जब कहा जाए, जो प्रभाष जोशी के निर्माण का काल है, से लेकर अंत तक हम एक जीवंतता की झलक पाते हैं। किन-किन समस्याओं से प्रभाषजी को गुजरना पड़ा, किन-किन नेताओं और वे विशिष्ट व्यक्तियों के संपर्क में आए, किन महत्त्वपूर्ण घटनाओं में किस प्रकार की भूमिका जोशीजी की रही और उनकी कैसी प्रतिक्रियाएँ रहीं, इन सब पर पुस्तक प्रकाश डालती है। इस प्रकार लेखक प्रभाष जोशी के सजीव व्यक्तित्व व कृतित्व को बड़ी रोचकता से प्रस्तुत करता है। कुशवाहा कृत प्रभाष जोशी की जीवनी समकालीन भारतीय इतिहास को समझने में भी सहायक है। पुस्तक पत्रकारिता के विद्यार्थियों के लिए तो उपयोगी है ही, बहुत कुछ राजनेताओं के बंद मानसिक वातायन को खोलने का काम कर सकती है। कॉलेजों, विश्वविद्यालयों और जनपुस्तकालयों में इसे समुचित स्थान मिलना चाहिए। कुछ आश्चर्य ही है कि प्रभाषजी की जीवनी की जैसी चर्चा होनी चाहिए थी, वह देखने में नहीं आई।

मैं हिंदू क्यों हूँ?

इन दिनों देश में जो विचार-विमर्श, जो प्राय: विवाद का भी रूप ले लेता है कि 'आइडिया ऑफ इंडिया क्या है,' अर्थात् जब हम भारत की बात करते हैं तो हमारी किस प्रकार के भारत की अवधारणा है। इसी से मिला-जुला सवाल हिंदुइज्म और हिंदुत्व का है। इस पृष्ठभूमि में शशि थरूर ने अपनी पुस्तक 'व्हाई आई एम ए हिंदू' (मैं हिंदू क्यों हूँ) का प्रणयन किया है। एक लंबे फलक पर विषय के विवेचन की चेष्टा थरूर ने की है। प्रकाशन है रूपा, दिल्ली। प्रारंभ में उन्होंने हिंदुइज्म क्या है, कैसे हिंदू धर्म में उनका विश्वास है, उसकी विविधिता एवं उदारता की चर्चा की है। थरूर का कहना सही है कि हिंदुइज्म एक सभ्यता है, कोई मत नहीं है। उसमें अपधर्म जैसा कोई विचार नहीं है। अपनी-अपनी कल्पना के अनुसार हर हिंदू अपने ईश्वर की कल्पना करता है। वे चारों वेदों, उपनिषदों और पुराणों का जिक्र करते हैं। शंकर और आचार्यों के अवदान का जिक्र है। भक्ति आंदोलन की चर्चा है। हिंदुइज्म को ब्रिटिश शासन की प्रतिक्रिया और उसके उपरांत राम मोहन राय, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, स्वामी दयानंद का उल्लेख है, साथ ही ब्रह्मसमाज, रामकृष्ण मिशन तथा आर्यसमाज की चर्चा है। प्रथम भाग कुल मिलाकर हिंदू धर्म, आस्थाओं, रीति-रिवाज आदि से संबंधित है। पुस्तक का दूसरा भाग, जिसे उन्होंने पालिटिकल या राजनैतिक हिंदूवाद कहा है। वहाँ उनके अपने व्यक्तिगत विचार हैं, राजनैतिक दृष्टिकोण और कांग्रेस का नजरिए का दिग्दर्शन है। वीर सावरकर, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, डॉ. हेडगेवार, गोलवलकरजी के विचारों को उन्होंने अपने दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है, जहाँ बहुत से पाठकों का विरोध होना स्वाभाविक है। उसी में भारतीय जनता पार्टी तथा राम जन्मभूमि आंदोलन भी आ जाते हैं। नरेंद्र मोदी सरकार की आलोचना है कि वह देश के उन नेताओं के 'प्रोप्रिएट' अपने में शामिल करने की कोशिश करती है, यद्यपि उनका भाजपा की विचारधारा से संबंध नहीं है। यह एक विवादास्पद विषय है। अपने-अपने विचार हैं, अपने-अपने दृष्टिकोण, उनको समझने की जरूरत है। पुस्तक रोचक ढंग से लिखी गई है और लेखक के अपने दृष्टिकोण को रेखांकित करती है। एक पठनीय पुस्तक है। हिंदू धर्म या हिंदुइज्म एक गतिशील और परिवर्तनशील धर्म है, संकुचित संप्रदाय नहीं। समय के साथ उसमें परंपरा और आधुनिकता के सामंजस्य की अद्‌भुत क्षमता है।

त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

(त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी)

अमृताश्व

देश : मध्य-एशिया; पामीर (उत्तर-कुरु)
जाति : हिंदी-ईरानी
काल : ३००० ई.पू.

● **राहुल सांकृत्यायन**

(९-४-१८९३—१४-४-१९६३)

फर्गाना के हरे-हरे पहाड़, जगह-जगह बहती सरिताएँ तथा चश्मे कितने सुंदर हैं। इसे वही जान सकते हैं, जिन्होंने काश्मीर की सुषमा देखी है। हेमंत बीतकर बसंत आ गया है और बसंतश्री उस पार्वत्य उपत्यका को भू-स्वर्ग बना रही है। पशुपाल अपने हेमंत-निवासों गिरि-गुहाओं या पाषाण-गृहों से निकलकर विस्तृत गोचर-भूमि में चले आए हैं। उनके घोड़े के बाल के तंबुओं से, जिनमें अधिकतर लाल रंग के हैं—धुआँ निकल रहा है। अभी एक तंबू से एक तरुणी मशक को कंधे से लटकाए नीचे पत्थरों पर अट्टहास करती सरिता के तट की ओर चली। अभी वह तंबुओं से बहुत दूर नहीं गई थी कि एक पुरुष सामने आकर खड़ा हुआ। तरुणी की भाँति उसके शरीर पर भी एक पतले सफेद ऊनी कंबल के दो छोर दाहिने कंधे पर इस तरह बँधे हुए हैं कि दाहिना हाथ, मोढ़ा और वक्षार्ध तथा घुटनों के नीचे का भाग छोड़ सारा शरीर ढका हुआ है। पुरुष के पिंगल केश, श्मश्रु सुंदर रूप से सँवारे हुए हैं। सुंदरी पुरुष को देख ठहर गई। पुरुष ने मुसकराते हुए कहा, ''सोमा! आज देर से पानी के लिए जा रही है?''

''हाँ, ऋज्राश्व! किंतु तू किधर भूल पड़ा?''

''भूला नहीं सखी! मैं तेरे ही पास चला आया।''

''मेरे पास! बहुत दिनों बाद।''

''आज सोमा याद आ गई!''

''बहुत अच्छा, मुझे पानी भरकर घर में पहुँचाना है। अमृताश्व खाने बैठा है।''

बात करते हुए दोनों नदी तक जा, घर लौटे। ऋज्राश्व ने कहा—

''अमृताश्व बड़ा हो गया।''

''हाँ, तूने तो कई वर्षों से नहीं देखा?''

''चार वर्ष से?''

''इस वक्त वह बारह वर्ष का है। सच कहती हूँ ऋज्राश्व! रूप में वह तेरे समान है।''

''कौन जाने, उस वक्त मैं भी तो तेरा कृपा-पात्र था। अमृताश्व इतने दिनों कहाँ रहा?''

''नाना के यहाँ, वाह्लीकों में।''

सुंदरी ने जलपूर्ण मशक तंबू में रखी और अपने पति कृच्छ्रश्व को ऋज्राश्व के आने की खबर दी। दोनों ओर उनके पीछे अमृताश्व भी तंबू से बाहर निकले। ऋज्राश्व ने सम्मान प्रदर्शित करते हुए कहा, ''कह मित्र कृच्छ्राश्व! तू कैसे रहा?''

''अग्निदेव की कृपा है, ऋज्राश्व! आ जा फिर, अभी-अभी सोम (भाँग) को घोटकर मधु और अश्विनी-क्षीर के साथ तैयार किया है।''

''मधु-सोम, किंतु इतने सबेरे कैसे?''

''मैं घोड़ों के रेवड़ में जा रहा हूँ। बाहर देखा नहीं, घोड़ा तैयार है।''

''तो आज शाम को लौटना नहीं चाहता!''

''शायद, इसीलिए तैयार है यह सोम की मशक और मधुर अश्व मांस।''

''अश्व-मांस!''

''हाँ, हमारे पशुओं पर अग्निदेव की कृपा है। मैं तो अश्वों को ही अधिक पालता हूँ।''

''हाँ, कृच्छ्रश्व! तेरा नाम उलटा है।''

''माँ-बाप के समय हमारे घर में अश्वों की कृच्छ्रता थी, इसीलिए यह नम रख दिया।''

''लेकिन अब तो ऋद्धाश्व होना चाहिए।''

''अच्छा, चलो भीतर।''

''किंतु मित्र! इसी देव-द्रुम की छाया में हरी घास पर क्यों न?''

''ठीक सोमा! तू ला, सोम और मांस से यहीं मित्र को तृप्त करें।''

''किंतु कृच्छ्र! तू अश्वों में जा रहा था।''

''चला जाऊँगा, आज नहीं कल। बैठ ऋज्राश्व!''

सोमा सोम की मशक और चषक (प्याले) लिये आई। दोनों मित्रों के बीच अमृताश्व भी बैठ गया। सोमा ने सोम (भाँग के रस) और चषक को धरती पर रखते हुए कहा, ''बिस्तर ला दूँ, जरा ठहरो।''

''नहीं सोमे! यह कोमल हरी घास बिस्तर से अच्छी है।'' ऋज्राश्व ने कहा।

''अच्छा, यह बतला ऋज्र! लवण के साथ उबला मांस खाएगा या आग में भूना, 'बछेड़ा आठ महीने का था। मांस बहुत कोमल है।''

''मुझे तो सोमे! भूना बछेड़ा पसंद आता है। मैं तो कभी-कभी संपूर्ण बछेड़े को आग पर भूनता हूँ। देर लगती है, किंतु मांस बहुत स्वादु होता है। और तुझे भी सोमे! मेरे चषक को अपने होंठों से मीठा करना होगा।''

‘‘हाँ, हाँ सोमे! ऋज्र बहुत समय बाद आया है।’’ कृच्छ्राश्व ने कहा।

‘‘मैं जल्दी आती हूँ, आग बहुत है, मांस भूनते देर न लगेगी।’’

कृच्छ्राश्व को चषक पर उड़ेलते देख ऋज्राश्व ने कहा, ‘‘क्या जल्दी है?’’

‘‘सोम मधुरतम है। सोमा का हाथ और सोम! सोम अमृत है। यह सोमपायी को अमृत बनाता है। पी सोम और अमृत बन जा।’’

‘‘तू अमृत क्या बनेगा, जिस तरह चषक पर चषक उड़ेले जा रहा है, उससे तो अ-चिर में मृत-सा बन जाएगा।’’

‘‘किंतु तू जानता है ऋज्र! मैं सोम से कितना प्रेम रखता हूँ?’’

इसी वक्त भुने मांस के तीन टुकड़ों को चमड़े पर लिये सोमा आकर बोली, ‘‘किंतु कृच्छ्र! तू सोमा से प्रेम नहीं रखता?’’

‘‘सोमा से भी और सोम से भी।’’ कृच्छ्र ने परिवर्तित स्वर में कहा। उसकी आँखें लाल हो रही थीं। ‘‘और सोमा, आज तुझे क्या परवाह?’’

‘‘हाँ, आज तो मैं अतिथि ऋज्र की हूँ।’’

‘‘अतिथि या पुराने मित्र की?’’ हँसने की कोशिश करते हुए कृच्छ्र ने कहा।

ऋज्राश्व ने हाथ पकड़कर सोमा को अपनी बगल में बैठा लिया और सोमपूर्ण चषक को उसके मुँह में लगा दिया। सोमा ने दो घूँट पीकर कहा, ‘‘अब तू पी ऋज्र। बहुत समय बाद यह दिन आया है।’’

ऋज्राश्व ने सारे चषक को एक साँस में साफ कर नीचे रखते हुए कहा, ‘‘तेरे होंठों के लगते ही सोमे! यह सोम कितना मीठा हो जाता है।’’

कृच्छ्राश्व पर सोम का असर होने लगा था। उसने झटपट अपने चषक को भरकर सोमा की ओर बढ़ाते हुए लड़खड़ाती जबान से कहा, ‘तो-ो-सो-ो-ो-े-े! इस—स्-से-भी-ी-म्-क-ध्-धु-र-व्-ब-ना-ा दे।’’

सोमा ने उसे होंठों से छू लौटा दिया। अमृताश्व को बड़ों के प्रेमालाप में कम रस आता था, इसलिए वह समवयस्क बालक-बालिकाओं के साथ खेलने निकल भागा। कृच्छ्राश्व ने झपी जाती पपनियों और गिरे जाते शिर के साथ कहा, ‘सो-ो-मं-े-! ग्-गा-ना-ा-ग्-गा-ऊँ?’

‘‘हाँ, तेरे जैसे गायक क्या कुरु में कहीं है?’’

‘‘ठ्-ठी-कम्-मे-रे-ज-जै-सा-ा-ग्-गा-य-क-न-हीं-ीं-तू-तो-सु-सु-न-’’

‘‘प्पि-व्-वे-े-म्-मसो-ो-मं—’’

‘‘रहने दे कृच्छ्र! देख तेरे संगीत से सारे पशु-पक्षी जंगल छोड़ भाग रहे हैं।’’

‘‘ह्, हु-म्-म!’’

इस समय सोम पी, अमृत बनने का नहीं था। आम तौर से उसका समय सूर्यास्त के बाद होता है, किंतु कृच्छ्राश्व को तो कोई बहाना मिलना चाहिए। उसके होश-हवाश छोड़ चित्त पड़ जाने पर, सोमा और ऋज्राश्व ने प्याले रख दिए तथा दोनों नदी के किनारे एक चट्टान पर जा बैठे। पहाड़ के बीच यहाँ धार कुछ समतल भूमि में बह रही थी, किंतु उसमें बड़े-छोटे पत्थरों से ढोंके भरे हुए थे। जिन पर जल टकराकर शब्द कर रहा था। पत्थरों की आड़ में जहाँ-तहाँ मछलियाँ अपने पंखों को हिलातीं चलती-फिरती दिखलाई पड़ती थीं। तट के पास की सूखी भूमि पर विशाल साल, देवदारु आदि के वृक्ष थे। पक्षियों के सुहावने गीतों के साथ फूलों से सुगंधित मंद पवन में श्वास तथा स्पर्श लेना बड़े आनंद की चीज थी। वर्षों बाद दोनों इस स्वर्गीय भू-भाग में अपने पुराने प्रेम की आवृत्ति कर रहे थे। इस वक्त फिर उन्हें वह दिन याद आ रहे थे, जबकि सोमा षोडशी पिंगला (पिंगल-केशी) थी, जब वसंतोत्सव के समय ऋज्राश्व भी वह्लीकों में अपने मामा के घर गया था। सोमा उसके मामा की लड़की थी। ऋज्राश्व भी उसके प्रेमियों में था। उस वक्त सोमा के चाहनेवालों में होड़ लगी थी, किंतु जयमाला कृच्छ्राश्व को मिली। दूसरों के साथ ऋज्राश्व को भी पराजय स्वीकार करनी पड़ी। अब सोमा कृच्छ्राश्व की पत्नी है, किंतु उस जिंदादिल युग में स्त्री ने अभी अपने को पुरुष की जंगम संपत्ति होना नहीं स्वीकार किया था, इसलिए उसे अस्थायी प्रेमी बनाने का अधिकार था। अतिथियों और मित्रों के पास स्वागत के रूप में अपनी स्त्री को भेजना, उस वक्त का सर्वमान्य सदाचार था। आज वस्तुतः सोमा ऋज्राश्व की रही।

शाम को ग्राम के नर-नारी महापितर (कबीले के मुखिया या शासक) के विस्तृत आँगन में जमा हुए। सोम, मधुसुरा और स्वादिष्ट गो-अश्व मांस लाया जा रहा था। महापितर पुत्रोत्पत्ति का महोत्सव मना रहे थे। कृच्छ्र ने अपने को हिलने-डुलने लायक नहीं रखा था, उसकी जगह सोमा और ऋज्राश्व वहाँ पहुँचे। बड़ी रात तक पान, गीत, नृत्य महोत्सव मनाया गया। सोमा के गीत और ऋज्राश्व के नृत्य को सदा की भाँति कुरुओं ने बहुत पसंद किया।

□

‘‘मधुरा! तू थक तो नहीं गई?’’

‘‘नहीं, मुझे घोड़े की सवारी पसंद है।’’

‘‘किंतु उन दस्युओं ने मुझे बुरी तरह पकड़ रखा था?’’

‘‘हाँ, बाह्लीक पक्यों की गौओं और अश्वों को नहीं, बल्कि लड़कियों को लूटने आए थे।’’

‘‘हाँ, पशु का लूटना दोनों जनों में चिरस्थायी शत्रुता पैदा करता है, किंतु कन्या को लूटना थोड़े ही समय के लिए, आखिर ससुर को जमाता का सत्कार करना ही पड़ता है।’’

‘‘किंतु मुझे तेरा नाम नहीं मालूम?’’

‘‘अमृताश्व, कृच्छ्राश्व—पुत्र, कौरव।’’

‘‘कौरव! कुरु मेरे मामा के कुल होते हैं।’’

''मधुरा, अब तू सुरक्षित है। बोल कहाँ जाना चाहती है?''

मधुरा के मुख पर कुछ प्रसन्नता की रेखा दौड़ने लगी थी, किंतु वह बीच ही में रुक गई। अमृताश्व समझ गया और बात का रुख दूसरी ओर मोड़ते हुए बोला, ''पक्थों की कन्याएँ हमारे ग्राम में भी आई हैं।''

''सभी लूटकर?''

''नहीं, उनमें मातुल पुत्रियाँ अधिक हैं।''

''तभी तो। किंतु लड़कियों के लिए यह लूट-मार मुझे बहुत बुरी मालूम होती है।''

''और मुझे भी मधुरा! वहाँ पुरुष-स्त्री यह भी जानते हैं कि उनमें प्रेम की संभावना है भी।''

''मातुल-पुत्री का ब्याह इससे अच्छा है; क्योंकि उसमें पहले से परिचित होने का मौका मिलता है।''

''तेरा कोई ऐसा प्रेमी था मधुरा?''

''नहीं, मेरी कोई बुआ नहीं है।''

''कोई दूसरा?''

''स्थायी नहीं।''

''क्या तू मुझे भाग्यवान् बना सकती है?''

''मधुरा की शर्मीली निगाहें नीची हो गईं। अमृताश्व ने कहा, ''मधुरा! ऐसे भी जनपद हैं, जहाँ स्त्रियाँ दूसरे की नहीं, अपनी होती हैं।''

''नहीं समझी अमृताश्व!''

''उन्हें कोई लूटता नहीं, उन्हें कोई सदा के लिए अपनी पत्नी नहीं बना पाता। वहाँ स्त्री-पुरुष समान होते हैं।''

''समान हथियार चला सकते हैं।''

''हाँ, स्त्री स्वतंत्र है।''

''कहाँ है वह जनपद, अमृत-आँ अमृताश्व!''

''नहीं अमृत ही कह मधुरा! वह जनपद यहाँ से पश्चिम में बहुत दूर है।''

''तू वहाँ गया है अमृत?''

''हाँ। वहाँ की स्त्री आजीवन स्वतंत्र रहती है; जैसे जंगल में स्वतंत्र विचरता मृग, जैसे आकाश उड़ती चिड़ियाँ।''

''वह बड़ा अच्छा जनपद होगा! वहाँ स्त्री को कोई नहीं लूटता न?''

''स्वतंत्र बाघिन को कौन जीते-जी लूट सकता है?''

''और पुरुष, अमृत?''

''पुरुष भी स्वतंत्र है।''

''बाल-बच्चे।''

''मधुरा! वहाँ का घर-बार दूसरी ही तरह का है और सारे ग्राम का एक परिवार होता है।''

''उसमें बाप का कर्तव्य?''

''बाप नहीं कह सकते मधुरा! वहाँ स्त्री किसी की पत्नी नहीं, उसका प्रेम स्वच्छंद है।''

''तो वहाँ कोई बाप को नहीं जानता?''

''सारे घर के पुरुष बाप हैं।''

''यह कैसा रिवाज है?''

''इसीलिए वहाँ स्त्री स्वतंत्र है; वह योद्धा है, शिकारी है।''

''और गाय-घोड़ों का पालन-पोषण?''

''वहाँ गाय-घोड़े जंगलों में पलते हैं, वैसे ही, जैसे यहाँ हिरण।''

''और भेड़-बकरियाँ?''

''वहाँ लोग पशुपालन नहीं जानते। शिकार, मछली और जंगल के फल पर गुजारा करते हैं।''

''सिर्फ शिकार! फिर उन लोगों को दूध नहीं मिलता होगा?''

''मानवी का दूध और वह भी बचपन ही में।''

''घोड़े पर चढ़ना भी नहीं?''

''नहीं। और चमड़े के सिवा दूसरा परिधान भी नहीं जानते।''

''उन्हें बड़ा दुःख होता होगा?''

''किंतु वहाँ की स्त्रियाँ स्वतंत्र, पुरुषों की तरह स्वतंत्र हैं। वे फल जमा करती हैं, शिकार करती हैं, युद्ध में शत्रुओं पर पाषाण-परशु और बाण चलाती हैं।''

''मुझे भी यह पसंद है। मैंने शस्त्र चलाना सीखा है, किंतु युद्ध में पुरुषों की भाँति जाने का सुभीता कहाँ?''

''पुरुष ने यह काम अपने ऊपर लिया है। घोड़ों, गायों, भेड़-बकरियों को वह पालता है, स्त्री को उसने पशु-पत्नी नहीं, गृह-पत्नी बनाया है।''

''और लड़कियों को लूटने लायक बनाया है। वहाँ तो लड़कियाँ नहीं लूटी जाती होंगी, अमृत?''

''एक जन के लड़के-लड़की सदा उसी जन में रहते हैं, न बाहर देना, न बाहर से लेना।''

''कैसा रिवाज है?''

''वह यहाँ नहीं चल सकता।''

''इसलिए लड़कियाँ लूटी जाती रहेंगी?''

''हाँ तो मधुरा? क्या कहती है?''

''किस बारे में?''

''मेरे प्रेम के बारे में।''

''मैं तेरे वश में हूँ, अमृत।''

''किंतु मैं लूटकर नहीं ले जाना चाहता।''

''क्या मुझे युद्ध करने देगा?''

''जहाँ तक मेरा बस होगा।''

''और शिकार करने?''

''जहाँ तक मेरा बस होगा।''

''बस?''

''क्योंकि मुझे महापितर की आज्ञा तो माननी पड़ेगी। अपनी ओर से मधुरा! मैं तुझे स्वतंत्र समझूँगा।''

''प्रेम करने, न करने के लिए भी।''

''प्रेम हमारा संबंध स्थापित कर रहा है। अच्छा उसके लिए भी।''

''तो अमृत! मैं तेरा प्रेम स्वीकार करती हूँ।''

''तो हम कुरुओं में चलें या पक्थों में?''

''जहाँ तेरी मरजी।''

''अमृत ने घोड़े को लौटाया और वह मधुरा के बताए रास्ते से पक्थों के ग्राम में पहुँचा। ग्राम में किसी के तंबूघर में कोई मारा गया था; किसी में कोई घायल पड़ा था, किसी की लड़की लूटी गई थी। चारों ओर कोहराम मचा हुआ था। मधुरा की माँ रो रही थी और बाप ढाढ़स बँधा रहा था, जबकि घोड़ा उसके बालों के तंबू के बाहर खड़ा था।

अमृताश्व के उतर जाने पर मधुरा कूद पड़ी और अमृताश्व को बाहर खड़े रहने के लिए कहकर भीतर चली गई। एकाएक सामने आ खड़ी बेटी को देख, पहले माँ-बाप को विश्वास न हुआ। फिर माँ ने गोद में ले उसके मुख को आँसुओं से भिगोना शुरू किया। उसके शांत होने पर बाप ने पूछा और मधुरा ने बतलाया, ''बाह्लीक पथ्य लड़कियों को लूटकर ले जा रहे थे। मुझे लूटकर ले जानेवाला पिछड़ गया था। मौका पाकर मैं घोड़े से कूद गई। वह पकड़कर फिर चढ़ाना चाहता था। मैं उसका विरोध कर रही थी। उसी वक्त एक सवार आ गया, उसने बाह्लीक को ललकारा और उसे घायल कर गिरा दिया। वही कुरु तरुण मुझे यहाँ पहुँचाने आया है।''

बाप ने कहा, ''तो तरुण ने तुझे नहीं ले जाना चाहा?''

''बलात् नहीं।''

''किंतु हमारे जनपद के नियम के अनुसार तू उसकी हुई।''

''और मैं उससे प्रेम भी करती हूँ, तात!''

मधुरा के बाप ने बाहर आकर अमृताश्व का स्वागत किया और उसे तंबू के भीतर लिवा लाया। गाँववालों को यह अजीब-सी बात मालूम हुई; किंतु सभी के सम्मान और सहानुभूति के साथ अमृताश्व ने मधुरा के साथ ससुराल छोड़ी।

□

अब अमृताश्व अपने कुरु-ग्राम का महापितर था। उसके पास पचासों घोड़े, गायें तथा बहुत-सी भेड़-बकरियाँ थीं। उसके चार बेटे और मधुरा रेवड़ और घर का काम देखते थे। ग्राम के दरिद्र-कुलों के कुछ आदमी भी उसके यहाँ काम करते थे—नौकर के तौर पर नहीं, घर के एक व्यक्ति के तौर पर। एक कुरु को दूसरे कुरु से समानता का बरताव करना पड़ता। अमृताश्व के चलते-फिरते ग्राम में पचास से ऊपर परिवार थे। आपसी झगड़ों, मामलों-मुकदमों का फैसला महापितर को ही देखना पड़ता था। फिर पानी, रास्ते और दूसरे सार्वजनिक कामों का संचालन भी महापितर करता और युद्ध में जो सदा सिर पर बैठा ही रहता—सेना का मुखिया बनना तो महापितर का सबसे बड़ा कर्तव्य था। वस्तुत: युद्धों में सफलता ही आदमी को महापितर के पद पर पहुँचाती है।

अमृताश्व एक बहादुर योद्धा था। पक्थों, बाह्लीकों तथा दूसरे जनों के अनेक युद्धों में उसने अपनी बहादुरी दिखलाई थी। मधुरा को दिए वचनों का उसने पालन किया। मधुरा ने अमृताश्व के साथ रीछ, भेड़िये और बाघ के शिकार ही नहीं किए थे, बल्कि युद्धों में भी भाग लिया था। यद्यपि जनवालों में से किसी-किसी ने इसे पसंद नहीं किया था, उनका कहना था कि स्त्री का काम घर के भीतर है।

अमृताश्व जब पहले-पहल महापितर चुना गया, उस दिन कुरुपुर महोत्सव मना रहा था। तरुण-तरुणियों ने आज के लिए अस्थायी प्रणय बाँधे थे। ग्रीष्म के दिनों में नदी की उपत्यका और पहाड़ पर घोड़ों और गायों के रेवड़ स्वच्छंद चर रहे थे। गाँववाले भूल गए थे कि उनके शत्रु भी हैं। पशुधन के होते ही उनके शत्रुओं की संख्या बढ़ती थी। जब कुरु-जन वोल्गा के तट पर था, उस वक्त उसके पास पशुधन नहीं था। उस वक्त उसे आहार जंगल से लेना पड़ता था, कभी शिकार, मधु या फल न मिलने से भूखा रहना पड़ता था। अब कुरुओं ने शिकार के कुछ पशुओं—गाय, घोड़े, भेड़, बकरी, खर को पालतू बना लिया था। वह उन्हें मांस, दूध, चमड़ा ही नहीं, बल्कि ऊन के वस्त्र भी देते थे। कुरुआनियाँ सूत कातने और कंबल बुनने में कुशल; किंतु यह कुशलता समाज में उनके पहले स्थान को अक्षुण्ण नहीं रख सकी। अब स्त्री नहीं, पुरुष का राज्य है। जन-नायिका, जन-समिति का नहीं, बल्कि लड़ाके महापितर का शासन है। जो जनमत का खयाल रखते हुए भी बहुत कुछ अपने मन से निर्णय करता और संपत्ति, जहाँ स्त्री के राज्य में परिवार का परिवार सदा एकत्र रहता, एक साथ काम करता, वहाँ अब अपना-अपना परिवार, अपना-अपना पशुधन और उसका हानि-लाभ भी अपने ही को था। हाँ, सबके संकट के वक्त जन फिर एक बार पुराने जन का रूप लेना चाहता था।

अमृताश्व महापितर के महोत्सव में मस्त जन को अपने पशुधन की फिक्र न थी। बाजे की आवाज पर थिरकते तरुण सिर्फ सोम-सुरा और सुंदरियों का खयाल रख सकते थे। पहर रात रह गई थी, किंतु नृत्य अब भी बंद होना नहीं चाहता था। इसी वक्त चारों ओर कुत्ते जोर-जोर से भौंकते हुए उपत्यका के ऊपर के भाग की ओर दौड़ते मालूम हुए। अमृताश्व उन पुरुषों में था, जो सोम को उतना ही पीने में आनंद मानते हैं, जितने में उनकी आँखों में लाली उतर आए और साथ ही होश-हवाश भी हाथ से जाने न पावे। कुत्तों की आवाज सुन चुपके से उठ उसने काठ के बेटवाली अपनी पाषाणी गदा को सँभाला और नदी के किनारे-किनारे आवाज आने की दिशा की ओर चलना शुरू किया। थोड़ी ही दूर जाने पर अस्तांचल पर पहुँचते चंद्रमा की रोशनी में कोई स्त्री आती दिखाई पड़ी। वह ठहर गया। पास आने पर मालूम हुआ, वह मधुरा है। मधुरा

की साँस अभी तेजी से चल रही थी, उसने उत्तेजित स्वर में कहा, ''पुरु हमारे पशुओं को हाँके लिये जा रहे हैं।''

''हाँके लिये जा रहे हैं! और हमारे सारे तरुण नशे में चूर हैं! तू कहीं तक गई थी, मधुरा?''

''उतनी ही दूर तक, जितने में कि मैं इतना जान सकी।''

''सारे पशुओं को ले जा रहे हैं?''

''देर से जान पड़ता है, बिखरे रेवड़ को एकत्र करने में लगे हुए थे।''

''तू क्या सोचती है, मधुरा?''

''देर करने का समय नहीं!''

''और हमारे सारे तरुण नशे में चूर हैं।''

''जो चल सकें, उन्हें लेकर धावा बोलना चाहिए।''

''हाँ जरूर, लेकिन एक बात है मधुरा! तुझे मेरे साथ नहीं चलना चाहिए। इन तरुणों का आधा नशा तो इस समाचार से ही उतर जाएगा और बाकी को दही खिलाना। जैसे-जैसे नशा उतरता जाए, वैसे-वैसे भेजती जाना।''

''और कुरुआनियाँ?''

''मैं कुरुओं के महापितर की हैसियत से आज्ञा दे सकता हूँ उन्हें युद्धक्षेत्र में उतरने की; उस पुरानी विस्मृत प्रथा को हमें जगाना होगा।''

''मैं आगे आने की कोशिश नहीं करूँगी; अच्छा जल्दी।''

महापितर की आज्ञा पर बाजे एकदम बंद हो गए। नर-नारी महापितर के इर्द-गिर्द जमा हो गए। सचमुच गो-अश्व-हरण की बात सुनते ही उनमें से कितनों का नशा उतर गया; उनके चेहरों पर प्रणय-मुद्रा की जगह वीर-मुद्रा छा गई। महापितर ने मेघ-गंभीर स्वर में कहा—

''कुरुओ और करुआनियो! पुरु शत्रुओं से हमें अपने धन को छीनना है। लड़ाई होगी। तुममें से जितने होश में हैं, अपने हथियार को ले, घोड़ों पर सवार होकर मेरे पीछे आएँ। जो नशे में हों, मधुरा से दही लेकर खाएँ और उतरते ही दौड़े आएँ। कुरुआनियो! आज तुम्हें भी मैं रणक्षेत्र में आने की आज्ञा देता हूँ। पुरानी कुरुआनियाँ युद्धक्षेत्र में पुरुषों के समान भाग लेती थीं; यह हम वृद्धों से सुनते आए हैं। आज तुम्हारा महापितर अमृताश्व तुम्हें इसकी आज्ञा देता है।''

दम के दम में चालीस घोड़े जमा हो गए। पुरु जितने पशुओं को जमा कर पाए थे, उन्हें उपत्यका के ऊपर की ओर भगाए लिये जा रहे थे। पर दो घंटे की दौड़ के बाद पौ फटते वक्त कुरुओं ने उन्हें देखा। घोड़ों और गायों के इतने झुंड को इकट्ठा कर उस पहाड़ी से दौड़ाते हुए हाँकना आसान काम न था। पुरु सवार अपने चमड़े के कोड़ों को हवा और पत्थरों पर पटककर पशुओं को भयभीत कर रहे थे। अमृताश्व ने देखा, पुरुओं की संख्या सौ के करीब होगी। अपनी चालीस की टुकड़ी से लड़ाई शुरू करनी चाहिए या नहीं, इस पर ज्यादा माथापच्ची वह करना नहीं चाहता था।

उसने सींगों के लंबे भाले को सँभालकर दुश्मन पर हमला करने की आज्ञा दी।

कुरु वीर और वीरांगनाओं ने—हाँ, वीरांगनाएँ आधी से कम न थीं—निर्भय हो घोड़ों को आगे दौड़ाया। उन्हें देखते ही कुछ को पशुओं को रोके रखने के लिए छोड़, पुरु नीचे की ओर दौड़ पड़े और घोड़ों से पूरा फायदा उठाने के लिए नदी के किनारे एक खुली जगह में खड़े हो कुरुओं का इंतजार करने लगे। अमृताश्व की आकृति उस वक्त देखने लायक थी। उसका घोड़ा अमृत और वह, दोनों एक ही शरीर के अंग मालूम होते थे। हरिण के तेज सींग का उसका भाला एक बार जिसके शरीर पर लगता, वह दूसरी बार के लिए अपने घोड़े पर बैठा नहीं रह सकता था। पुरुओं ने धनुष-बाण और पाषाण-परशु पर ज्यादा भरोसा कर गलती की थी, यदि उनके पास भी उतने ही सींग के भाले होते तो निश्चय ही कुरु उनका मुकाबला नहीं कर सकते थे। एक घंटा संग्राम होते हो गया, कुरु अब भी डटे हुए थे, किंतु उनके एक-तिहाई योद्धा हताहत थे, यह डर की बात थी। उसी वक्त तीस कुरु घुड़सवार ललकारते हुए संग्राम-क्षेत्र में पहुँचे। कुरुओं की हिम्मत बहुत बढ़ गई। पुरु बुरी तरह से मरने लगे। उनकी नाजुक हालत देख पशुओं को रोके रखने के लिए छोड़े हुए घुड़सवार भी आ पहुँचे; उसी समय चालीस कुरु-कुरुआनियों का जत्था लिये मधुरा आ पहुँची। डेढ़ घंटा जमकर युद्ध हुआ। अधिकांश पुरु हताहत हुए, कुछ भाग निकले।

घायलों का खात्मा कर कुरु-वाहिनी पुरु-ग्राम की ओर बढ़ी। वह चार कोस ऊपर था। सारा ग्राम सूना था। लोग तंबुओं को छोड़कर भाग गए थे। उनके पशु जहाँ-तहाँ चर रहे थे। किंतु कुरुओं को पहले पुरुओं से निबटना था। पुरु बुरी तरह घिर गए थे; ऊपर भागने का उतना सुभीता न था। उपत्यका सँकरी होती गई थी और चढ़ाई कड़ी थी, तो भी प्राण बचाने के लिए नर-नारी घोड़ों पर भागे जा रहे थे। आखिर ऐसा भी स्थान आया; जहाँ घोड़ा आगे नहीं बढ़ सकता था। लोग पैदल चलने लगे। कुरु उनके नजदीक आ गए थे। बच्चे, बूढ़े, स्त्रियाँ तेजी से नहीं बढ़ सकते थे; इसलिए उन्हें भागने का मौका देने के लिए कुछ कुरु-भट एक सँकरी जगह में खड़े हो गए। कुरु अपनी संख्या का पूरा इस्तेमाल नहीं कर सकते थे; इसलिए उन्हें इन पुरुओं से रास्ता साफ करने में कुछ घंटे लगे। पुरु और कुरु अब दोनों ही पैदल थे, किंतु पुरुओं में मर्द मुश्किल से एक दर्जन रह गए थे। इसलिए वे कुछ ही दिनों तक सारे पुरु-परिवार की रक्षा कर सकते थे। उन्होंने एक दिन कुछ साहसी स्त्रियों को ले एक दुरूह पथ पकड़ वह उपत्यका छोड़ दी और पहाड़ों को पार करते दक्खिन की ओर बढ़ गए। कुरुओं ने जहाँ-तहाँ छिपे प्राणों की भिक्षा माँगते पुरु बच्चों, वृद्धों और स्त्रियों को पकड़ा। बंदी बनाना इस पितृ-युग के नियम के विरुद्ध था, इसलिए बच्चे से बूढ़े तक सारे ही पुरुषों को उन्होंने मार डाला।

स्त्रियों को वे अपने साथ लाए। पुरुओं का सारा पशु-धन भी उनका हुआ। अब वह हरित रोद (नदी) उपत्यका, नीचे से ऊपर तक कुरुओं की चरागाह थी। एक पीढ़ी तक के लिए महापिता ने एक से अधिक पत्नी रखने का विधान कर दिया और इसी वक्त कुरुओं में पहले-पहल सपत्नी देखी गई। साअ

छोटू

● **नीरजा माधव**

छोटू, आज फिर उनतीस तारीख है। शाम के पाँच बजने जा रहे हैं। पिछली उनतीस तारीख को अक्षय नवमी थी। अक्तूबर का अंत। हवा में हल्की ठंड। आज ही की तरह सूरज उस दिन भी अपनी लाल किरणें समेटकर रात के आँचल में छिपने की तैयारी कर रहा था। तुम उस समय अस्पताल में मरीजों की सेवा में जुटे थे। तुम्हारा जीवन भी कुछ घंटों में सिमट चुका था उस दिन। पर तुम्हें कहाँ खबर थी? हम सब भी तो हमेशा की तरह निश्चिंत थे। तुम एक-एक मिनट खिसककर मृत्यु की ओर जा रहे थे और त्योहार के हँसी-ठहाकों के बीच तुम्हारी ओर महाकाल के बढ़ते कदमों की आहट कोई नहीं सुन पा रहा था। सुन भी नहीं सकता। मनुष्य कितना भी अहंकार पाल ले अपने विकास का, पर है कितना बौना प्राणी। एक बुलबुले के समान। कब पैदा हुआ, कब फूट गया, पता ही नहीं।

पर तुम्हें बुद्बुद-सा नश्वर मान लेने को मन तैयार नहीं होता, छोटू। क्यों लगता है कि तुम्हारे आधे-अधूरे जीवन की कहानी लिखे बिना मेरी लेखनी बेचैन रहेगी? नहीं जानती कि मेरी तर्जनी और अँगूठे के बीच पितृतीर्थ से झरते हुए ये अधोमुखी मुट्ठी भर शब्द तुम्हारी स्मृति को सहला भी पाएँगे या नहीं? तुम्हारे सूक्ष्म अस्तित्व को धीरे से छूकर तुम्हें चौंका भी पाएँगे या नहीं? पंचमहाभूतों में विलीन हुए तुमको हवा, जल, अग्नि, पृथ्वी या आकाश से क्षण भर के लिए ही सही, खींचकर तुम्हारी छोड़ी हुई यह दुनिया तुम्हें दिखा पाएँगे भी या नहीं?

जहाँ आज भी सूनी-सूनी आँखों से तुम्हारी माँ देखती है तुम्हारा रास्ता। गली के उस मोड़ तक, जिधर से आते थे तुम अपनी मोटर साइकिल पर अपने पापा को बैठाए। आज भी देती है वह सूर्य को अर्घ्य उसी तरह, पर ओठों की बुद्बुदाहट में तुम्हारी कुशलता की कामना नहीं होती। होती है एक प्रश्नाकुलता, 'आखिर क्या गुनाह था मेरा या मेरे बच्चे का?'

हर दिन तुम्हारी माँ के इस निर्दोष प्रश्न से घायल होता है सूरज और उसकी पीड़ा की लाली कुछ और गहराकर पूरी पृथ्वी पर छितर जाती है। छोटू, हम जिसे कहते हैं सूर्योदय, दरअसल वह धरती की अनगिनत माँओं के सम्मिलित उच्छ्वासों की दाहकता से पैदा हुआ रक्तवर्णी वृत्त है। माँएँ, जो किसी भी माँ की पीड़ा और प्रेम, दोनों को बखूबी महसूस कर सकती हैं। मैं भी तुम्हारी माँ की उस पीड़ा को महसूस कर पा रही हूँ। अकथनीय है, शब्दों में कहाँ बाँध पाऊँगी! बिखर जाते हैं शब्द भी आकार लेते-लेते। तुम्हारी माँ और पापा की दुर्दांत पीड़ा, जिनके लिए शुक्ल पक्ष की नवमी की वह रात बन गई थी काली अमावस। तुम्हारे लिए छाती पीटती तुम्हारी माँ के चेहरे पर फैली थी वही स्याही, अमावस से भी काली, जंगल से भी भयावह, हिमालय के आकाश की ओर उड़ जाने से भी अविश्वसनीय, सागर के कुएँ में सिमट जाने से भी अकल्पनीय।

हम सब एक भयानक समय में खड़े थे। शब्द साथ छोड़ चुके थे। सांत्वना के बोल गूँगे हो उठे थे। सबकी आँखों से झरते आँसू ईश्वर के अस्तित्व पर प्रश्न खड़े कर रहे थे। ऐसा क्रूर मजाक? क्या सचमुच यह मजाक ही था या कुछ और, छोटू? अब जबकि तुम उस ईश्वर के अधिक निकट हो, जहाँ से सबकुछ देखा जा सकता है, तुम्हें तो सब पता होगा? तुम देख सकते होगे अपने मम्मी-पापा की निरंतर बरसती आँखें, स्वजनों का करुण क्रंदन और अपनी होनेवाली जीवनसंगिनी के चकनाचूर हुए सतरंगी सपने। क्या काँच की तरह झनझनाकर टूटे उसके सपनों की किरचें तुम्हें भी चुभी थीं, जब तुम हमेशा के लिए इस धरा को छोड़कर जा रहे थे? उसी के घर के पास तो तुम ट्रक से टकराकर धराशायी हुए थे, छोटू। उसी घर के पास, जहाँ ठीक चालीस दिन बाद तुम बारात लेकर जानेवाले थे। वह तुम्हारा प्यार थी। बड़ी मुश्किल से पापा-मम्मी को तुम इस रिश्ते के लिए मना पाए थे। विवाह में पहननेवाले तुम्हारे सूट का ट्रायल दिलाकर ही तो लौटी थी वह उस रात। तुम उसे उसके घर तक छोड़ने गए था। तुम्हें दरवाजे से विदा करने के बाद वह कुछ देर तुम्हें पीछे से देखती रही थी। उसकी आँखों के झिलमिल सपनों ने अँगड़ाई ली थी। उसे नहीं पता था कि सपनों की विदाई की वेला आ गई थी। उसके स्वप्न आकाश की ओर उड़ चले थे। पीछे से तुम्हारे प्राण भी।

जानी-मानी साहित्यकार। सात कहानी-संग्रह, सात उपन्यास, तीन कविता-संग्रह, छह ललित-निबंध एवं अन्य विधाएँ, तीन पुस्तकें अंग्रेजी में, तीन अनुवादित पुस्तकें तथा कई उपन्यास, कहानी, कविता आदि पाठ्यक्रमों में शामिल। 'सर्जना पुरस्कार', 'यशपाल पुरस्कार', 'भारतेंदु प्रभा', 'शंकराचार्य पुरस्कार', 'शैलेष मटियानी राष्ट्रीय कथा पुरस्कार' सहित कई अन्य सम्मान। संप्रति कार्यक्रम अधिशासी, आकाशवाणी दूरदर्शन।

तुम आवाज देकर रोक लेना चाहते थे उसके आकाश छूते सपनों को, पर तुम्हारी आवाज उन सपनों तक नहीं पहुँच पा रही थी। सपनों को आकाश में ही उड़ने के लिए छोड़ तुम घबड़ाकर समय की गति से भी तेज चलकर आए थे उसके पास। वह मुसकरा रही थी आईने के सामने अपने नए-नए सिलकर आए लहँगे को सीने से सटा। तुम्हारी पसंद का चटख नारंगी सुनहरे कामवाला झिलमिलाता लहँगा। तुमने उसे झकझोरकर बताया था, पर वह सुन नहीं रही थी। बस उसके खुले बाल हवा के झोंकों के साथ उसके चेहरे पर आ गए थे। लहँगा सरसराकर हाथों से छूट गया था। उसने झट झुककर उसे उठाया था और शीशे के सामने से हट गई। बिस्तर पर फैलाकर वह अपना लहँगा तहाने लगी थी। उसके ओठों पर संयोग के गीत फूट रहे थे। उसने सिरहाने रखे मोबाइल की ओर देखा था। मुसकराकर बुदबुदाई थी—सोते समय रात में बात करूँगी।

तुम हैरान थे। बिजली की गति से अपने मोबाइल के पास पहुँचे थे, जो छिटककर तुम्हारे शरीर से बहुत दूर सड़क के किनारे झाड़ी में जाकर गिरा था। पुलिसवालों की नजर तक नहीं पड़ी थी। तुमने देखा था अपने मोबाइल की ओर। घंटी बज रही थी।

'आंटी।' नि:संदेह तुम बोलना चाह रहे होंगे, पर बोल नहीं पाए थे। काल रिसीव भी नहीं कर पाए होगे।

हाँ छोटू, यह मैं ही थी जो घबड़ाहट में तुम्हें फोन कर रही थी अपने घर से। संभवत: तुम्हारे मोबाइल पर यह अंतिम ही कॉल रही हो। थानाध्यक्ष ने तुम्हारी मोटर साइकिल के कागजात से तुम्हारे घर का पता ढूँढ़ा था और तुम्हारे अंकल से परिचित होने के नाते उनसे जानकारी ली थी, 'क्या आपकी कॉलोनी में कोई वैभव नाम का डॉक्टर रहता है?'

'हाँ, क्यों?' उन्होंने पूछा था।

'उसका एक्सीडेंट हो गया है। चेहरा पहचान में नहीं आ रहा है। किसी को अपनी मोटर साइकिल तो नहीं दिया रहा होगा न?' थानाध्यक्ष ने एक उम्मीद की रेखा छोड़ दी थी। सुनकर मैं परेशान हो उठी थी। मेरे बेटे ने सांत्वना दी थी, 'हो सकता है, खबर झूठी हो?' पर भय और अनहोनी की आशंका से उसके भी ओठ काँप रहे थे।

'भगवान् करे बेटा, ऐसा ही हो। एक महीने बाद ही तो उसकी तिलक और शादी है। ऐसा करो, छोटू को फोन मिलाओ। अगर उठा लेगा तो बताना मत कि इतनी रात में हम लोग उसे किस बात के लिए फोन मिला रहे हैं? बस रिसीव कर ले तो पता चल जाएगा कि वह ठीक-ठाक है।'

फोन मिलाया था तुम्हें, छोटू। तुम्हारी घंटी पूरी बजकर खत्म हो गई थी, पर काल रिसीव नहीं हुई थी। मन आशंका से धड़क उठा था। तुम्हारे मम्मी-पापा को यह सूचना कैसे दी जाए? कहीं सदमे में उनके भी जीवन ने साथ छोड़ दिया तो? डर के मारे मेरे पेट में एक तेज मरोड़ सी उठी थी। मैं बदहवास सी बाथरूम की ओर जाने लगी थी। बिल्कुल बगल में तो घर है तुम्हारा। इस तरह की कोई नकारात्मक घटना सुनकर मैं ऐसे ही बदहवास सी हो उठती हूँ। एक बार तुम्हीं ने तो कहा था, 'आंटी, आप अपने को मजबूत करिए। यह नर्वस डायरिया है।' तुम और याद आए थे छोटू उस समय।

तुम्हारे उसी मोबाइल फोन में तुम्हारी मम्मी का भी मिस कॉल पड़ा रहा होगा। वे भी तो तुम्हें शाम से कई बार मिला चुकी थीं। चाहती थीं कि तुम जल्दी घर आ जाओ। तुमने नहीं उठाया था उनका फोन। शायद मरीजों को देखने में व्यस्त रहे होगे। हो सकता है, कहीं और का कार्यक्रम बना चुके थे, इसलिए मिस कॉल पर पलटकर बात नहीं की। यह तो तुम्हारे स्वभाव के विपरीत था, छोटू। तुम्हारी मम्मी यही कहकर दहाड़ें मारकर रो रही थीं। फोन उठा लिए होते तो शायद यह मनहूस घड़ी टल गई होती। माँ की इच्छा पर जल्दी घर आ गए होते। अक्षय नवमी का पर्व मनाया जा रहा था। फलों से लदे आँवले के वृक्ष के नीचे सुलगा अहरा। अहरे के ऊपर मिट्टी की बड़ी सी हँड़िया में चुरती दाल और बुझते अंगारों के बीच सेंकी जाती बाटी का सोंधापन। अपने-अपने पुण्य को अक्षय कर लेने की हड़बड़ी में लोग। ब्राह्मण को आँवले के नीचे भोजन कराते, दान देते लोग। अभी-अभी बीती दीपावली, अन्नकूट, गोपाष्टमी जैसे त्योहारों की थकन उतारते, घर से बाहर आँवले के नीचे हँसी-ठहाकों के बीच रिश्तों को सहेजते लोग। तुम्हारे भी तो सभी रिश्तेदार आँवले के नीचे जुटे थे।

खाना शुरू करने से पहले तुम्हारी मम्मी ने एक बार फिर तुम्हें फोन मिलाया था। तुमने फिर नहीं उठाया था। बेमन से उन्होंने खाना खाया था और तुम्हारे लिए टिफिन में भरकर घर ले आई थी। अकसर तुम रात को देर से ही लौटते थे। खाना खाने के बाद रात में अपने लॉन में टहलते हुए हम सब तुम्हारी मोटर साइकिल की आवाज से पहचान लेते थे, क्योंकि गली में मुड़ते ही तुम उसकी स्पीड बिल्कुल धीमी कर लेते थे। कारण, मैंने एक बार तुम्हें डाँटते हुए समझाया था कि तेज न चला करो। दो बार पहले भी तुम अपना पैर एक्सीडेंट में तोड़ चुके थे। पता नहीं यह मेरे मना करने का असर था या तुम छोटू से एक गंभीर डॉक्टर वैभव में परिवर्तित हो चुके थे, उसका परिणाम था, पर मोटर साइकिल तुम धीमे चलाने लगे थे। तुम पर कुछ अधिक ही मैं अपना अधिकार मानती थी। क्योंकि डॉक्टर वैभव आज तक मेरे लिए छोटू ही रहा। तुम्हें छोटे से बड़ा होते देखा मैंने। मेरे आहाते में मेरे बेटे के साथ क्रिकेट खेलते तुम, मेरी गायों की नाँद पर बैठ घंटों अपने दोस्त से बतियाते तुम, अमरूद के पेड़ से कच्चे-पक्के अमरूद तोड़कर बिना धोए ही खाने पर मेरी डाँट सुनते तुम, होली-दीवाली पर पैर छूकर आशीर्वाद लेते तुम, सब पल में कैसे खत्म हो गया, छोटू? हर दिन बाहर निकलने से पहले अपनी मम्मी और पापा के पैर छूकर आशीर्वाद लिये बिना तो तुम नहीं जाते थे। क्या वे आशीर्वाद भी उस रात कवच नहीं बन सके थे, छोटू? उन नन्ही-नन्ही चीटियों ने भी तो 'दूधो नहाओ पूतो फलो' का आशीर्वाद मन-ही-मन दिया होगा, जब-जब उन्हें आटे का चारा तुम्हारी मम्मी ने दिया था।

घर के भीतर संपन्नता थी या विपन्नता, यह बाहर के लोग कब जान सके थे? तुम उस परिवार के वैभव थे। डॉक्टरी की पढ़ाई पूरी करके आए थे तुम तो पापा-मम्मी की आँखों में वैभव छलक रहा था।

रोम-रोम से वैभव प्रकट हो रहा था। छोटी सी क्लीनिक में वैभव, लेटर पैड पर वैभव, घर के बाहर-भीतर वैभव। दु:ख भरे वे दिन बीत चुके थे, जब तुम्हारे पापा ने बैंक से कर्ज लेकर तुम्हें मेडिकल की पढ़ाई करवाई। शर्ट के नीचे बनियान थोड़ी फटी भी चल जाती थी। जैकेट के नीचे सिकुड़कर छोटा हो गया स्वेटर भी काम देने लगा था। तुमने उसे महसूस भी किया था।

पापा-मम्मी के सुख के लिए तुम्हारी आँखों में कई स्वप्न पल रहे था। उन्हें तीर्थ कराना, चार पहिया गाड़ी खरीदकर देना, ब्रांडेड कपड़े और जूते खरीदना जैसी तमाम अपनी इच्छाएँ तुम धीरे-धीरे पूरी कर रहे थे। अपनी होनेवाली पत्नी से तुम अपने मम्मी-पापा के संघर्षों के बारे में बताकर उनकी खूब सेवा करने का वादा भी ले चुके थे, पर नियति का चक्र कितना गंदा और विद्रूप हो चुका था! जिस घर में उसे दुलहन बनकर एक महीने के बाद आना था, उसी घर में वह बदहवास सी उसी रात भागी आई थी और पापा-मम्मी से लिपटकर बिलख पड़ी थी। पत्थर का भी कलेजा विदीर्ण हुआ जा रहा था। जिसे अपने घर में प्यार से लाने के लिए तुमने फूलों से सजी डोली तय की थी, वह नंगे पाँव गली के पत्थरों पर ठोकरें खाते हुए तुम्हारे घर की ड्योढ़ी पर पहुँची थी। प्रतिदिन तुम्हारे निमित्त गरुड़ पुराण सुनते हुए और अंत में आरती करते हुए उसे देखकर सभी की आँखें भीग जातीं। सभी ईश्वर को कोसते, पर ईश्वर तब भी तसवीरों में मुसकराता रहता, जैसे तुम अपनी तसवीर में मुसकरा रहे होते। मुसकराहटें कागज की निर्जीव तसवीरों में सिमट गई थीं और जीते-जागते चेहरों से मुसकराहटें गायब हो गई थीं।

जानते हो छोटू, तुम्हारे पापा के कंधे झुक गए हैं। उनपर कितना भारी बोझ तुमने रख दिया। दुनिया का सबसे भारी बोझ'''किसी बाप के कंधे पर बेटे की अरथी। कंधों को तो झुकना ही था। अपनी कोई जिद मनवाने के लिए जब तुम उनके कंधों पर झूल जाया करते थे तो उनका दिल फूल की तरह हल्का महसूस करता था, परंतु उनके कंधों पर इस तरह लदकर जाने की क्या जरूरत थी, पगले, कि हमेशा के लिए उनके कंधे बोझ से झुक जाएँ, जिन कंधों पर चढ़कर बचपन में तुमने किलकारी भरी, उन्हीं कंधों को इस तरह चरमराकर रख दिया कि वे कभी अब तनकर ऊँचे ही न हो सकेंगे। तुम्हारी मोटर साइकिल पर पीछे बैठ जिस तसल्ली और विश्वास से वे तुम्हारे कंधे पर हाथ रखकर जाते थे, उसे ही अपने कंधों पर लादकर जब वे हरिश्चंद्र घाट की ओर बढ़े थे तो उनकी आत्मा फट गई थी और उसमें बैठा ईश्वर एकाएक मर गया था। गीता के वचन झूठे लगने लगे थे कि आत्मा को कोई शस्त्र काट नहीं सकता। वह तो चीथड़े-चीथड़े हो गया था।

तुम पापा के कंधे पर अपनी देह के पास बैठे सब देख रहे थे—उनकी आत्मा का चीथड़े-चीथड़े होना, ईश्वर की मौत, स्वजनों का विलाप। तुम्हें अपने ऊपर भी क्षोभ हो रहा होगा। क्यों नहीं ट्रक आते देख बाइक एक ओर खड़ी कर रुक गए थे? ट्रक ड्राइवर नशे में था। पुलिसवालों की वसूली के डर से भागकर उस सँकरी सड़क पर तेज गति से जा रहा था। बस सबकुछ समाप्त। अब तो क्षोभ या सोचने का विषय। ईश्वर के एक क्रूर मजाक को घटित होते देखना। ऐसे न जाने कितने मजाक हर दिन ईश्वर करता रहता है। आत्माएँ मरती हैं, उसमें बसा ईश्वर भी मर जाता है। फिर भी संसार चलता रहता है। नहीं मरती है तो भूख और प्यास। आदमी की भूख नहीं मरती, प्यास भी नहीं मरती। अब यदि भूख-प्यास जिंदा है तो संसार के सारे कार्य भी फिर से शुरू हो जाते हैं। सृष्टि का चक्र घूमता ही रहता है—अनवरत।

तुम्हारे जाने के बाद भी सृष्टि चल रही है, छोटू। मौसम बदल रहा है। ठंड कुछ अधिक हो चली है। इसके बाद वसंत और ग्रीष्म आ ही जाएँगे। बरसात भी होगी। तुम्हारे जाने के दो-तीन दिन बाद ही सामनेवाले घर में संगीत की कक्षाएँ चलने लगी थीं—कौन गली गए श्यामऽऽऽ। पिछवाड़े वाले घर में किसी का विवाह भी हुआ। डी.जे. पर बजता गाना चुभ रहा था, पर किसी के जाने से दुनिया थम तो नहीं जाती, छोटू! दूल्हा-दुलहन की आँखों में स्वप्नों का झिलमिलाना तो नहीं रुकेगा।

तुम्हारे घर संवेदना प्रकट करने आए रिश्तेदार धीरे-धीरे विदा होने लगे थे। तुम्हारे तिलक में खाना बनाने के लिए तुमने जिस हलवाई को तय किया था, उसी ने सिसकते हुए तुम्हारे निमित्त अंतिम भोजन पकाया था। यह सब हृदय-विदारक था। पर समय के पास कहाँ समय है कि वह ठिठककर इस दारुण समय को देखे? वह तो गांधारी बना चलता चला जाता है। संसार अपनी गति से चल रहा है, छोटू। तुम्हारे पापा रोते हुए मुश्किल से कुछ खाते हैं। किसी मोटर साइकिल की आवाज सुनकर उन्हें आभास होता है, जैसे तुम लौट आए हो। उनकी हताश निगाहें गली के उस मोड़ तक बरबस घूम आती हैं, जिधर से तुम आते थे। मम्मी की अनवरत बरसती आँखें अब भी सूर्य को अर्घ्य देती हैं, पर ओठों की बुदबुदाहट में पहले जैसी तुम्हारी कुशलता की कामना नहीं रहती, बल्कि होती है एक अव्यक्त शिकायत भगवान् से, जो पूछती है बार-बार—'क्या गुनाह था मेरा? कौन सी कमी थी मेरी पूजा में?'

साँझ ढल रही है। सूरज अपनी किरणें समेट रहा है। समय-चक्र चल रहा है। हो सकता है, कुछ दिनों बाद तुम्हारी भी स्मृति धुँधली पड़ जाए। संसार का यही नियम है, छोटू। तुम्हारे घर पर लगा यह मयूरपंखी पेंट, जिसे तुमने अपने विवाह की तैयारी में अपनी पसंद से लगवाया था, हो सकता है, दो-चार साल में बूढ़ा हो जाए और अपनी चमक खो बैठे। तुम्हारे कमरे के सामने बालकनी को हिल-हिलकर छूती नीम के पेड़

की हरी डालियाँ छिनगा दी जाएँ, तुम्हारे कमरे में पड़ा स्टेथस्कोप किसी की धड़कन न सुन सके, वह मोटर साइकिल औने-पौने दामों में बिक जाए, जिस पर तुम अंतिम बार बैठे थे, तुम्हारे कपड़े भिखारियों में बाँट दिए जाएँ, पर तुम्हारी धड़कनों का स्वर हवाओं में घुला-मिला अब भी यहाँ-वहाँ डोल रहा है। तुम्हारी आवाज के स्पंदन का हस्तक्षेप वातावरण के कोलाहल में हमेशा रहेगा। तुम्हारी छत की मुँड़ेर पर बैठी चिड़िया कई बार मन में एक विश्वास सा दिला जाती है कि तुम देह बदलकर अपने घर आए हो। विश्राम कर रहे हो। मम्मी को देख रहे हो, पापा को आँख भर निहार रहे हो, कमरे में बिखरे अपने सामानों को देख रहे हो, जिसे ठीक करने की हिम्मत तुम्हारी मम्मी में आज तक नहीं आ पाई है। लोग कहते हैं कि किसी-न-किसी रूप में आत्मा अपने स्वजनों को आकर देखती है। पता नहीं कितना सच है, कितनी कल्पना!

तुम्हारे द्वादशाह वाले दिन अकाल मृत्यु के कारण मिली प्रेत योनि से मुक्ति दिलाने और ईश्वर के चरणों तक पहुँचा देने के लिए नारायण-बलि दी गई थी, छोटू। जल से भरे नारियल के गोले को जीवात्मा का प्रतीक मान तुम्हारे पापा के हाथों में पकड़ाया गया था। उस नारियल के गोले को उन्होंने उसी तरह सँभालकर पकड़ा था, जैसे तुम्हारे जन्म लेने पर उन्होंने अपनी दोनों हथेलियों के बीच तुम्हें पहली बार सँभालकर उठाया था। नारियल के गोले को हृदय से सटा वे बिलख पड़े थे। यह अत्यंत आश्चर्यजनक ही तो था छोटू कि भगवान् की मूर्ति के पास उस नारियल को रखते ही वह अपने आप चटक गया था। पंडितजी मंत्रोच्चार कर रहे थे। मंत्र समाप्त कर बोल बड़े, 'पूजा सफल हुई। जीवात्मा प्रेत योनि से मुक्त होकर ईश्वर के चरणों में पहुँच गई।'

यह मंत्रों की शक्ति थी या कोई चमत्कार, कोई नहीं समझ सका था। उस कठोर नारियल का अपने आप चटक जाना सभी को हतप्रभ कर गया था। तसल्ली भी हुई—चलो, छोटू अब ईश्वर के सान्निध्य में है। सनातन धर्म के मंत्रों में आस्था और गहरा उठी थी।

संसार की इन सब आस्थाओं-अनास्थाओं के बीच तुम्हारी यह आधी-अधूरी कहानी लिखते हुए, तुम्हारे लघु जीवन को विराट् शब्द ब्रह्म में समाहित करते हुए कुछ अक्षर उछालती हूँ आकाश की ओर। अब जबकि धरती पर सब यह मानते हैं कि तुम ईश्वर के पास हो, संभव हो तो इन अक्षरों को अपनी दिव्य हथेली में चुनकर तुम ईश्वर के सामने फूल की तरह बिखरा देना और बता देना कि जब-जब वह धरती पर इस तरह का क्रूर मजाक किसी के साथ करता है तो आत्मा विदीर्ण होती है और आत्मा में बसा वह ईश्वर भी मर जाता है। ईश्वर से कहना कि वह मनुष्य का सृजन करता है और मनुष्य अपनी आत्मा में ईश्वर का सृजन करता है। दोनों एक-दूसरे को अपनी कल्पना के अनुसार गढ़ते हैं, पर जब-जब मनुष्य के भीतर ईश्वर मरता है, कुछ दिनों बाद वह उसे अपनी आस्था से पुनः उसी रूप में जीवित कर लेता है। इतना उदार है मनुष्य कि फिर से ईश्वर को मन के सिंहासन पर बैठा पूजने लगता है। पर बोलो ईश्वर, तुम्हारे पास भी वह क्षमता है क्या कि किसी को पुनः उसी रूप में जीवित कर सको? छोटू, पूछना जरूर! यह आस्था का प्रश्न है।

(सा.अ.)
मधुवन
सा. १४/५९८, सारंगनाथ कॉलोनी,
सारनाथ, वाराणसी-२२१००७
दूरभाष : ०९७९२४११४५१

सुधी पाठकों से निवेदन

- जिन पाठकों की वार्षिक सदस्यता समाप्त हो रही है, कृपया वे सदस्यता का नवीनीकरण समय से करवा लें। साथ ही अपने मित्रों, संबंधियों को भी सदस्यता ग्रहण करने के लिए प्रेरित करने की कृपा करें।
- सदस्यता के नवीनीकरण अथवा पत्राचार के समय कृपया अपने सदस्यता क्रमांक का उल्लेख अवश्य करें।
- सदस्यता शुल्क यदि मनीऑर्डर द्वारा भेजें तो कृपया इसकी सूचना अलग से पत्र द्वारा अपनी सदस्यता संख्या का उल्लेख करते हुए दें।
- चैक अथवा बैंक-ड्राफ्ट **साहित्य अमृत** के नाम से भेजे जा सकते हैं।
- ऑन लाइन बैंकिंग के माध्यम से सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया के एकाउंट नं. १११०७३४३९३ अथवा CBIN ०२८०२९७ में **साहित्य अमृत** के नाम से शुल्क जमा कर फोन अथवा पत्र द्वारा सूचित अवश्य करें।
- पत्रिका न मिलने पर १५ से २० तारीख तक सूचित कर दें, ताकि वह अंक नए अंक के साथ भेजा जा सके।
- आपको अगर **साहित्य अमृत** का अंक प्राप्त न हो रहा हो तो कृपया अपने पोस्ट ऑफिस में पोस्टमैन या पोस्टमास्टर से लिखित निवेदन करें। ऐसा करने पर कई पाठकों को पत्रिका समय पर प्राप्त होने लगी है।
- सदस्यता संबंधी किसी भी शिकायत के लिए कृपया कार्यालय दिवस में २ से ५ बजे तक फोन नं. ०११-२३२५७५५५, २३२७६३१६ अथवा sahityaamrit@gmail.com पर इ-मेल करें।

हिंदी पत्रकारिता के मूल्यों के प्रतिमान गणेशशंकर विद्यार्थी

● कृपाशंकर चौबे

साहित्य अकादेमी से प्रकाशित पुस्तक 'गणेशशंकर विद्यार्थी' कई कारणों से हमारा ध्यान खींचती है। इसके लेखक हैं कृष्णबिहारी मिश्र। वे हिंदी के ऐसे ललित निबंधकार-जीवनीकार-समीक्षक हैं, जिनकी ख्याति पत्रकारिता के इतिहास के विशेषज्ञ के रूप में भी है। 'गणेशशंकर विद्यार्थी' मिश्रजी की पत्रकारिता विषयक पाँचवीं किताब है। ११२ पृष्ठों के इस मोनोग्राफ में मिश्रजी ने गणेशशंकर विद्यार्थी के व्यक्तित्व और कृतित्व को विलक्षण ढंग से समेटा है। विद्यार्थीजी के व्यक्तित्व व कृतित्व का कोई भी महत्त्वपूर्ण प्रसंग मिश्रजी से छूटा नहीं है। पुस्तक छह अध्यायों में विभक्त है। 'जीवन प्रसंग और व्यक्तित्व' शीर्षक से पहले अध्याय के आरंभ में ही कृष्णबिहारी मिश्र जानकारी देते हैं कि गणेशशंकर विद्यार्थी का नामकरण उनकी मातामही गंगादेवी के सपने के आधार पर हुआ था। स्वप्न में गंगादेवी ने अपनी गर्भवती कन्या गोमती देवी को गणेश की मूर्ति भेंट की थी और जागने पर बड़े हुलास के साथ व्रत लिया कि दौहित्र का जन्म होने पर उसका नाम गणेश रखेंगी। गणेशशंकर विद्यार्थी का जन्म २६ अक्तूबर, १८९० को इलाहाबाद के अतरसुइया मुहल्ले में एक कायस्थ परिवार में हुआ था। पिता जयनारायण हथगाँव, फतेहपुर, उत्तर प्रदेश के निवासी थे और ग्वालियर रियासत में मुँगावली के एक स्कूल में हेडमास्टर थे। गणेश का बाल्यकाल वहीं बीता तथा प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा भी वहीं हुई। उनकी पढ़ाई की शुरुआत उर्दू से हुई और बाद में उन्होंने अंग्रेजी मिडिल की परीक्षा भी उत्तीर्ण की। सन् १९०७ में प्राइवेट परीक्षार्थी के रूप में एंट्रेंस परीक्षा पास की और आगे की पढ़ाई के लिए उन्होंने इलाहाबाद के कायस्थ पाठशाला में दाखिला लिया। आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण लगभग एक वर्ष तक अध्ययन के बाद सन् १९०८ में उन्होंने कानपुर के करेंसी ऑफिस में ३० रुपए मासिक की नौकरी की, पर एक अंग्रेज अधिकारी से कहासुनी हो जाने के कारण नौकरी छोड़ दी। उन्होंने कानपुर के पृथ्वीनाथ हाईस्कूल में अध्यापन का कार्य भी किया। उसी दौरान उन्होंने कई समाचार-पत्रों में लेख लिखे तथा 'सरस्वती' और 'अभ्युदय' में संपादकीय सहयोगी के रूप में काम किया। गणेशशंकर विद्यार्थी ने २ नवंबर १९११ को 'सरस्वती' में सहकारी संपादक के रूप में पत्रकारिता की शुरुआत की थी। १३ महीने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के सहयोगी के रूप में काम करने के बाद दिसंबर १९१२ में वे मदन मोहन मालवीय के पत्र 'अभ्युदय' में चले गए, जहाँ २३ सितंबर, १९१३ तक कार्यरत रहे। यहीं उनकी वैचारिक परवरिश हुई। सामाजिक-

(२६-१०-१८९०—२५-३-१९३१)

राजनैतिक जीवनचर्या के कारण विद्यार्थीजी अपनी गृहस्थी के प्रति उचित दायित्व नहीं निभा पा रहे थे और इसका उन्हें कितना मलाल था, इसे बताने के लिए कृष्ण बिहारी मिश्र ने विद्यार्थीजी द्वारा पत्नी व माँ को लिखे गए मार्मिक पत्रों को उद्धृत करते हुए ठीक ही कहा है, देश सेवा का व्रत इतना कठोर था कि परिवार की अपेक्षित सेवा न कर पाने को वे निरुपाय थे। विद्यार्थीजी ने ९ नवंबर, १९१३ को कानपुर से साप्ताहिक 'प्रताप' निकाला। उनकी आदर्श निष्ठा और अर्थ शुचिता का आग्रह इतना पुष्ट था कि अथक परिश्रम से 'प्रताप' का जो कोष तैयार किया, उसे निजी उपयोग के लिए स्पर्श करना उन्हें अपराध लगा। लोकनायक की भूमिका में सक्रिय विद्यार्थीजी के बहुआयामी व्यक्तित्व और उनके अवदान पर कृष्णबिहारी मिश्र ने पहले ही अध्याय में प्रकाश डाला है।

'समय संवेदना' शीर्षक से दूसरे अध्याय में विद्यार्थीजी के सत्य के प्रति आग्रह का विवेचन किया गया है। विद्यार्थीजी ने 'प्रताप' के पहले संपादकीय में अपने मंतव्य तथा नीति का ऐलान इस प्रकार किया था, ''आज अपने हृदय में नई-नई आशाओं को धारण करके और अपने उद्देश्यों पर पूर्ण विश्वास रखकर प्रताप कर्म क्षेत्र में आता है। समस्त मानवजाति का कल्याण हमारा परमोद्देश्य है और इस उद्देश्य की प्राप्ति का एक बहुत जरूरी साधन हम भारतवर्ष की उन्नति को समझते हैं। उन्नति से हमारा अभिप्राय देश की कृषि, व्यापार, विद्या, कला, वैभव, मान, बल, सदाचार और सच्चरित्रता की वृद्धि से है। भारत को इस उन्नतावस्था तक पहुँचाने के लिए असंख्य उद्योगों, कार्यों और क्रियाओं की आवश्यकता है। इनमें से मुख्यत: राष्ट्रीय एकता, सुव्यवस्थित, सार्वजिनक सर्वांगपूर्ण शिक्षा का प्रचार, प्रजा का हित और भला करनेवाला सुप्रबंध और सुशासन की शुद्ध नीति का राज-कार्यों में प्रयोग, सामाजिक कुरीतियों और अत्याचारों का निवारण तथा आत्मावलंबन और आत्म-शासन में दृढ निष्ठा है। हम इन्हीं सिद्धांतों और साधनों को अपनी लेखनी का लक्ष्य बनावेंगे। हम अपनी प्राचीन सभ्यता और जातीय गौरव की प्रशंसा करने में किसी से पीछे न रहेंगे और अपने पूजनीय पुरुषों के साहित्य, दर्शन, विज्ञान और धर्मभाव का यश सदैव गाएँगे। किंतु अपनी जातीय निर्बलताओं और सामाजिक कुसंस्कारों तथा दोषों को प्रगट करने में हम कभी बनावटी जोश या मसहल-वक्त से काम न लेंगे, क्योंकि हमारा विश्वास है कि मिथ्याभिमान जातियों के सर्वनाश का कारण होता है। किसी की प्रशंसा या अप्रशंसा, किसी की प्रसन्नता या अप्रसन्नता, किसी की घुड़की या धमकी हमें अपने सुमार्ग से विचलित

न कर सकेगी। सांप्रदायिक और व्यक्तिगत झगड़ों से 'प्रताप' सदा अलग रहने की कोशिश करेगा। उसका जन्म किसी विशेष सभा, संस्था, व्यक्ति या मत के पालन, पोषण, रक्षण या विरोध के लिए नहीं हुआ है, किंतु उसका मत स्वातंत्र्य विचार और उसका धर्म सत्य होगा। मनुष्य की उन्नति भी सत्य की जीत के साथ बँधी है, इसलिए सत्य को दबाना हम महापाप समझेंगे और उसके प्रचार और प्रकाश को महापुण्य। हम जानते हैं कि हमें इस काम में बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा और इसके लिए बड़े भारी साहस और आत्मबल की आवश्यकता है। हमें यह भी अच्छी तरह मालूम है कि हमारा जन्म पराधीनता और अल्पज्ञता के वायुमंडल में हुआ है। तो भी हमारे हृदय में केवल सत्य की सेवा करने के लिए आगे बढ़ने की इच्छा है और हमें अपने उद्देश्य की सच्चाई और अच्छाई पर अटल विश्वास है। इसीलिए हमें इस शुभ और कठिन कार्य में सफलता मिलने की आशा है।'' उपर्युक्त टिप्पणी के आखिर में बल देकर विद्यार्थीजी सत्य की सेवा का व्रत लेते हैं।

तीसरे अध्याय 'लोकयात्रा की प्रमुख सरणि : पत्रकारिता' और चौथे अध्याय 'विचार कोण की पहचान' में कृष्णबिहारी मिश्र विद्यार्थीजी की पत्रकारिता तथा उनके विचारों का सम्यक् विवेचन करते हैं। 'प्रताप' के प्रवेशांक के संपादकीय में संपादक ने जो कुछ कहा था, उसका निर्वहन सदा-सर्वदा किया। विद्यार्थीजी आदर्श से कभी च्युत न हुए। उन्होंने लिखा था, ''लेकिन जिस दिन हमारी आत्मा इतनी निर्बल हो जाए कि अपने प्यारे आदर्श में डिग जावें, जानबूझकर असत्य के पक्षपाती बनने की बेशर्मी करें और उदारता, स्वतंत्रता और निष्पक्षता को छोड़ देने की भीरुता दिखावें, वह दिन हमारे जीवन का सबसे अभागा दिन होगा, और हम चाहते हैं कि हमारी उस नैतिक मृत्यु के साथ ही साथ हमारे जीवन का भी अंत हो जाए।'' राष्ट्रजीवन के हर पहलू पर 'प्रताप' की नजर थी। २५ जनवरी, १९१४ के 'प्रताप' में 'देश का स्वास्थ्य' शीर्षक से अग्रलेख इसका ज्वलंत प्रमाण है, 'बड़ा ही अभागा है वह देश, जिसके युवक और युवतियों के चेहरों पर स्वास्थ्य की आनंददायिनी झलक देखने में न आवे। हृदय के क्लेश का ठिकाना नहीं रहता, जब हम देखते हैं कि ऐसे देशों में हमारा ही देश सबसे आगे बढ़ा हुआ है। देश के युवक और युवतियाँ नाम के युवक और युवतियाँ हैं, उनमें से ९९ फीसदी अपने अमूल्य स्वास्थ्य को खो चुके हैं और इस बात के पूरे व पक्के साक्षी उन्हीं का दबा हुआ हृदय, उन्हीं के बैठे हुए गाल और उन्हीं के चुचके और सूखे हुए शरीर हैं। कमजोर शरीरों से बलवान हृदयों की आशा नहीं की जा सकती, और पीले चेहरोंवाले बलवानों की ठोकरों से अपनी रक्षा नहीं कर सकते। सच है कि जातियों का निवास स्थान नगर ही नहीं होते और अधिकतर नगर निवासी ही प्रकृति के प्रारंभिक और आवश्यक स्वत्वों के शत्रु बन जाया करते हैं। लेकिन हृदय की अशांति और भी बढ़ जाती है, जब हम दूर नजर फेंकते हैं और उन झोंपड़ों को देखते हैं, जिनमें जनता का निवास है। हमारे देश के झोंपड़ों में भी विकसित और हँसमुख चेहरे, हृष्ट-पुष्ट शरीर और स्वस्थ्य मधुर कंठों का अभाव है। एक तरफ मलेरिया, हैजा और प्लेग घात लगाए हुए बैठे हैं, दूसरी ओर अविद्या, अज्ञान, निर्धनता और तरह-तरह के अत्याचार लोगों को अपने कठोर पैरों तले रौंदकर पूर्व-कथित मूर्तियों के शिकार बनाने में सुविधाएँ पैदा करते हैं।''

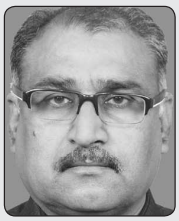

सुपरिचित लेखक। पत्रकारिता के उत्तर आधुनिक चरण, पत्रकारिता के नए परिदृश्य, हिंदी पत्रकारिता के शिल्पकार, हिंदी पत्रकारिता : परंपरा और समकालीन सरोकार, संवाद चलता रहे, रंग, स्वर और शब्द महाअरण्य की माँ, मृणाल सेन का छायालोक, करुणामूर्ति मदर टेरेसा, समाज, संस्कृति और समय, नजरबंद तसलीमा, पानी रे पानी, चलकर आए शब्द, मीडिया संस्कृति समय प्रकाशित। इसके अलावा कई किताबों का संपादन। संप्रति प्रोफेसर एवं प्रभारी, क्षेत्रीय केंद्र, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय।

'चलिए गाँवों की तरफ' अग्रलेख (१९ जनवरी, १९२५) में 'प्रताप' ने भावी दिशा-निर्देश दिया, ''जिन्हें काम करना है, वे गाँवों की तरफ मुड़ें, शहरों में काम हो चुका। शहर के लोगों को उतनी तकलीफें भी नहीं, शहरों में देश की सच्ची आबादी रहती भी नहीं। देश भर में फैलते हुए छोटे-छोटे गाँवों के छोटे-छोटे झोंपड़े ही देश की सच्ची संतति के निवास स्थान हैं। उन्हें जगाने का अभी बहुत कम प्रयत्न हुआ है। इस वर्ष जबकि मि.गांधी देश की फूट और आपसी लड़ाई को मिटाने का प्रयत्न करेंगे, स्वराजी लोग कौंसिलों में अपनी युद्ध कला दिखाएँगे, नेता लोग कौंसिल की मेंबरियों और सरकारी नौकरियों और अधिकारों के बँटवारे की चिंता में रत रहेंगे, तेज लोग सरकार से भिड़ने के उपाय को खोजते फिरेंगे, साधारण काम करनेवालों को चाहिए कि इधर-उधर न भटकें, वे देश के गाँवों की छिपी हुई शक्ति का संगठन करें। इस बात की शिकायत है कि बेलगाँव कांग्रेस ने देश के सामने कोई ऐसा राजनैतिक काम नहीं रखा, जिसमें देश की बिखरी हुई ताकतें लग जातीं और जिसके करने से हम राजनैतिक क्षेत्र में आगे बढ़ सकते। निस्संदेह हमारे इस समय के काम में कोई बात ऐसी नहीं है, जिसके आधार पर हम सरकारी सत्ता से भिड़ सकें। परंतु देश का शासन देश के आदमियों के हाथों में न होने के कारण सरकारी सत्ता से हर समय भिड़े रहने की आवश्यकता होने पर भी, ऐसा कर सकना संभव नहीं है। हमारे पिछले तीन वर्ष इस सत्ता से लड़ाई लड़ने में कटे। साधारण दृष्टि से देखनेवाला यह कहेगा कि हमारे हाथों कुछ भी नहीं आया। परंतु बात ऐसी नहीं है। हम अपने क्षेत्र में पहले आज तक बहुत आगे बढ़े हुए हैं, सरकारी सत्ताधारियों को बहुत पीछे हटना पड़ा है। इस समय हमारा और आगे बढ़ सकना इसलिए कठिन ही नहीं, असंभव सा है कि हम आगे बहुत बढ़ आए हैं, हमने अपने पीछे की तैयारी अधूरी छोड़ रखी है। यदि हमारे पीछे पूरी तैयारी हो तो हमें पीछे मुड़ना ही न पड़े।'' २ मार्च, १९२५ को 'प्रताप' में 'लक्ष्य से दूर' अग्रलेख में स्वतंत्रता-संग्राम में आई शिथिलता के विरुद्ध आगाह किया गया था, ''हम अपने लक्ष्य से दूर हटते जा रहे हैं। देश की आजादी का सवाल हमारे सामने है। कुछ समय पहले अधिकांश कार्यकर्ताओं को रात-दिन उसी की धुन थी। परंतु इस समय वे शिथिल हैं। शिथिल ही हों, सो नहीं, क्योंकि अधिक परिश्रम के साथ

कुछ समय तक काम कर लेने के पश्चात् कुछ शिथिल पड़ जाना स्वाभाविक सा है, किंतु वे भ्रम में भी पड़े हुए हैं, क्योंकि देश की स्वाधीनता के लक्ष्य की ओर उनका ध्यान इस समय उतना नहीं है और उनमें से बहुतों की शक्तियाँ इधर-उधर और किसी-किसी दिशा में तो हानिकारक दिशाओं तक में लग रही हैं। हम सब इस बात को भलीभाँति जानते हैं कि देश के साधारण आदमी जब तक मिल-जुलकर इस योग्य न बनेंगे कि वे अपने बल को जानने लगें और अत्याचार एवं अन्याय को मिटाने के लिए उस बल का संयत प्रयोग करने लगें, तब तक जिन सत्ताओं ने हमारी बाढ़ रोक रखी है, वे पीछे नहीं हटेंगी और हमारे हाथ-पैर नहीं खुलेंगे। साधारण आदमियों की शक्ति के संगठन की आवश्यकता न केवल इसलिए है कि उसके बल पर हमें देश के वर्तमान हकिमों के हाथ से शक्तियाँ छीननी है, किंतु उसकी आवश्यकता सबसे अधिक इसलिए भी है कि देश में जो स्वराज्य आगे चलकर स्थापित हो, वह सच्चे अर्थ में 'स्वराज्य' हो और उससे देश के इने-गिने आदमियों को ही लाभ न हो, देश के साधारण-से-साधारण मनुष्य को विकास का पूरा अवसर मिले। परंतु इस अमोघ शक्ति की उपासना और उसकी प्राप्ति की ओर से इस समय लोगों का ध्यान बे-तरह हटता जाता है। असहयोग की समाप्ति हो चुकी है। जो लोग अपने को अपरिवर्तनवादी दल का कहते हैं, वे भी बदल चुके। कम-से-कम उन्होंने असहयोग तो छोड़ ही दिया। इस समय वे चरखा और खद्दर पर ही बहुत जोर देते हैं। काम दोनों बहुत अच्छे हैं। परंतु वे ही सबकुछ नहीं हैं। उनका महान् क्षेत्र देहातों में कहा जाता है। उन्हें देहात के आदमियों का त्राता कहा जाता है। यह बात ठीक है, परंतु देश के अधिकांश गाँव अभी तक अछूते पड़े हुए हैं। उनमें न उन्हें सबल बनानेवाला कोई काम है और न इस प्रकार का कोई काम करनेवाला ही। इस प्रकार देश के इस सिरे से लेकर उस सिरे तक करोड़ों व्यक्ति गाँवों में ऐसे पड़े हुए हैं, जो समेटे और समझाए जाएँ तो देश की बड़ी भारी पूँजी और शक्ति बन जाएँ।''

अंग-प्रत्यंग टूक-टूक होते जाते हैं। पहाड़ की सी विपत्तियाँ सिर मँडराती हैं, परंतु उन्हें कुछ दिखाई ही नहीं देता। घटनाएँ भयंकर रूप धारण करके खोपड़ी को चकनाचूर करने के लिए आगे बढ़ती आती हैं, परंतु हमारे बुद्धि-विशारदों की समझ में कुछ आती ही नहीं। यही समझे बैठे हैं कि कहीं कुछ भी नहीं होता। और यदि कुछ हो भी रहा है, तो वह सब अनुकूल ही हो रहा है और आगे भी जो कुछ होगा, वह भी क्या मजाल कि हमारे प्रतिकूल हो जाए। मूर्खों का स्वर्ग है, जिसमें ये बुद्धि-निधान विचरण करते हैं। उनकी दशा को देखकर यदि कोई यह कहे कि इन्हें पक्षाघात हो गया है, तो बेजा न होगा।''

गणेशशंकर विद्यार्थी की टिप्पणियों से उस पूरे युग की पीड़ा का पता चलता है। २० अप्रैल, १९२५ को 'हिंदुओं की कूप-मंडूकता' अग्रलेख में उन्होंने लिखा था, ''हिंदुओं की शिथिलता देखकर हृदय में व्यथा होती है। कितना बड़ा समुदाय है। कितनी शक्तियाँ उसमें निहित हैं। कितनी बड़ी पूँजी उसके पास है। परंतु सब बेकार। उनकी यह दुरर्दशा है, जो न देखी और न सुनी हो। दिल-दिमाग पर निर्जीवता का राज्य है। अंग-प्रत्यंग टूक-टूक होते जाते हैं। पहाड़ की सी विपत्तियाँ सिर मँडराती हैं, परंतु उन्हें कुछ दिखाई ही नहीं देता। घटनाएँ भयंकर रूप धारण करके खोपड़ी को चकनाचूर करने के लिए आगे बढ़ती आती हैं, परंतु हमारे बुद्धि-विशारदों की समझ में कुछ आती ही नहीं। यही समझे बैठे हैं कि कहीं कुछ भी नहीं होता। और यदि कुछ हो भी रहा है, तो वह सब अनुकूल ही हो रहा है और आगे भी जो कुछ होगा, वह भी क्या मजाल कि हमारे प्रतिकूल हो जाए। मूर्खों का स्वर्ग है, जिसमें ये बुद्धि-निधान विचरण करते हैं। उनकी दशा को देखकर यदि कोई यह कहे कि इन्हें पक्षाघात हो गया है, तो बेजा न होगा।'' १९२६ में थानेदार शिवदयाल सिंह के खिलाफ एक विस्तृत रिपोर्ट 'प्रताप' में छपी तो उसने मुद्रक-प्रकाशक सुरेंद्र शर्मा तथा संपादक गणेशशंकर विद्यार्थी पर मानहानि का मुकदमा दायर कर दिया। १७ नवंबर, १९२६ को दोनों को चार सौ रुपया जुर्माना या छह-छह महीने की कैद की सजा सुनाई गई। विद्यार्थीजी ने कहा, ''हमारे साथ घोर अन्याय हुआ है। इस मामले में हम जुर्माना न देकर जेल जाने को तैयार बैठे हैं, इसलिए कि दुनिया आपके इनसाफ का नमूना देख ले।'' ३० मार्च को प्रयाग उच्च न्यायालय के जस्टिस वाल्श और जस्टिस बनर्जी की अदालत में अपील की गई। इस अदालत ने निचली अदालतों को आड़े हाथों लेते हुए थानेदार पर अभियोग चलाने की आज्ञा दी तथा जुर्माने की रकम वापस करने का आदेश दिया। १९३० के प्रेस ऑर्डिनेंस का पूरे देश ने विरोध किया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने यह अपील की कि प्रेसवालों को इस ऑर्डिनेंस के तहत माँगी गई जमानत जमा नहीं करनी चाहिए, चाहे प्रेस ही बंद क्यों न करना पड़े। 'प्रताप' ने प्रेस बंद करना ही उचित समझा। विद्यार्थी जी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', युगलकिशोर सिंह और देवव्रत शास्त्री को सजा हो गई। छह माह बाद ऑर्डिनेंस खत्म हुआ, परंतु इतने दिनों तक प्रेस बंद रहने के कारण 'प्रताप' की आर्थिक स्थिति बहुत विपन्न हो गई थी। फिर भी श्री प्रकाश नारायण शिरोमणि के संपादन तथा श्री हरिशंकर विद्यार्थी के प्रबंधन में 'प्रताप' पुनः अवतरित हुआ। थोड़े दिनों बाद ही शिरोमणिजी को भी सजा हो गई। १ फरवरी, १९३१ को श्रीनिवास बालाजी हार्डीकर संपादक बने और १५ मार्च तक रहे। ९ मार्च, १९३१ को विद्यार्थीजी रिहा हुए। उनकी इच्छा थी कि 'प्रताप' पुनः दैनिक स्वरूप में निकले। ११ दिसंबर, १९३० को इसका दैनिक सांध्य संस्करण निकलना शुरू भी हो गया था। विद्यार्थीजी ने संपादन अपने हाथों में ले लिया। २३ मार्च, १९३१ को सरदार भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को फाँसी हुई। कानपुर हिंदू-मुस्लिम दंगे की आग में जल उठा। २४ मार्च को दंगों का रूप और विकराल हो गया। विद्यार्थीजी लोगों को शांत करने और सुरक्षित स्थानों पर पहुँचाने के लिए निकल पड़े। २५ मार्च, १९३१ को कानपुर के चौबे गोला इलाके में उन्हें अपने प्राणों की आहूति देनी पड़ी। विद्यार्थीजी के लिए राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की श्रद्धांजलि थी, ''भगत सिंह से शूर किसी भी पुरावृत्ति के हैं शृंगार। पर पौराणिक युग में भी बस शिव-दधीचि तुझसे दो-चार।'' किताब के छठवें अध्याय सत्याग्रही की सनातम नियति में गांधीजी

की तरह विद्यार्थीजी की आहूति का विवरण दिया गया है। विद्यार्थीजी का अंतिम अग्रलेख या संपादकीय टिप्पणी थी, 'अंत का आरंभ'। वे लिखते हैं, ''निराश होने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार की प्रत्येक घटना, जिसकी भयंकरता से हृदय काँप उठे, जिसकी कटुता भावी संतति के लिए कलेजा छेदनेवाली कही जा सके, आशा और शुभ संदेश की वाहिनी है। देश में जिस स्वाधीनता का जन्म हो रहा है। यह उसी की प्रसव-वेदना है।'

'साहित्यिक सरोकार' शीर्षक अध्याय इस किताब को पूर्णता प्रदान करता है। उसमें कृष्णबिहारी मिश्र ने ठीक लिखा है कि विद्यार्थीजी की साधना की राह पत्रकारिता और व्यावहारिक राजनीति थी, किंतु साहित्य से उनकी संवेदना नैसर्गिक रूप से जुड़ी थी। अपने लेखन से विद्यार्थी जी ने श्रेष्ठ गद्यशिल्पी का प्रमाण दिया था। उनके अवदान की महत्ता को हिंदी जगत् ने स्वीकार किया था। गोरखपुर हिंदी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष पद के लिए उनका चयन साहित्यकार कुल का ही सम्मान प्रतीक था। इन अध्यायों के अलावा परिशिष्ट में बहुत मूल्यवान् सामग्री दी गई है, जैसे साप्ताहिक 'प्रताप' के प्रवेशांक की संपादकीय, 'प्रभा' के एक जनवरी १९२० का संपादकीय, 'प्रताप दैनिक किसलिए'। इस किताब के रूप में हिंदी पत्रकारिता के अनन्य स्तंभ गणेशशंकर विद्यार्थी के व्यक्तित्व और कृतित्व को दीप्त ढंग से कृष्णबिहारी मिश्र ही प्रस्तुत कर सकते थे, क्योंकि हिंदी पत्रकारिता के शिल्पकारों का उनके जैसा अध्ययन-अनुशीलन किसी ने नहीं किया है। सा.अ.

प्रोफेसर एवं प्रभारी, क्षेत्रीय केंद्र
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, कोलकाता
दूरभाष : ०९८३६२१९०७८

झुकाता शीश जिसे संसार

कविता

● बाबूलाल शर्मा 'प्रेम'

गरमियों के दिन

बीत पाए थे न पल हैरानियों के
आ गए दिन धूप की शैतानियों के,
गरमियों के आगमन का पत्र लेकर
डाकिया फिरता हवा का पूछता घर,
महल हैं किस ओर राजा-रानियों के
अनमने हैं तरु लताएँ फूल पत्ते,
हो गए रीते शहर के शुष्क छत्ते
कोष खाली हो गए रसदानियों के,
फिर हरे होंगे हृदय विश्वास है ये
रोज दुहराए समय इतिहास है ये,
जागते हैं भाग्य छप्पर छानियों के
आ गए दिन धूप की शैतानियों के।

मेरा देश

प्राण से प्यारा मेरा देश
नयन का तारा मेरा देश,
उठो, इसकी रक्षा में आज
लगा दें अपना जीवन प्राण,
देश पर हो जाएँ बलिदान!

यही सुख-संपत्ति का आगार
यही धन-रत्नों का भंडार,
विश्व में ऊँचा जिसका भाल
झुकाता शीश जिसे संसार।

जगत् से न्यारा मेरा देश
नयन का तारा मेरा देश,
चलो इसकी सीमा पर आज
शत्रु का चूर करें अभिमान,
देश पर हो जाएँ बलिदान!

निर्झरों-नदियों के उद्‌गार
गा रहे इसकी जय-जयकार,
मूक हैं पर्वत औ' पाषाण
छिपाए संस्कृति का विस्तार।

दूर तक सारा मेरा देश
नयन का तारा मेरा देश,
बढ़ो इसके पौरुष का आज
तान हिमगिरि पर नया वितान,
कोटि जन हो जाएँ बलिदान।

दिन बसंत के

उजले-पीले दिन बसंत के
रंग-रँगीले दिन बसंत के,
छलके घट ज्यों सौरभ रस के
गीले-गीले दिन बसंत के।

चंपा महके साँस-साँस में
बेला लहके आस-पास में,
चंदन वन के पथ में खोए
चरण चिह्न ज्यों किसी संत के,
पीले-पीले दिन बसंत के।

दबे पाँव आए अपनों से
बचपन के भूले सपनों से,
फूलों भरी घाटियाँ लगतीं
बिखरे ज्यों मोती अनंत के।

घाट-घाट फहरे आँचल से
साँसों बसी प्रीति के पल से,
नेह निमंत्रण देने आए
फिर हरकारे दिन-दिगंत के।

उजले-पीले दिन बसंत के,
रंग-रँगीले दिन बसंत के।

सा.अ.

इंद्रपुरी, पोस्ट मानस नगर
लखनऊ-२३ (उ.प्र.)

बाबू साहब

● राजेश सहाय

सुबह-सवेरे रामू को दौड़कर आते हुए देख सावित्री देवी को बड़ा विस्मय हुआ। रामू गोविंद बल्लभ बाबू के घर का पुराना नौकर है, गाँव की भाषा में कहें तो बराहिल है, जो पुश्तों से बाबू साहब के घर में काम करते आए हैं। एवज में उसके परिवार की सारी जिम्मेवारी गोविंद बल्लभ बाबू के जिम्मे है। शादी-ब्याह, जनम-मरण के सारे खर्चे उसे बाबू साहब से मिल जाते हैं। रामू अथवा रामुआ गोविंद बल्लभ बाबू के घर का मैन फ्राइडे है, यानी घर-बाहर, खेती-गृहस्थी के सारे काम उसके और उसके बेटों के जिम्मे हैं। सुबह-सुबह गाय और बैलों को चारा-पानी दे, वह हल-जुआठ और बैलों को ले खेत की ओर निकल जाता है और दोपहर से पहले वापस नहीं आता। खेत जोतने से लेकर निराई, सफाई, दवनी आदि सारे काम वही करता है। आश्विन माह में धान की फसल खेतों में लगभग तैयार अवस्था में रहती है। किसान न केवल दिन में, वरन् रात में भी खेत-खलिहान की रखवाली करते हैं। रमुआ और उसके बेटे भी बारी-बारी से रात में खेत पर बने मचान पर रुक फसल की निगरानी करते हैं। जंगली जानवरों का भय, खासकर हाथियों का भय तो सदा ही बना रहता है। अपने बेटे को रात की ड्यूटी से फारिग करने के लिए आज सुबह रोटी-गुड़ का नाश्ता कर रमुआ को खेत गए कुछ ही पल बीते थे कि उलटे पाँव दौड़ता-हाँफता पुनः घर की ड्योढ़ी पर खड़ा था।

''अरे, सुबह-सुबह खेती-बाड़ी के सारे काम छोड़ कहाँ से दौड़े चले आ रहे हो, रमुआ? तुम्हें तो इस वक्त खेत पर होना चाहिए था। तुम यहाँ कैसे?'' सावित्री देवी ने जरा रोष में पूछा।

''मालकिन, बाबू साहब कहाँ है? गजब हो गईल। अनर्थ हो गईल। मालकिन, बाबू साहब को जरा जल्दी बुलाइए न!'' अपनी साँसों पर काबू करते रामू की जबान से सिर्फ यही निकला।

''अरे, क्यों हलकान हुआ जा रहा है? तुझे मालूम है न, साहब के उठने का समय अभी नहीं हुआ है। फिर अनजान की तरह क्यों जवाब-तलब कर रहा है। साहब कल भी अभ्रक खान से देर रात करीब दो बजे लौटे थे और अभी सो रहे हैं। मैं अभी उन्हें नहीं उठा सकती। बता, बात क्या है, जो आसमान सिर पर उठाए हुए है?'' सावित्री देवी ने रामू को टालने की गरज से कहा।

यों भी सावित्री देवी सवेरे-सवेरे के बिन बुलाए आगंतुकों से भलीभाँति परिचित थीं। गाँव के गरीब किसान अथवा मजदूर रमुआ की अकसर चिरौरी करते, ताकि बाबू साहब से पैरवी करवाकर प्रखंड अथवा अनुमंडल कार्यालयों में फँसे अपने काम निकलवा सकें। रामू

जाने-माने लेखक। अब तक कई लेख, कहानी और यात्रा-संस्मरण राष्ट्रीय एवं झारखंड की आंचलिक पत्रिकाओं में प्रकाशित। आकाशवाणी जमशेदपुर से कई रेडियो टॉक प्रसारित। कहानी विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस से विश्व हिंदी कहानी प्रतियोगिता २०१२ में पुरस्कृत। संप्रति भारत सरकार के कृषि मंत्रालय में कार्यरत।

अपनी मेहनत और लगन से न केवल सावित्री देवी का, वरन् गोविंद बल्लभ बाबू का भी चहेता है, अतः गाँववाले मानते हैं कि रामू की पैरवी साहब टाल नहीं पाएँगे। गाँव में रामू की पूछ इसी वजह से है। गोविंद बल्लभ बाबू का दबदबा आस-पास के बीसियों गाँवों में है। लोग-बाग उन्हें इज्जत से बाबू साहब कहते हैं। यह कीर्ति उन्हें अपने पिता श्री कृष्ण बल्लभ बाबू से विरासत में मिली है। उन्होंने इस कीर्तिपताका में इजाफा ही किया है। अपने पिता के ही समान गोविंद बल्लभ बाबू सदा गाँववालों की मदद को तैयार रहते हैं। अतः न केवल अपने गाँव में, वरन् आस-पास के बीसियों गाँवों में उनका काफी रसूख है। किसी जमाने में कृष्ण बल्लभ बाबू ने अंग्रेजों से लोहा लिया था। देश की स्वतंत्रता के बाद उन्होंने राजनीति से किनारा कर लिया। उनका मानना था कि अंग्रेजों से लोहा लेने के बाद अपने देशवासियों से चुनावों में दो-दो हाथ करना उनकी प्रतिष्ठा और गरिमा के अनुकूल नहीं था। उनकी इस भलमनसाहत की कद्र न केवल गाँववाले, वरन् प्रखंड और अनुमंडल में आनेवाले अधिकारीगण भी करते। मुखिया अथवा सरपंच न होने के बावजूद गाँववाले अपनी सारी समस्याओं और झगड़ों के निपटारे हेतु उनकी दहलीज का ही रुख करते। यहाँ तक कि मुखिया और सरपंच भी उनसे सलाह लेकर ही कोई काम करते। कृष्ण बल्लभ बाबू के बाद उनके पुत्र गोविंद बल्लभ बाबू को यह जिम्मेवारी विरासत में मिली। सत्तर के दशक में गाँव में एक गोविंद बल्लभ बाबू ही ऐसे शक्स थे, जिन्हें शहर में पढ़ाई कर गाँव के प्रथम ग्रैजुएट कहलाने का सौभाग्य प्राप्त था।

''माँजी, आप बाबू साहब को जल्दी से उठा दीजिए। लगता है, आज देवी-मंडप में कुछ अनर्थ होनेवाला है। दुसाध टोला के छोकड़े कुछ करनेवाले हैं, ऐसा लगता है।'' रमुआ ने शंका जताई।

'क्यों, वे लोग ऐसा क्या करनेवाले हैं?'' सावित्री देवी ने पूछा।

''मलकिनीजी, आप तो जानती ही हैं, आज नवरात्र की पहली पूजा है। आज से ठीक नौ दिन बाद नवमी है, जिस दिन दुर्गा-मंडप में

बलि दी जाती है। पर इस साल नवमी के दिन मंडप में कोई-न-कोई बवाल होने ही वाला है।'' रमुआ ने स्पष्ट किया, पर बवाल की असली वजह सावित्री देवी को बताने में वह अब भी झिझक रहा था।

''ठीक है, तुम रुको, मैं उन्हें उठाती हूँ।'' सावित्री देवी यह कह बाबू साहब को उठाने चली गईं।

□

शाहपुर गाँव छोटा अवश्य है, किंतु सभी जाति के बासिंदे यहाँ वर्षों से साथ रहते आए हैं। राजपूत बहुल इस गाँव में कोयरी और दलितों की संख्या भी बराबर है। जहाँ चालीस घर ऊँची जाति, यथा राजपूत, ब्राह्मण, भूमिहार और कायस्थों की है, वहीं कोइरी, कुर्मी और अन्य दलितों के भी चालीस से कम घर नहीं होंगे। जमींदारी प्रथा का अंत हुए हालाँकि अरसा बीत गया है, किंतु गाँव में जमींदार वास्तव में अब भी बने हुए हैं। बाबू गोविंद बल्लभ भले कभी जमींदार नहीं रहे, पर उनका रसूख और दबदबा किसी जमींदार से कम नहीं है। पर इसके साथ ही वे जमाने के साथ चलनेवालों में से हैं और समाज को साथ लेकर चलने में विश्वास रखते हैं। उनका मानना है कि गाँव की एकता बनाए रखने के लिए आवश्यक है राजपूत अपनी अकड़ ढीली करें और बहुमत के साथ मिलकर रहें। गोविंद बल्लभ बाबू की ये बातें ऊँची जातिवालों को नापसंद हैं, पर वे कसमसाने के अलावा कुछ नहीं कर पाते। पर यही दृष्टिकोण गोविंद बल्लभ बाबू को शाहपुर ही नहीं, आस-पास के बीस से अधिक गाँवों में लोकप्रिय बनाती है। इन गाँवों में उनका यह संतुलित नजरिया उनकी एक निष्पक्ष और लोकप्रिय छवि प्रस्तुत करता है। उनके इसी निष्पक्ष दृष्टिकोण का हर कोई कायल है और गाँव का हर तबका उनका सम्मान करता है। यहाँ तक कि गाँव के दलितों को भी उनपर अटूट विश्वास है कि गोविंद बल्लभ बाबू के रहते उनके साथ कोई अन्याय नहीं होगा।

वर्षों से शाहपुर गाँव में कोई झगड़ा-झंझट या बवाल नहीं हुआ तो इसका एक कारण यह भी था कि गोविंद बाबू अपनी दूरदृष्टि से न केवल हिंदू-मुसलिम वैमनस्य, वरन् जातिगत द्वेष को भी तुरंत ताड़ लेते और इसे नियंत्रित करने में कोई कसर नहीं छोड़ते थे। स्वतंत्रता-संग्रामी के परिवार से होने के कारण लोग उनके निर्णयों की सदा प्रशंसा करते, क्योंकि वे सदा निष्पक्ष होते। जिला प्रशासन को उनकी इस छवि का लाभ मिलता था और शाहपुर के प्रति वे कदाचित् बेफिक्र रहते। उन्हें मालूम था कि गोविंद बल्लभ बाबू के होते इस गाँव में कोई ऊँच-नीच नहीं होगी। परंतु इससे यह निष्कर्ष निकालना भी सही नहीं होगा कि शाहपुर देश की बदलती सिद्धांतहीन गंदी राजनीति की दाँवपेंच से एकदम परे था। वोट के लिए सामाजिक न्याय के नाम पर जातिगत वैमनस्य को बढ़ावा देने के नेताओं के प्रयासों से भी वे अनभिज्ञ नहीं थे। धर्म के नाम पर समाज को बाँटने में तो मानो इन नेताओं ने महारत ही हासिल कर ली थी। परंतु यह गोविंद बल्लभ बाबू के रसूख का ही प्रताप था कि शाहपुर गाँव में कभी धर्म अथवा जातिगत झगड़े-फसाद नहीं हुए। स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण भारत का आईना भी बदल रहा था। सामाजिक न्याय की बयार शाहपुर में भी बह चली थी और इसका प्रत्यक्ष प्रमाण था दुर्गा-पूजा पर बलि प्रथा का जातिगत आधार पर प्राथमिकता का दलितों द्वारा विरोध।

गोविंद बाबू अब तक उठ चुके थे और दालान में भी आ चुके थे, जहाँ रामू सावित्री देवी से उन्हें उठाने की चिरौरी कर रहा था। उन्हें देखकर रामू ने नमस्कार किया।

''क्या बात है रमुआ, सुबह-सुबह क्या आफत आन पड़ी है?'' गोविंद बाबू ने पूछा।

''बाबू साहब, दुसाध टोला के लड़के लड़ने-मारने पर उतारू हैं। उन लोगों का कहना है कि मंदिर में जो अपना खस्सी लेकर पहले आए, पहले उसके खस्सी की बलि दी जाए।'' रमुआ रंजिश की वजह स्पष्ट कर बाबू साहब पर इस खबर का असर देखने लगा।

गोविंद बाबू रमुआ की इस सूचना से गहरी सोच में डूब गए। दरअसल वर्षों से गाँव में दुर्गा-पूजा की नवमी पूजा के दिन मंदिर में बलि देने की प्रथा रही थी। सर्वप्रथम मंदिर के पंडित के खस्सी की बलि दी जाती थी, तदुपरांत सरकारी खस्सी की बलि और फिर जातिगत आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, कायस्थ, वैश्य और अंत में शूद्र जाति के ग्रामीणों के खस्सी की बलि का नंबर आता था। पीढ़ियों से यह रिवाज चलता आया था। उच्च जाति के दबंगों द्वारा यह प्रथा जातिगत श्रेष्ठता को बनाए रखने का एक तरीका मात्र था। पर अब बदलाव की बयार बह चली थी और दलित वर्ग के नए लड़कों से इस व्यवस्था को मानने की उम्मीद रखने का कोई औचित्य नहीं था। पिछले कुछ वर्षों से यह खींचतान चली आ रही थी, किंतु कुछ पुराने लोगों के बीच-बचाव से लड़ने-झगड़ने की नौबत नहीं आई थी। किंतु इस वर्ष लग रहा था कि दलित समाज के लड़के इस परंपरा को मानने के एकदम खिलाफ थे, जिसका अंदेशा रमुआ के संदेश से गोविंद बाबू को हुआ।

गोविंद बाबू ने रमुआ को तो तुरंत दुसाध टोली के लड़कों को बुला लाने को भेजा और स्वयं आगे की रणनीति पर गहन विचार करने लगे। उन्हें मालूम था कि कदाचित् दुसाध टोली के लड़कों के प्रस्ताव का समर्थन करने पर उन्हें ऊँची जातिवालों के विरोध का सामना करना पड़े। बीच का रास्ता निकल आए तो कम-से-कम अभी इस विपदा को टाला जा सके। थोड़ी ही देर में रामुआ दुसाध-टोला के चंद लड़कों के साथ गोविंद बाबू के समक्ष खड़ा था। इन लड़कों का नेतृत्व मधु दूसाध का लड़का जीतन कर रहा था। जीतन के चेहरे पर रोष स्पष्ट झलक रहा था। अनमने ढंग से गोविंद बाबू को नमस्कार कर जीतन एक ओर खड़ा हो गया।

''क्यों रे जीतन, क्या बात है? यह झगड़ा-फसाद क्यों हो रहा है? तुम लोगों का खून ज्यादा गरम हो गया है क्या रे?'' गोविंद बाबू ने जीतन को लगभाग घुड़कते हुए पूछा।

''बाबू साहब, हम लोग मंदिर के पंडे के निर्णय के खिलाफ हैं कि नवमी को बलि में ऊँची जातिवालों को प्राथमिकता दी जाएगी। यह प्रथा हमें मंजूर नहीं है। आखिर जब सरकार हम सबको वोट का

बराबर अधिकार देती है तो मंडप का पंडा अब भी जाति-व्यवस्था बनाए रखनेवाला कौन होता है?'' जीतन ने छूटते ही कहा।

यों तो बलि की यह व्यवस्था सभी ऊँची जातिवालों का सम्मिलित निर्णय था, पर अन्य ऊँची जातिवाले, यथा राजपूत, भूमिहार और कायस्थ देवी दुर्गा की इच्छा बताकर ग्रामीणों में भय पैदा कर इसे बनाए रखने में अब तक सफल रहे थे। किंतु गोविंद बाबू यह भाँप चुके थे कि इस व्यवस्था को अब और आगे ढोना संभव नहीं है। यों तो व्यक्तिगत रूप से वे बलि प्रथा के ही खिलाफ थे, किंतु इस मुद्दे पर वे गाँव में आज भी स्वयं को अकेला पाते हैं। उन्हें गाँव का समर्थन प्राप्त नहीं है। अत: आज यदि वे इस प्रथा को बंद करने की वकालत करते तो कतिपय इस निर्णय पर उन्हें किसी भी जाति, वर्ग या समुदाय का समर्थन प्राप्त नहीं होता। कदाचित् यह मान लिया जाता कि वे मुख्य मुद्दे से मुँह चुरा रहे हैं और ऊँची जाति के होने के कारण व्यवस्था-परिवर्तन की जगह व्यवस्था बंद करने की वकालत कर रहे हैं। गोविंद बाबू ने तुरंत ही रमुआ को गाँव के सरपंच से पंचायत की आपात बैठक बुलाने को कहला भेजा।

पंचायत बुलाने की खबर जंगल की आग की तरह चारों ओर फैल गई। अगले ही दिन, यानी रविवार को न केवल शाहपुर गाँव, वरन् आस-पास के गाँव के लोग भी सुबह से ही स्कूल के सामने पंचायत भवन में जमा होने लगे। ग्रामीणों में उत्सुकता थी कि पंचायत आखिर क्या निर्णय लेगी। ब्लॉक-अधिकारी और लोकल बीट का हवलदार भी यह तमाशा देखने का लोभ-सँवरण नहीं कर पाए। कई तो केवल यह देखने के लिए आए थे कि हर बार विषम परिस्थितियों में भी समाधान ढूँढ़ निकालने में माहिर गोविंद बाबू इस बार क्या निर्णय लेते हैं। कुछ ऐसे भी थे, जो गरीबों के कल्याण के लिए चलाए जा रहे विभिन्न सरकारी ठेकों में सही-गलत पैसे बनाकर अब संपन्न अवश्य हो गए थे, किंतु इन्हें वह सम्मान और पूछ नहीं थी, जितनी गाँव के लोग गोविंद बल्लभ बाबू की किया करते थे। इसका मलाल इन्हें सालता रहता था। ग्रामीण समाज में अब भी इतनी नैतिकता थी, जो अर्थिक संपन्नता की जगह नैतिक संपन्नता को अधिक महत्त्व देता था। आज भी स्कूल के शिक्षक की समाज में ऐसे संपन्नों से ज्यादा इज्जत थी। ऐसे नव-धनाढ्य यों तो गोविंद बल्लभ बाबू के रोब-दाब के समक्ष कुछ नहीं कहते, पर मन-ही-मन उनसे ईर्ष्या अवश्य करते थे। इन ईर्ष्यालुओं को भी बैठे-बिठाए गोविंद बल्लभ बाबू को तौलने का मौका मिल गया। देखना था, इस बार गोविंद बल्लभ बाबू अगड़ों और पिछड़ों दोनों के बीच किस प्रकार संतुलन और अपनी इज्जत और सोहरत बनाए रख पाने में सफल होते हैं। यह मानव की प्रकृति है, वह अपनी इज्जत से ज्यादा सुकून अपने प्रतिद्वंद्वी की पराजय में पाता है।

यह तो सभी मानते थे कि सरपंच और पंचायत तो कहने मात्र को हैं—निर्णय तो गोविंद बाबू को ही लेना है और यह निर्णय उनकी जय या क्षय साबित होगी। आज पहली बार हुआ था कि पंचायत सभा स्वत: ही दो गुटों में बँट गई थी। एक ओर ऊँची जाति के लोग जमा थे तो दूसरी ओर दलित वर्ग के ग्रामीण। सबसे ज्यादा रोष और जोश युवा लड़कों में था, फिर चाहे वे ऊँची जाति के हों अथवा दलित। दोनों ही गुट के लड़के आज पूरी तैयारी से आए थे—लाठी-बल्लम से लैश एक-दूसरे को देख लेने के जोश से भरे हुए। यह नई बयार थी, जो गाँव में स्वतंत्र भारत की राजनीति का एक नया आयाम था—सामाजिक न्याय की, जिस जज्बे से प्रेरित होकर गोविंद बल्लभ बाबू के पिताजी ने कभी जमींदारी व्यवस्था का विरोध किया था, उसी का परिणाम है, जो आज दलित अपने अधिकारों के लिए सजग हो रहे हैं। इस बदलाव से जहाँ गोविंद बल्लभ बाबू आश्वस्त हैं। वहीं उन्हें यह चिंता भी खाए जा रही थी कि कहीं यह बदलाव गाँव की शांति और सौहार्द को तहस-नहस न कर दे। पंचों के अलावा स्थानीय विधायक प्रतिनिधि बलदेव सिंह और पास के गाँव के मुखिया भी इस मजलिस में जमा होने लगे। इंतजार था, दुर्गा मंडप में पूजा संपन्न होने के बाद पंडितजी का इस बैठक में पहुँचने का। बहरहाल पूजा समाप्त होने के बाद पंडितजी भी पधार चुके थे और अब सरपंच दुर्गा चौधरी को पंचायत की कारवाई प्रारंभ करनी थी। ग्रामीण उम्मीद कर रहे थे कि चौधरी सीधे मतलब के मुद्दे पर आए, पर चौधरी द्वारा ब्लॉक-अधिकारी और हवलदार का स्वागत भाषण उन्हें नागवार लग रहा था।

''सरपंचजी, आप हम सब लोगों का समय काहे बरबाद कर रहे हैं? पंचायत जिस बात पर बुलाए हैं, उसपर चर्चा काहे नहीं करते?'' जीतन ने चौधरी को टोका। चौधरी को बुरा तो लगा, पर अपने गुस्से पर काबू रख उन्होंने विधिवत् पंचायत की कारवाई शुरू की।

''महानुभावों आप सब गवाह हैं कि दुर्गा-पूजा में नवमी के दिन वर्षों से बलि की एक प्रथा बनी हुई है। सबसे पहले सरकारी बलि दी जाती है, फिर दुर्गा मैया पंडितों की बलि लेती है। इसके बाद मैया राजपूत, भूमिहार, कायस्थ और अंत में दलितों की बलि लेती है। यह रस्म दुर्गा मैया की पूजा में वर्षों से बनी है और अब तक चली आ रही है। पर अब कुछ लौंडे-लपाटों का कहना है कि इस प्रथा को बंद कर नई प्रथा शुरू की जाए।''

''चौधरीजी, आप लौंडे-लपाटे किसे कह रहे हैं? अब आप हमें चोर-उचक्के के संबोधन से बुलाएँगे?'' चौधरी आगे कुछ कहते, उससे पहले ही जीतन ने उन्हें टोका।

युवाओं में उमड़ते गुस्से को भाँपकर गोविंद बल्लभ बाबू ने बीच-बचाव किया। ''चौधरी, आपको यह भाषा शोभा नहीं देती। पंचों के लिए सभी बराबर हैं। यहाँ जातिगत भेदभाव का कोई स्थान नहीं होना चाहिए। क्यों बलदेवजी, आपकी क्या राय है?'' गोविंद बाबू ने जान-

बूझकर गेंद बलदेव सिंह के पाले में डाली।

''गोविंद बाबू, आप सही कह रहे हैं।'' बलदेव बाबू से और कुछ कहते नहीं बना। सार्वजनिक तौर यह स्वीकार करना उनके लिए संभव नहीं था कि जातिगत श्रेष्ठता की यह प्रथा बनी रहे, भले ही दिल से वे यही चाहते थे। दरअसल चुनाव के समय इन्हीं कथित 'लौंडे-लपाटों' की बदौलत विधायकजी दलित वोट के प्रति आश्वस्त रहते थे। अत: किसी भी सूरत में इन्हें नाराज करना बलदेव सिंह के वश का नहीं था।

''गोविंद बाबू, आप तो नाहक नाराज हो रहे हैं। इन नए जमाने के लड़कों को और क्या कहूँ? खैर, मैं अपनी बात वापस लेता हूँ और मुद्दे पर आता हूँ। दुसाध-टोला के लड़कों का कहना है कि जो पहले मंडप आए, उसके खस्सी की बलि पहले पड़े और इसी क्रम में और लोग जैसे-जैसे आएँ, उसी क्रम में उनके खस्सी की बलि दी जाए। अब आप लोगों का इस विषय पर जो सर्वमान्य विचार बने, उसी पर आगे बढ़ें।'' चौधरी ने लगभाग अपना पीछा छुड़ाते हुए कहा।

''पर हमें यह मंजूर नहीं है। यह हम सबों के लिए बेइज्जती की बात होगी कि कुछ लोगों के कहने पर हम वर्षों से चली आ रही परंपरा को यों ही बदल दें।'' बाप को न बोलते देख बलदेव सिंह के लड़के दिलीप ने अपना विरोध जताया।

''हाँ-हाँ, हम सबको यह मंजूर नहीं है।'' उसके दोस्तों ने उसकी हाँ-में-हाँ मिलाई।

''बलदेव, अब तुम्हारा लड़का ही तुम्हारा विरोध कर रहा है। अच्छा होगा, हम यह निर्णय इन्हीं लड़कों पर छोड़ दें। कल तक साथ-साथ गिल्ली-डंडा और कंचे खेलते नहीं अघाते थे और आज इनमें इतनी समझ आ गई है कि परंपरा और जातिगत श्रेष्ठता की बातें करने लग गए हैं। समझ में नहीं आता कि आजकल स्कूल में क्या यही पढ़ाया जाता है?'' गोविंद बाबू ने जरा रोष में कहा।

''बाबू साहब, आप स्कूल को दोष क्यों देते हैं?'' स्कूल के हेडमास्टर राधेश्याम यादव ने प्रतिवाद किया, ''स्कूल में तो सरकारी पढ़ाई ही होती है। गलती तो अभिभावकों की है, वे अब भी जातिगत पहचान बनाए रखना चाहते हैं और यही संस्कार अपनी अगली पीढ़ी को विरासत स्वरूप दे रहे हैं।''

''हेडमास्टर साहब, आपका कहना भी ठीक है। यह हम अभिभावकों की ही जिम्मेवारी बनती है कि हम अपने बच्चों में सही और प्रगतिवादी संस्कार डालें। खैर पंडितजी, आप बताएँ, आपकी क्या राय है इस प्रथा के बारे में?'' गोविंद बाबू ने पंडितजी से पूछा, जो अब तक एक कोने में चुपचाप खड़े थे।

''मैं क्या कहूँ?'' अचानक प्रश्न होने पर पंडित हरिहर मिसिर हड़बडा गए, ''यह तो दुर्गा मैया की मरजी है। वर्षों से ऐसा होता आया है और आगे भी ऐसे ही चलता रहे तो गाँव के लिए श्रेयष्कर होगा।'' मिसिरजी ने अपना मंतव्य दिया।

''दुर्गा मैया ने यह कब कहा कि वे जाति-क्रम में बलि लेंगी?'' जीतन अबकी बार पंडितजी से उलझ गया।

''बेटे, यह तो जाने ही दो कि यह बलि दुर्गा मैया की मरजी से दी जा रही है। भगवान् कभी भी अपनी रचना इसलिए नष्ट नहीं करता कि उसे इसकी जरूरत है। यदि ऐसा होता तो वह इस सृष्टि की रचना ही नहीं करता।'' गोविंद बल्लभ बाबू ने कहा, ''रही बात हमें इस परंपरा को बदलने की जरूरत है या नहीं? भगवान् की बात करें तो उसने हर इनसान को समान बनाया है। उसने न जाति बनाई न धर्म। यदि इतनी ही समझ हम इनसानों में होती तो ये दंगे-फसाद नहीं होते। अब यदि मनुष्य आपस में जाति बना ले तो इसमें भगवान् का क्या दोष और दुर्गा मैया की क्या मरजी?'' गोविंद बाबू ने मानो अपनी दिल की बात पंचों के सामने रख दी। एक बार तो पूरी सभा में सन्नाटा छा गया। गोविंद बल्लभ बाबू ने अपना कहना जारी रखा—''अंग्रेजों से हम सब साथ मिलकर लड़े थे—देश को स्वतंत्र करने के लिए। उस समय किसी ने नहीं सोचा कि वह ऊँची जाति का ब्राह्मण अथवा राजपूत है अथवा दलित जाति का। उस समय शत्रु एक था और लक्ष्य भी एक ही था—ब्रिटिश हुकूमत से भारत-माता को स्वतंत्र कराना। अब जब हम सबने मिलकर यह ध्येय प्राप्त कर लिया है तो आपस में लड़ने का कोई औचित्य नहीं है। रही बात पंचायत क्या निर्णय लेती है, तो यह मैं पंचों पर ही छोड़ता हूँ कि वे अपने विवेक से सर्वमान्य निर्णय लेंगे।'' गोविंद बल्लभ बाबू ने लगभग अपना निर्णय सुना दिया और पंचायत से उठकर चल दिए। इतना सब कहते-कहते गोविंद बल्लभ बाबू के चेहरे पर दर्द की एक लकीर खिंच गई, जो ग्रामीणों से छुपी नहीं रह सकी।

किंतु गोविंद बाबू पंचायत छोड़कर जा नहीं सके। न केवल जीतन ने, वरन् बलदेव सिंह के पुत्र दिलीप ने लपककर उनका मार्ग अवरुद्ध कर दिया। इनके पीछे-पीछे इनके गुट के लड़के भी आ खड़े हुए।

''चचा, आप हम सबको यों छोड़कर नहीं जा सकते।'' जीतन ने लगभग गोविंद बल्लभ बाबू के चरणों में झुकते हुए उनसे विनतीपूर्वक कहा।

''हाँ चचा, आप बिना निर्णय दिए पंचायत छोड़कर नहीं जा सकते।'' यह दिलीप था।

जीतन और दिलीप दोनों ही गोविंद बल्लभ बाबू का रास्ता रोक खड़े हो गए।

''चाचा, आपका निर्णय हमें सर्वमान्य होगा।'' दोनों ने लगभग साथ-साथ कहा।

गोविंद बल्लभ बाबू ने कनखियों से उस ओर देखा, जहाँ नव-धनाढ्य और विधायक प्रतिनिधि बैठे थे। उनके चेहरे लटक गए, जो आज गोविंद बल्लभ बाबू के क्षय देखने की ललक से आए हुए थे। युवाओं के जोश में नदियों सा उफान होता है, यदि इसे सही दिशा दे जाए तो फसलें लहलहा उठती हैं, अन्यथा यह सैलाब बन सब बरबाद कर देती है। जरूरत केवल इस बात की है कि कोई किस प्रकार इस उफान को रचनात्मक कार्यों में लगा दे। बुजुर्ग स्वभावत: जिद्दी होते हैं, जिसे इनके वर्षों का अनुभव पोषित करता है। युवा में यह जिद कम ही देखने को मिलती है और सही तरीके से समझाने पर ये जल्दी समझ भी जाते

हैं। युवा सामान्यत: दिल से निर्णय लेते हैं और आज भी गोविंद बल्लभ बाबू की हृदयस्पर्शी बातों ने युवाओं का दिल जीत लिया था।

बाजी पलट चुकी थी। गोविंद बल्लभ बाबू के भाषण का यथोचित असर हुआ दिख रहा था। सभा में अब तक अगड़ों और पिछड़ों के बीच व्याप्त तनातनी स्वत: तिरोहित हो गई लग रही थी। किंतु गोविंद बल्लभ बाबू इससे संतुष्ट नहीं दिखे।

''बेटा, तुम सब नए जमाने के गरम खून हो। मैं देख रहा हूँ कि अपने ही गाँव के लोगों को मारने पर उतारू होकर लाठी-बल्लम से तैयार होकर आए हुए हो।'' गोविंद बल्लभ बाबू ने पुन: कहा, ''आज पहली दफा पंचायत में न केवल लड़के, वरन् बड़े-बुजुर्ग भी अपने-अपने जातिगत गुटों में बँटे नजर आ रहे हैं। यह मेरे लिए बड़ी शर्म की बात है। अपने समस्त प्रयासों के बावजूद मैं गाँव में सही ढंग से एकता और सौहार्द कायम नहीं करवा सका। यदि यही स्वतंत्र भारत की नई तसवीर है तो मैं अपने पूर्वजों के प्रयासों को निष्फल मानता हूँ।''

''गोविंद बल्लभ बाबू, आप तो भावुक हो गए। पर पंचायत का निर्णय भावुकता पर आधारित नहीं हो सकता।'' ब्लॉक अधिकारी सियाराम सरन दास ने प्रतिवाद किया।

''सियाराम सरनजी, आप तो सरकार के अधिकारी हैं। बतौर एक अधिकारी आपकी भी कुछ जिम्मेवारी बनती है। नहीं तो बतौर एक बुद्धिजीवी भी इस मुद्दे पर आपकी निजी राय होगी, जिससे आप पंचायत को अवगत करा सकते हैं। आप केवल मूकदर्शक नहीं बने रह सकते और न ही अपनी जिम्मेवारी से पीछा छुड़ा सकते हैं। आप ही हल बताएँ। कल को यदि कुछ घटना घट गई तो सरकार पंचायत से नहीं, आपसे पूछेगी कि आपने क्या एहतियाती कदम उठाए?'' गोविंद बल्लभ बाबू ने ब्लॉक अधिकारी को ललकारा तो वे बगलें झाँकने लगे।

अब तक दोनों ही गुट के बुजुर्ग भी सामने आ चुके थे। जीतन और दिलीप को लगभग फटकारते हुए इन बुजुर्गों ने सम्मिलित रूप से गोविंद बल्लभ बाबू से पंचायत छोड़कर नहीं जाने का निवेदन किया।

''बाबू साहब, हमें किसी निर्णय पर तो पहुँचना ही पड़ेगा। आपके बिना यह संभव नहीं है।'' सरपंच दुर्गा चौधरी ने मानो समस्त गाँव का मत सामने रख दिया।

''हाँ-हाँ, हम सब बाबू साहब के निर्णय से सहमत होंगे।'' गाँववालों ने समवेत स्वर में कहा।

गोविंद बल्लभ बाबू को पुन: पंचायत में बैठना पड़ा। उन्होंने जमा भीड़ पर एक नजर डाली। जातिगत गुट का विलय हो चुका था। जीतन और दिलीप भी एक साथ खड़े नजर आए। समस्त ग्रामीणजन एक समान भीड़ में सिमट गए थे और इन सबों का रुख गोविंद बल्लभ बाबू की ओर था कि वे क्या निर्णय लेते हैं।

गला खखारते हुए गोविंद बल्लभ बाबू ने कहा, ''मेरी राय में अब समय आ गया है कि हम जातिगत बंधनों से ऊपर उठकर एक-दूसरे को इनसान मानते हुए सबको बराबर का दर्जा दें। तभी हम वास्तव में खुद को हिंदुस्तानी कह सकते हैं और देश के लिए स्वयं को समर्पित कर सकेंगे। यदि हम खुद ही जाति और धर्म पर बँटे रहे तो निश्चय ही अपनी स्वतंत्रता को आज नहीं तो कल गँवा देंगे। जातिगत बलि को प्रश्रय देने की परंपरा वर्षों से बनी हुई थी, किंतु अंग्रेजों के आने के बाद इसमें थोड़ा फेर-बदल हुआ। मंदिर के पुजारी के बाद सरकारी बलि की परंपरा बनाई गई। सरकारी, मतलब अंग्रेज अधिकारियों और जमींदारों के बाद जाति के आधार पर बनी परंपरा को ज्यों-का-त्यों रखा गया। यह इसलिए, क्योंकि बतौर शासक अंग्रेज अपनी सर्वोच्चता बनाए रखना चाहते थे। क्या तब दुर्गा मैया की सहमति ली गई थी? आज जब अंग्रेज चले गए और जनता की सरकार बन गई तो मंदिर के पुजारी के बाद आम जनता का ही नंबर आता है और इसलिए जो पहले आए, उसी को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। यही मेरा मत है।'' एक साँस में इतना कहकर गोविंद बाबू थोड़ी देर को रुके।

गोविंद बल्लभ बाबू का इतना कहना था कि दलितों में खुशी की लहर दौड़ गई। पर इससे बेखबर गोविंद बल्लभ बाबू ने अपना भाषण जारी रखा— ''इस वर्ष हम बलि की एक नई परंपरा शुरू कर रहे हैं, जो हमें जातिगत बंधनों से ऊपर उठाएगी। अगले वर्ष भी हम एक नई परंपरा शुरू करेंगे; हिंसा की इस परंपरा को हमेशा के लिए बंद करके। जिस हिंसा का हमारे शास्त्रों में कोई उल्लेख नहीं है, जिस हिंसा को भगवान् भी स्वीकार नहीं करता, उसे दुर्गा मैया के नाम पर बनाए रखना इन मूक पशुओं के प्रति बर्बरता है। अगले वर्ष से हम अनावश्यक पशु-बलि देकर दुर्गा मैया को नाराज नहीं करेंगे। बोलिए, आप लोगों का क्या मत है?'' गोविंद बल्लभ बाबू पुन: ग्रामीणों से मुखातिब थे।

''दुर्गा मैया की जय! गोविंद बल्लभ बाबू की जय! बाबू साहब की जय!'' ग्रामीणों के इस जय-घोष ने मानो गोविंद बल्लभ बाबू के निर्णय पर अपनी सहमति की मोहर लगा दी। विधायक प्रतिनिधि बलदेव सिंह, ब्लॉक अधिकारी सियाराम सरन दास समेत ऐसे जन, जो आज गोविंद बल्लभ बाबू के क्षय की मंशा से सभा में उपस्थित थे, मुँह ताकते रह गए। ग्रामीणों का गोविंद बल्लभ बाबू के प्रति विश्वास और समर्थन ने उनके मुँह बंद कर दिए थे। जब गोविंद बल्लभ बाबू ने उनकी ओर देखा तो ये सब खिसियानी हँसी हँसकर रह गए। गोविंद बल्लभ बाबू

कुछ और न कह पंचायत से उठ गए।

गोविंद बल्लभ बाबू के मुखमंडल पर संतोष की एक विलक्षण आभा झलक रही थी। उन्हें संतोष था कि एक बार पुन: वे गाँव की एकता और सौहार्द बनाए रखने में सफल हुए थे और एक अनहोनी टालने में सफल हो पाए थे। उन्होनें सिर उठाकर ऊपर देखा, मानो अंबर पर अपने स्वर्गीय पिता कृष्ण बल्लभ बाबू स्पष्ट देख रहे हों। गोविंद बल्लभ बाबू ने मन-ही-मन उन्हें धन्यवाद दिया, जिन्होंने उन्हें इस निर्णय के लिए आवश्यक हिम्मत प्रदान की थी। उन्हें महसूस हुआ कि पिताजी सदा उनके साथ हैं। इसी विश्वास के साथ गोविंद बल्लभ बाबू पंचायत से उठे और धीरे-धीरे उनके कदम अपनी हवेली के ओर बढ़ चले।

वापस हवेली पहुँचने तक गोविंद बल्लभ बाबू ने मन-ही-मन एक और निर्णय ले लिया था। आते ही उन्होंने रमुआ को बुला भेजा।

''आदेश दें, हुजूर!'' रमुआ हाथ जोड़ उनके सामने आ खड़ा हुआ।

''रमुआ, तुम्हारे कितने पोते हैं?'' गोविंद बल्लभ बाबू ने पूछा।

रमुआ को प्रश्न की वजह समझ नहीं आई। फिर भी उसने जवाब दिया, ''दो हैं, हुजूर।''

''क्या करते हैं?''

''अभी तो छोटे हैं। कुछ करने लायक नहीं हुए हैं।'' रमुआ ने जवाब दिया।

''पढ़ते-लिखते नहीं हैं?''

''नहीं साहब, पढ़-लिखकर वे क्या करेंगे?''

''नहीं, कल से तुम अपने दोनों पोतों को स्कूल भेजोगे। और हाँ, खबरदार, तुमने उनसे खेती-क्यारी का कोई काम लिया। पढ़ाई खत्म होने के बाद उनके भविष्य के बारे में सोचेंगे। उनकी पढ़ाई का सारा खर्च तुम्हें हमसे मिलता रहेगा।'' कहकर गोविंद बाबू उठ गए।

रमुआ को बाबू साहब की बातें समझ नहीं आईं। वह कुछ देर वहीं ठिठका सा खड़ा रह गया। फिर यों सिर हिलाया, जैसे वह सब समझ गया हो। ''जी अच्छा, बाबू साहब!'' कह वह वहाँ से चला आया।

ए-१४, अमन अपार्टमेंट्स
सेक्टर-१३, रोहिणी
नई दिल्ली-११००८५
दूरभाष : ९८१८९६९८८१

अंधानुकरण

लघुकथा

● रचना गौड़ 'भारती'

बड़े जुगाड़ के बाद आखिर हम सरकारी क्वार्टर छोड़ अपने घर आ गए। गृह-सज्जा के असीम सुख से परिपूर्ण जब मैं बालकनी में गई तो बगल में बने छोटे मकानों में कोई उत्सव सा प्रतीत हुआ। रोड लाईट के साथ हैलोजन की रोशनी पूरी सड़क को चमका रही थी। उन घरों के बीच रहनेवाले वकील बाबू सूट पहनकर, साफा बाँधे जैसे पश्चिमी संगीत पर थिरक रहे हों। अंतर इतना था कि संगीत की जगह जयघोष थी भक्तगणों की और लोग सामर्थ्यानुसार भेंट लेकर कतारबद्ध खड़े थे। हर भक्त का दुखड़ा सुन वकील साहब, जिनपर बाबाजी आए हुए थे, कपड़े की मूठ से पीठ पर थपकी दे रहे थे। घर के बाहर सजा तख्ता किसी सिंहासन से कम न था। यह प्रकरण निश्चित दिन व तिथि को नियमित देखने को मिलता। एक दिन मैंने वहाँ की किसी वृद्धा से पूछा तो पता चला, वकील साहब की वकालत नहीं चलती थी, पर उनके घर-संसार पर बाबाजी का प्रताप था। बोरियों नारियल, गेहूँ, चावल, घी, शक्कर, संपूर्ण राशन के अतिरिक्त गृहस्थी का अन्य सामान भी उन्हें प्रतापस्वरूप प्राप्त था। हर बार मैं इस तमाशे को देखती और शून्य में खो जाती। एकाएक वकील साहब का दिल के दौरे से स्वर्गवास हो गया। गलियाँ-सड़कें तक सूनी हो गईं। सन्नाटा पसर गया। काफी समयांतराल पर आज मैं विस्मित देख रही थी, उनके घर के बाहर पुन: तख्ता सजा है। वही गहमा-गहमी है, मगर वकील साहब की जगह उनकी पत्नी ने ले ली, जिन्हें आज देवी आई हैं।

हाथी दाँत

किशनलाल के परिवार को तनाव के झोंके हिला रहे थे। चार बेटों और दो बेटियों की परवरिश ने किशनलाल को जितना न थकाया, उतना बच्चों के बीच की कड़वाहट ने तोड़ डाला। घर में उठती दीवारें अब साफ नजर आने लगी थीं। किशलाल मध्यममार्गी अपने बेटों को नियंत्रण में रखने में असक्षम था। बड़ा बेटा एकाउंटेंट था, उससे छोटा एल.आई.सी एजेंट, तीसरे नंबर का मार्केटिंग में और चौथा पढ़ रहा था। तीनों में वैचारिक मतभेद थे। बेटियों में से एक की शादी कर दी थी और दूसरी कॉलेज में थी। परिवार में संस्कारहीनता के साथ अनुशासन की भी कमी थी। आए दिन घरेलू झगड़े हिंसा की सीमा तक पहुँचे जाते, और किशनलाल स्वभावत: अपनी बात मनवाने में निष्काम रहता। घर के अंदर जो भी हो, मगर बाहर उनकी नेतागिरी पुरजोर चलती थी। मंच का नशा कुछ ऐसा था कि एक जलसे में किशनलाल माइक के आगे बोल रहा था, ''समाज किस ओर जा रहा है, इसकी जिम्मेदारी हमारी है। समाज की उन्नति के लिए सबसे आवश्यक है—संगठन।''

३०४, रिद्धि-सिद्धि नगर पथ,
बूँदी रोड, कोटा (राजस्थान)
दूरभाष : ०९४१४७४६६६८

वैदिक वाङ्मय में जल का महत्त्व

● शकुंतला शर्मा

इदमाप: प्र वहत यत् किं च दुरितं मयि
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेष उतानृतम्॥

ऋग्वेद १०.२.८

हे जल देवता! मुझसे जो भी पाप हुआ हो, उसे तुम दूर बहा दो अथवा मुझसे जो भी द्रोह हुआ हो, मेरे किसी कृत्य से किसी को पीड़ा हुई हो अथवा मैंने किसी को गालियाँ दी हों अथवा असत्य भाषण किया हो, तो वह सब भी दूर बहा दो।

जल में अखंड प्रवाह, दया, करुणा, उदारता, परोपकार और शीतलता, ये सभी गुण विद्यमान रहते हैं। मनुष्य कितना भी दु:खी क्यों न हो, ठंडे जल से स्नान करते ही वह शांत हो जाता है। जल ही जीवन है। जल मानव को पुण्य-कर्म करने की प्रेरणा देता है। भारतीय संस्कृति पूजा प्रधान है। यहाँ किसी भी कार्य का प्रारंभ पूजा से होता है और प्रत्येक कार्य का विसर्जन भी पूजा से ही होता है। पूजा हेतु सर्वप्रथम पवित्रीकरण की आवश्यकता होती है और पवित्रीकरण के लिए जल की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार पूजा का विसर्जन शांति-पाठ से होता है और शांति-पाठ में जब मंत्रों का उच्चारण किया जाता है, तो पवित्र जल का अभिसिंचन किया जाता है। इस प्रकार जल के बिना किसी भी तरह की पूजा संभव नहीं है। वैदिक वाङ्मय में जल के महत्त्व को सर्वात्मना स्वीकार किया गया है और जल की गरिमा-महिमा का बखान श्रुतियों में सर्वत्र किया गया है।

रूपरसस्पर्शवत्य आपोद्रवा: स्निग्धा: ॥

वैशेषिक दर्शन, द्वितीय अध्याय, प्र.आ. जल तत्त्व में रूप, रस और स्पर्श इन तीन गुणों का समावेश है। जल स्निग्ध होने के साथ-साथ प्रवाहित भी होता है। प्रगट स्वरूप होने के कारण जल रूपवान भी है। जल को मुख में डालने पर शीतल, गरम, खारा एवं मधुर आदि का रसास्वादन होने से यह रस है। जल का स्पर्श करने पर उसके शीत और उष्ण होने का पता चलता है। इसलिए जल स्पर्श गुण से संपन्न है और अग्नि तथा वायु के गुणों का सम्मिश्रण भी है। जल का उपयोग चिकित्सा के लिए भी किया जाता रहा है, जैसा कि 'यजुर्वेद' में कहा गया है—

युष्माऽइन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्य्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वं
वृत्रतूर्य्ये प्रोक्षिता स्थ। अग्नये त्वा जुष्टं

सुपरिचित लेखिका। काव्य की छह पुस्तकें छत्तीसगढ़ी में तथा छह हिंदी में एवं अनुवाद की सात पुस्तकें प्रकाशित। छोटे-बड़े डेढ़ दर्जन पुरस्कार-सम्मान प्राप्त। संप्रति 'सरयू-द्विज' का संपादन।

प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि।
दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोऽशुद्धा:
पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि॥

यजुर्वेद प्रथम अध्याय जैसे यह सूर्यलोक मेघ के वध के लिए जल को स्वीकार करता है, जैसे जलवायु को स्वीकार करते हैं, वैसे ही हे मनुष्यो! तुम लोग उन जल औषधियों, रसों को शुद्ध करने के लिए मेघ के शीघ्र-वेग में लौकिक पदार्थों का अभिसिंचन करनेवाले जल को स्वीकार करो और जैसे वे जल शुद्ध होते हैं, वैसे ही तुम भी शुद्ध हो जाओ।

परमेश्वर ने सूर्य एवं अग्नि की रचना इसलिए की कि वे सभी पदार्थों में प्रवेश कर उनके रस एवं जल को तितर-बितर कर दें, ताकि वह पुन: वायुमंडल में जाकर और वर्षा के रूप में फिर धरती पर आकर सबको शुचिता और सुख प्रदान कर सकें।

आपोऽअस्मान् मातर: शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्व: पुनन्तु ।
विश्व हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुददाभ्य: शुचिरा पूतऽएमि।
दीक्षातपसोस्तनूरसि तां त्वा शिवा शग्मां परिदधे भद्रं वर्णम पुष्यन्।
॥ यजुर्वेद,४, २॥

मनुष्य को चाहिए कि जो सब सुखों को देनेवाला, प्राणों को धारण करनेवाला तथा माता के समान पालन-पोषण करनेवाला जो जल है, उससे शुचिता को प्राप्त कर जल का शोधन करने के पश्चात् ही उसका उपयोग करना चाहिए, जिससे देह को सुंदर वर्ण, रोग-मुक्त देह प्राप्त कर, अनवरत उपक्रम सहित धार्मिक अनुष्ठान करते हुए अपने पुरुषार्थ से आनंद की प्राप्ति हो सके।

वैदिक ऋषियों ने वैज्ञानिकों की तरह जल एवं वायु को प्रदूषण-मुक्त करने की बात कही है। यजुर्वेद में उन्होंने यह परामर्श भी दिया है कि हम वर्षा-जल को भी किस प्रकार औषधीय गुणों से परिपूर्ण कर

सकते हैं।

अपो देवीरूपसृज मधुमतीरयक्ष्मार्य प्रजाभ्य: ।
तासामास्थानादुज्जिहतामोषधय: सुपिप्पला: ॥
यजुर्वेद /११/३८/

राजा के पास दो तरह के वैद्य होने चाहिए। एक वैद्य सुगंधित पदार्थों के होम से, वायु वर्षा-जल एवं ओषधियों को शुद्ध करे। दूसरा श्रेष्ठ विद्वान् वैद्य बनकर प्राणियों को रोग-रहित रखे। 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' हमारा आदर्श है और इस आदर्श के निर्वाह के लिए इन दोनों दायित्वों का निर्वाह अनिवार्य है।

वेद में मानव-जीवन को 'कृषि-जीवन' कहा गया है और इसीलिए जलस्रोतों से हमारा रागात्मक संबंध रहा है। नदियों को हमने देवी-स्वरूपा माता की संज्ञा से अभिहित किया है। 'ऋग्वेद' की इस ऋचा में 'सरस्वती' नदी की महिमा गाई गई है—

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमंबनस्कृधि॥
ऋग्वेद /२/८/१४

हे सर्वोत्तम माते सरस्वती! तू सर्वोत्तम नदी के समान है। जिन नदियों का प्रवाह प्रकट है, वे गंगा-यमुना जैसी श्रेष्ठ नदियाँ हैं, परंतु तेरा प्रवाह गुप्त है, इसलिए तू श्रेष्ठतम है। तू सभी देवताओं में श्रेष्ठ आलोक प्रदाता है। हमारा जीवन अप्रशस्त जैसा बन गया है। हे माता! तू उसे प्रशस्त कर। हम उपेक्षित हैं, निंदित हैं। हे माता! तू हमारा पथ प्रशस्त कर।

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टय: संबभूवु: ।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमि: पूर्व पेये दधातु॥
अथर्ववेद/द्वादश-काण्डम्/३

सागर, नदी, कुआँ और वर्षा का जल तथा कृषि-कार्य आदि से जो मनुष्य नाव, जहाज, कला-यंत्र आदि का विधेयात्मक प्रयोग करता है, वह सबको आनंद प्रदान करता है। ऐसा व्यक्ति स्वत: भी श्रेष्ठ पद को प्राप्त करता है।

शं त आपो हैमवती: शमु ते सन्तूत्स्या: ।
शं ते सनिष्पदा आप: शमु ते सन्तु वर्ष्या: ॥
अथर्ववेद/एकोनविंश काण्डम्/१

मनुष्य को चाहिए कि वह वर्षा, कुआँ, नदी और सागर के जल को अपने खान-पान, खेती और शिल्पकला आदि के लिए उपयोग करे एवं अपने जीवन को संपूर्ण बनाए और चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करे।

अनभ्रय: खनमाना विप्रा गम्भीरे अंपस: ।
भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपो अच्छा वदामसि॥
अथर्ववेद/एकोनविंश काण्डम् /३/

विद्वान्, जिज्ञासु, वेद आदि तपस्वी साधक अनेक तरह के रोगों में जल के प्रयोग के द्वारा जल के अनंत गुणों की आपस में व्याख्या करें और समाज के हित में उसका भरपूर उपयोग करें।

वैदिक ऋषियों का जीवन एक प्रयोगशाला था। उन्होंने चिंतन, मनन और निदिध्यासन से जो उपलब्धि हासिल की, उसे जन-कल्याण हेतु समर्पित कर दिया—

अपामह दिव्यानामपां स्रोतस्यानाम् ।
अपामह प्रणेजनेस्श्वा भवथ वाजिन: ॥
अथर्ववेद/एकोनविंश/कांडम्/४

जल-चिकित्सा बहुत ही प्रभावी चिकित्सा पद्धति है, समस्त रोगों का निदान इससे संभव है। मनुष्य को चाहिए कि वह सागर, वर्षा, नदी, सरोवर आदि के जल को आवश्यकतानुसार चिकित्सा में उपयोग करके खेती के संसाधन की तरह जल का प्रयोग करके निरोग, वेगवान, प्रखर एवं बलशाली बने और समाज के हित में अपनी प्रतिभा एवं बल का समुचित उपयोग कर सके।

ता अप: शिवा अपोऽय मं करणीरप: ।
यथैव तप्यते मयस्तास्त आ दत्त भेषजी: ॥
अथर्ववेद/एकोनविंश/काण्डम्/५/

जल की महत्ता के विषय में मैं इतना ही कहना चाहती हूँ कि 'जल है तो कल है'। इस बात को हमारे पूर्वज भली-भाँति जानते थे और यही कारण है कि उन्होंने जल की महिमा का बखान वेद-वाङ्मय एवं सभी धर्म-ग्रंथों में किया है। हमें जल बचाने का उपक्रम करना चाहिए। जल के महत्त्व को समझकर सावधानीपूर्वक उसका उपयोग करना चाहिए, ताकि हम अपनी भावी पीढ़ी के लिए जल बचाकर रखें, जैसे हमारे पूर्वज हमारे लिए जल का विशाल भंडार छोड़कर गए हैं।

अपनी कविता की कुछ पंक्तियों के साथ मैं इस आलेख का समापन करती हूँ—

जल है जीवन, जीवन है जल, रे मानव मुझको पहचान,
कर मेरा उपयोग न अपव्यय, जिससे हो मेरा अपमान।
रख मेरे प्रति देवभाव मैं देता हूँ सुखमय जीवन,
रस बन बहता नर तन में सुख-दु:ख में बनता नीर नयन।
मैं सबको निर्मल करता पर दूषित करता है मुझे मनुज,
मुझसे ही उसका जीवन है नहीं समझता बात सहज।
यदि मेरे शुचि शीतल जल का मोल न मानव समझेगा,
बिजली होगी बंद धरा पर हाथ को हाथ न सूझेगा।

सा अ

२८८/७, मैत्री कुंज, भिलाई-४९०००६ (छत्तीसगढ़)
दूरभाष : ९३०२८३००३०

कुछ साहित्यिक महाविभूतियाँ

• श्रीधर द्विवेदी

यह महज संयोग की बात है कि मैंने जिस विद्यालय (काली चरण इंटर कॉलेज, लखनऊ) से दसवीं और इंटर पास किया, उसके प्रथम प्रिंसिपल आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रकांड विद्वान् बाबू श्यामसुंदर दास थे। कालांतर में वे काशी हिंदू विश्वविद्यालय के प्रथम हिंदी विभागाध्यक्ष बने। मैंने बाबू श्यामसुंदर दास को साक्षात् कभी नहीं देखा, परंतु हिंदी के विकास में उनके अमिट योगदान की छाप, उनके द्वारा अनुप्राणित हिंदी को संपुष्ट करनेवाली अनेक परंपराओं का श्रीगणेश पहले काली चरण कॉलेज में और बाद में काशी हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में स्पष्ट अनुभव किया। यहाँ यह उल्लेख करना अनुचित न होगा कि काशी हिंदू विश्वविद्यालय में चिकित्सा शास्त्र की मेरी पूर्ण यात्रा १९६३ से प्रारंभ होकर १९८६ में संपन्न हुई। कालीचरण कॉलेज व काशी हिंदू विश्वविद्यालय का सम्मिलित प्रभाव मेरे ऊपर इतना गहरा था कि चिकित्सा विज्ञान की पूरी पढ़ाई अंग्रेजी में होने के बावजूद मेरी हिंदी से निकटता घनी बनी रही। मैं विश्वविद्यालय में उपस्थित सभी हिंदी आचार्यों से उपयुक्त अवसर मिलने पर सुनता, मिलता-जुलता रहा। समय के साथ-साथ यह प्रीति दृढ़ होती रही। उनका स्नेहभाजन बना। तेईस वर्ष की इस लंबी अवधि में मुझे प्रोफेसर वासुदेव शरण अग्रवाल, श्री राय कृष्णदास, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पंडित विश्वनाथ मिश्र तथा आचार्य विद्यानिवास मिश्र का आशीर्वाद मिलता रहा। यद्यपि इनमें से कोई भी आज अपने भौतिक रूप में विराजमान नहीं है, किंतु उनके आशीषमय वात्सल्य की छाया स्मृति के वातायन से अकसर मुझे संबल प्रदान करती रहती है। उनमें से कुछ ऐसे अंतरंग पल हैं, जो इन महाविभूतियों के विराट् मानवीय व्यक्तित्व का भी बोध कराते हैं। प्रस्तुत हैं ऐसे ही कुछ संस्मरण—

'बिछुरत एक प्राण हर लेहीं'

मेरा यह परम सौभाग्य था कि वर्ष १९६३ में जब मुझे हिंदू विश्वविद्यालय के चिकित्सा विज्ञान महाविद्यालय में एम.बी.बी.एस. कोर्स में प्रवेश मिला, उस समय हिंदी तथा कला इतिहास के जाने-माने विद्वान् श्री वासुदेवशरण अग्रवाल काशी हिंदू विश्वविद्यालय में कला संकाय के अधिष्ठाता थे। वासुदेवशरणजी लखनऊ विश्वविद्यालय में मेरे पिताश्री के संस्कृत शिक्षा काल के सहपाठी रहे थे, इसलिए पिताजी सर्वप्रथम मुझे उनके विश्वविद्यालय स्थित आवास पर ले गए।

डॉ. श्रीधर द्विवेदी एम.डी., पी-एच.डी., एफ.ए.एम.एस., एफ.आर.सी.पी. (लंदन), नई दिल्ली स्थित जामिया हमदर्द के 'हमदर्द इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज एंड रिसर्च' में डीन व प्राचार्य पद पर कार्यरत हैं। उनका 'हृदयवाणी' शीर्षक काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ है। 'तंबाकू चित्रावली' उनकी दूसरी प्रमुख हिंदी रचना है।

मैं उनसे पहली बार मिल रहा था। प्रणाम-नमस्कार के बाद वासुदेवशरणजी के निकट बैठ गया। वे अत्यंत कृशकाय और धीरे-धीरे बोलनेवाले व्यक्ति थे। बदन पर एक शुभ्र बनियाइन और ढीली लपेटी सफेद धोती। उन्हें देखते ही लगता था, जैसे हम किसी प्राचीन काल के संत-ऋषि के पास बैठे हों। संस्कृत की मूल धारा से आकर हिंदी में अधिकारपूर्वक लिखनेवाले विद्वानों की वृहत्त्रयी आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पंडित विद्यानिवास मिश्र तथा श्री वासुदेवशरण अग्रवाल का नाम उन दिनों बड़े आदर से लिया जाता था। उनका घर मानो एक वृहद् पुस्तकालय था। उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया और कहा, कोई जरूरत हो तो संकोच मत करना। मैं जब भी उनके निवास पर जाता, वे अपने स्वागत-कक्ष के बाहर चबूतरे के ऊपर या लॉन में किसी वृक्ष के नीचे सूर्यालोक का आनंद लेते हुए छात्रों को पुराण, इतिहास या संस्कृत ग्रंथ का मर्म समझाते हुए मिलते। सहज मंद मुसकान के साथ पूछते, कैसे हो? फिर अपने अध्ययन-अध्यापन में तल्लीन हो जाते। मुझे बाद में मालूम पड़ा कि उन्हें डायबिटीज थी। उनकी भारतीय ज्ञान-विज्ञान और आयुर्वेद में प्रबल आस्था थी, इसलिए डायबिटीज के नियंत्रण के लिए वे पूर्णत: देशी दवाइयों पर आश्रित थे। जीवन के अंतिम क्षणों में उन्होंने आधुनिक ओषधियों को स्वीकार किया। तब तक बहुत विलंब हो चुका था। मात्र ६२ वर्ष की अवस्था में १९६६ में उनका देहांत हो गया। उस समय मैं एम.बी.बी.एस. चतुर्थ वर्ष में गया ही था और डायबिटीज की भयंकरता से उतना परिचित भी नहीं था। अत्यंत अल्प समय में ही मैं उनकी स्नेहच्छाया से वंचित हो गया, परंतु उनकी ऋषिवत् काया मेरी आँखों के सामने साक्षात् है तथा उनकी विद्वत्तापूर्ण साधु-भाषा अभी भी मेरे कानों में गूँज रही है। अपने छात्रों के लिए वे 'बिछुरत एक प्राण हर लेहीं' वाली श्रेणी के आचार्य थे।

'जापर विपदा पड़त है सो आवति यह देश'

वर्ष १९६३ में जब मैंने प्रवेश लिया, उस समय जस्टिस एन.एच. भगवती हमारे कुलपति थे, यथा नाम तथा गुण वाले अत्यंत धर्मनिष्ठ, कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी राजनीतिक कारणों वश चंडीगढ़ विश्वविद्यालय चले गए थे। उस समय हिंदी विभाग की अध्यक्ष शायद सुश्री ज्ञानवती त्रिवेदीजी थीं। कुछ वर्षों के बाद जब श्री अमरचंद जोशीजी ने कुलपति का कार्यभार सँभाला तो वे आचार्य द्विवेदीजी को सम्मानपूर्वक विश्वविद्यालय के रेक्टर के रूप में ले आए। पूरे विश्वविद्यालय में हर्ष की लहर दौड़ गई। आखिरकार वे हिंदी और काशी हिंदू विश्वविद्यालय के सर्वोत्कृष्ट देदीप्यमान नक्षत्र जो थे।

हिंदी अनुरागी होने के कारण मैं उनके हर सार्वजानिक भाषण-व्याख्यान का यथासंभव आनंद उठाता। उन दिनों मेडिसिन के आचार्य प्रोफेसर बाजपेई उनके निजी चिकित्सक थे। उनके माध्यम से मैं आचार्यजी के निकट स्नेहपात्र बन गया। विश्वविद्यालय से सेवा निवृत्ति के बाद वे रवींद्रपुरी स्थित अपने आवास पर चले गए। मेरा वहाँ यदा-कदा आना-जाना होता। उन्हें पौरुष ग्रंथि (प्रोस्टेट) की शिकायत थी, पेशाब में संक्रमण था। पीठ में दर्द होता था। एकदम से उठने में तकलीफ होती थी। उनके पिताश्री, जो पचासी पार कर रहे होंगे, उन्हें भी मूत्रकष्ट था। एकदम से पेशाब की हाजत होती थी। वे घर के भूमितल पार सोते थे और हजारी प्रसादजी शायद पहली मंजिल पर। रात में जब अत्यंत वृद्ध पिताश्री को मूत्र का आवेग होता तो चिल्लाकर कहते, 'का रे हजरिया' मानो आचार्यजी अभी भी ३०-३५ वर्ष के तरुण पुत्र हों। उस समय ७१ वर्षीय हजारी प्रसादजी अपनी पीठ को सहलाते हुए, कमर को किसी प्रकार सीधा करते हुए, धोती को साधते हुए सीढ़ियाँ उतरकर अपने पिताश्री को मूत्रपात्र में पेशाब कराते। आचार्यजी ने जब यह वर्णन मुझे सुनाया, तब मैंने उनके चेहरे पर पुत्रवत् कर्तव्यबोध और अपनी शारीरिक वेदना के मिश्रित भाव स्पष्ट देखे। एक दिन आचार्यजी कुछ अस्वस्थ थे। फोन पर उन्होंने प्रात: ८ बजे अस्पताल में आने की इच्छा प्रकट की। तय समय के अनुसार वे मेरे कक्ष में आ गए। अपरिहार्य कारणों से मुझे पहुँचने में १५-२० मिनट का विलंब हुआ। उस समय वहाँ पर विश्वविद्यालय के कुछ छात्र जमा थे। शायद जोर-जोर से बात कर रहे थे। आचार्यजी चुपचाप एक चिट पर यह लिखकर चले गए, 'प्रिय द्विवेदीजी, जापर विपदा पड़त है सो आवति यह देश। आपके कक्ष में आया था। पर यहाँ पर रामलीला लगी हुई है। फिर मिलूँगा। हजारी प्रसाद द्विवेदी।' मैं जब कमरे में पहुँचा तब तक वे जा चुके थे। मुझे तो काटो खून नहीं। मैंने उपस्थित विद्यार्थियों से पूछा, आचार्यजी आए थे, विद्यार्थी बोले—हाँ, गुरुजी आए तो जरूर थे। प्रणाम-दंडवत् हुआ, पर बोले कुछ नहीं। एक कागज लिये, कुछ लिखे और चले गए।

पान उनके जीवन का अभिन्न अंग था। जीवन के अंतिम दिनों में जब वे सर सुंदरलाल अस्पताल में भरती थे और उन्हें पान खाना मना करना अपरिहार्य था, तो प्रोफेसर बाजपेई को इस बात को आचार्यजी से कहने और मनवाने में कितनी सजगता और चतुरता बरतनी पड़ी, यह घटना हममें से बहुतों के लिए एक शिक्षाप्रद घड़ी थी। एक वह समय भी आया, जब उन्हें आधुनिकतम उत्कृष्ट चिकित्सा के लिए दिल्ली ले जाने का निर्णय लिया जाने लगा। वे स्वयं काशी छोड़कर अन्यत्र जाना पसंद नहीं करते थे, परंतु विधना के आगे सब परवश होते हैं। वे दिल्ली गए तो जरूर, पर काशी वापस नहीं आए और १९ मई, १९७९ को उनका देहांत हो गया। पूरे हिंदी-जगत् में शोक की लहर फैल गई। पूरा बनारस शोक में डूब गया। हिंदू विश्वविद्यालय में सन्नाटा पसर गया, मानो उसकी पारस मणि खो गई हो। ऐसे थे हिंदी के बाणभट्ट और विश्वविद्यालय परिसर में सबके चहेते परम आदरणीय आचार्य श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी, जिनका सान्निध्य और आशीर्वाद हम जैसे तमाम स्नातकों के लिए किसी अलभ्य वरदान से कम नहीं।

मृत्यु में भी सनातन

बात १९७० के समय की है। मैं मेडिसिन विभाग में हृदय रोग विशेषज्ञ प्रोफेसर प्रेम नारायण सोमानी की यूनिट में प्रथम वर्ष स्नातकोत्तर डॉक्टर था। सवेरे का समय था। सर सुंदरलाल अस्पताल के स्पेशल वार्ड के सामने डॉ. सोमानी ने टीम के सदस्यों से कहा कि विश्वविद्यालय स्थित कलाभवन के निदेशक हिंदी के उद्भट विद्वान् राय कृष्णदासजी, जिन्हें लोग आदरपूर्वक 'सरकारजी' कहकर पुकारते थे, अचानक अचेत हो गए हैं। उन्हें स्पेशल वार्ड में भरती किया जा रहा है। तुरंत उनकी रीढ़ की हड्डी से पानी निकालकर प्राप्त मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव्य को विस्तृत जाँच के लिए भेजना है। चिकित्सकीय भाषा में इस प्रक्रिया को लंबर पंक्चर (एल.पी.) कहते हैं। सोमानी महाशय की शर्त यह थी कि पहले प्रयास में ही कुशलतापूर्वक यह कार्य संपन्न होना है, क्योंकि राय कृष्णदासजी स्थूल बदन हैं। उस समय हम लोग करीब ५-६ लोग थे। सब लोग एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। अजीब प्रकार की निस्तब्धता थी। सब इस बात से आशंकित थे, यदि प्रथम प्रयास में सफलता नहीं मिली तो बड़ी भद्द होगी। प्रोफेसर सोमानी की मंद-मंद हास्यमयी पैनी दृष्टि घूमते-घूमते मेरे ऊपर टिक गई। बोले, 'डॉक्टर द्विवेदी, क्या आप यह कार्य कुशलतापूर्वक कर सकेंगे?' मैंने साहस बटोरकर हामी भर दी। भगवान् का नाम लेकर कटि प्रदेश में दो कशेरुकाओं के बीच के स्थान में लंबर पंक्चर किया। सफलता तो मिल गई, परंतु मस्तिष्क-सुषुम्ना द्रव्य के स्थान पर रक्त की बूँदें टपक रही थीं। मस्तिष्क-सुषुम्ना द्रव्य के रक्तिम होने का अर्थ था ऊपर प्रमस्तिष्क में रक्तस्राव हुआ था। पूछने पर पता चला कि राय कृष्णदासजी को बहुत दिनों से उच्च रक्तचाप था, जिसके कारण उनके मस्तिष्क की कोमल रक्त नलिकाएँ अंदर फट गई थीं। उनकी अचेतनता तथा मस्तिष्क-सुषुम्ना द्रव्य के रक्तिम होने का कारण अब स्पष्ट हो गया था। थोड़े दिनों में उचित ओषधि तथा सेवा-शुश्रूषा के बल पर वे धीरे-धीरे ठीक होने लगे। उनकी चेतना लौट आई। एक ऐसा समय भी आया, जब आंतरिक रक्तस्राव के कारण उनका हीमोग्लोबिन ६ के आस-पास पहुँच गया। गाड़ी फिर पटरी से

उतरती नजर आई। बड़ी विकट रात थी वह। वे अत्यंत अशक्त हो गए थे। रक्त चढ़ाना बहुत जरूरी था। हमारे अस्पताल में उस ग्रुप का रक्त मौजूद नहीं था। तय हुआ कि दिल्ली से रक्त लाया जाए। दिल्ली के ऑल इंडिया मेडिकल इंस्टिट्यूट और रेडक्रॉस से संपर्क साधा गया। दिल्ली में सरकारजी के परम हितैषी श्री मंगलनाथ सिंह ने दौड़-धूप कर रक्त का प्रबंध किया। रक्त लाने के लिए मुझे हवाई जहाज से भेजा गया और मैं चार बोतल खून लेकर वापस लौटा। किस्तों में उन्हें खून चढ़ाया गया, तब उनकी स्थिति में तेजी से सुधार होने लगा। हाथ-पैरों की निर्बलता व्यायामिक चिकित्सा और उनकी प्रबल इच्छाशक्ति के बल पर लौट आई। अब वे छड़ी के सहारे चलने लगे। दस दिनों के अंदर वे विश्वविद्यालय स्थित अपने आवास 'सीता निवास' लौट गए। डॉक्टर सोमानी साहब ने मुझे उनकी चिकित्सा देखभाल के लिए अपना प्रथम सहायक बना लिया। शनैः-शनैः उनका और उनके समस्त परिवार का मेरे ऊपर स्नेह तथा विश्वास बढ़ गया और मैं उनके परिवार का अंग बन गया।

वर्ष १९७१ आरंभ होते-होते सरकारजी पूर्णतः स्वस्थ हो गए। उनकी मेधा शक्ति पूर्ववत् हो गई। सोच-विचार, बात-व्यवहार में परम वैष्णव रायकृष्ण दासजी सौम्यता की साक्षात् मूर्ति थे। उनके घर पर हिंदी के दिग्गज विद्वानों का आना-जाना पुनः शुरू हो गया। इन लोगों में कुछ प्रमुख नाम थे—श्री सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', सुश्री महादेवी, महाकवि दिनकर, स्वर्गीय मैथिलीशरण गुप्त 'दद्दा' के परिवार के झाँसी से आए स्वजन, संगीत और कला के अन्य मर्मज्ञ विद्वान् महारथी। सरकारजी मुझे तथा डॉक्टर सोमानी साहब को इन पारिवारिक महोत्सवों पर अवश्य बुलाते और स्नेहवर्षा करते। १९७१ के सितंबर में बनारस में गंगाजी में भयंकर बाढ़ आई। भागीरथी का पानी विश्वविद्यालय के सिंहद्वार तक पहुँच चुका था। मालवीयजी की मूर्ति के सामने घुटनों से ऊपर पानी था। इसी समय मेरी पत्नी को सर सुंदरलाल अस्पताल में पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। तीन दिन बाद जब चिकित्सालय से मुक्ति मिली तो हम लोग बाढ़ के प्रकोप से बचने के लिए लंका में नौका के माध्यम से अपने निवास अमेठी कोठी में प्रवेश कर सके। यह सुनकर सरकारजी ने हमारे पुत्र का नाम गंगाधर रखने का सुझाव दिया और आशीर्वाद स्वरूप यह दोहा अपने हस्ताक्षरों में लिखा, 'श्रीधर गंगाधर सहित जीएँ कोटि बरीस, कृष्णदास प्रति रोम ते देति यही आशीष।' मुझे बाद में पता चला कि मेरे चचिया श्वसुर का नाम भी गंगाधर है। इसलिए सामाजिक मर्यादाओं को ध्यान में रखते हुए सरकारजी के भावनात्मक आशीर्वाद का पूर्ण सम्मान करते हुए मेरे पिताश्री ने पुत्र का नाम 'गिरीश' रखने का सुझाव दिया। बहुत सारी अन्य बातें और अंतरंग प्रसंग हैं, जो सरकारजी की भारतीय मूल्यों में अनन्य आस्था को दरशाते हैं। इन सबमें हृदयस्पर्शी है, उनका महाप्रयाण के समय का सनातन आचरण।

क्या आप कल्पना करेंगे कि मृत्यु जब आपके सामने साक्षात् खड़ी हो और आप गायत्री मंत्र का उच्चारण कर रहे हों? ऐसा आज के युग में शायद ही किसी ने देखा हो। मैं साक्षी हूँ उस मध्याह्न का, जब हिंदी और कला इतिहास जगत् के मूर्धन्य नक्षत्र अठहत्तर वर्षीय रायकृष्ण दासजी हिंदू विश्वविद्यालय स्थित अपने आवास में अंतिम साँसें ले रहे थे और साथ-साथ गायत्री मंत्र का पाठ कर रहे थे। उनके हृदय की कार्य क्षमता समाप्त हो चुकी थी। दिल एकदम शिथिल हो चुका था। तीव्र हृदय फैल्योर की स्थिति थी। दोनों फेफड़ों के वायुकोष अपने अंदर इकट्ठे पानी से बजबजा रहे थे। नासारंध्रों में ऑक्सीजन लगी हुई थी। मैं उन्हें नस के द्वारा प्राणरक्षक ओषधि दे रहा था, जिससे दिल के ऊपर बोझ कुछ कम हो सके और वे शांतचित्त से गायत्री का मंत्रोच्चार कर रहे थे। अद्‌भुत दृश्य था। ऐसे थे स्वनामधन्य रायकृष्ण दासजी। 'जनम जनम मुनि जतन कराहीं, अंत राम कहि आवत नाही' से मिलती-जुलती स्थिति। सरकारजी अब निढाल पड़े थे। थोड़े समय के बाद उनकी इहलीला समाप्त हो गई। उनके निधन के साथ-साथ कला-इतिहास का प्रकांड विद्वान्, चलता-फिरता विश्व-कोष और भारतीय संस्कृति के एक पुरोधा का अंत हो गया।

पांडित्य और सादगी की प्रतिमूर्ति

विश्वविद्यालय में लंबे काल तक हृदय रोग अनुभाग से जुड़े होने के कारण मेरा अनेक स्टाफ तथा शैक्षणिक वर्ग के लोगों से पारिवारिक संबंध हो गया था। विश्वविद्यालय की रिसर्च पत्रिका 'प्रज्ञा' के संपादक डॉक्टर राम मोहन पांडेय ने १९८९ जून के आस-पास बातचीत के क्रम में बताया कि पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, जो उन दिनों अतिथि आचार्य के रूप में मेरे आवास के अत्यंत निकट किसी फ्लैट में रहते थे, ब्लड प्रेशर से पीड़ित हैं। क्या मेरे लिए उन्हें अपने घर पर ही देखना संभव होगा? मैं अभी तक उनसे कभी नहीं मिला था। केवल सुना भर था कि वे हिंदी साहित्य के प्रकांड विद्वान् हैं। निस्पृह व्यक्ति हैं। पूर्व में विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्राध्यापक भी रह चुके हैं। ऐसे सुधी-गुणी विद्वान् की सेवा करने का सुअवसर कौन छोड़ना चाहेगा? मैंने सहर्ष स्वीकृति दे दी। शाम करीब ७ बजे का समय सुनिश्चित हुआ। पंडित अपनी शुभ्र टोपी और कुरता-धोती में जोधपुर कॉलोनी स्थित आवास में आए। उनको देखते ही मेरे मन में अपार श्रद्धा और आदर के भाव स्वतः जाग्रत् हो उठ। कुशल-क्षेम के पश्चात् उन्होंने बताया कि उन्हें विगत कई दिनों से सर में भयंकर दर्द है। आकुल कर देनेवाली पीड़ा। दो-तीन बार उल्टी भी हो चुकी थी। मैंने तुरंत ब्लड प्रेशर लिया। उस समय उनका ब्लड प्रेशर १८०/१०० था। मैंने उन्हें तुरंत अस्पताल में भरती होने का अनुरोध किया। भरती करने के लिए अस्पताल की इमरजेंसी को फोन किया। उन्हें सघन चिकित्सा-कक्ष में रखा गया। एक दिन बाद उन्हें उन्हें पुनः उग्र रक्तचाप का प्रकोप हुआ और तीव्र मस्तिष्काघात हुआ। उनके प्रमस्तिष्क की कोमल धमनियाँ फट गईं। उनसे रक्तस्राव हो रहा था। दिमाग का दौरा इतना जबरदस्त था कि उन्हें अथक प्रयासों के बावजूद बचाया न जा सका। ब्लड प्रेशर के कारण हिंदी और हिंदू विश्वविद्यालय ने अपने एक और सपूत को खो दिया। मेरी आँखों में उनकी सादगीपूर्ण, भव्य और भद्र प्रतिमूर्ति अभी भी अंकित है।

ललित निबंध के विद्यानिधि

आचार्य विद्यानिवास मिश्र यद्यपि काशी हिंदू विश्वविद्यालय से औपचारिक रूप से कभी संबंधित नहीं रहे, किंतु हिंदी व भाषा विज्ञान में उनके अप्रतिम योगदान का कारण उन्हें समय-समय पर अतिथि आचार्य के रूप में हमेशा बुलाया जाता था। यहाँ यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि विद्यानिवासजी जैसे किसी प्रकांड विद्वान् को किसी एक विश्वविद्यालय की भौतिक सीमा में बाँधना-देखना विश्वविद्यालय के सार्वभौमिक स्वरूप की अवधारणा का अपमान है। वे ऐसे विद्वान् थे, जिनका व्याख्यान सुनने के लिए हर हिंदीभाषी हमेशा आतुर रहता था।

ऐसे ही एक आयोजन पर १९७२ के आस-पास मेरी उनसे भेंट मालवीय भवन में हो गई, जहाँ मैंने महामना के बारे में उनसे सुना। वे बोलते क्या थे, मानो फूल झर रहे हों और शब्द नृत्य कर रहे हों। उनके श्रीमुख से मानो सरस्वती बरस रही थी। ऐसा लगता था, मानो माँ भारती का शारदीय-ललित रूप हमारी आँखों के सामने साक्षात् विराजमान हो। बोलने के समय उनके मुखमंडल की आभा उनके अंदर उठ रहे विचारों का ऐसा आईना थी, जिसको निहारने मात्र से उपस्थित सभी सुधी कृतकृत्य हों।

उनका भाषण समाप्त होने के पश्चात् मैंने उन्हें प्रणाम किया और अपना परिचय दिया। आचार्य मिश्र ने संस्कृत विश्वविद्यालय स्थित अपने आवास पर यथासमय मिलने को कहा। संयोग से उनके एक अन्य आत्मीय-पाल्य डॉक्टर कमलाकर त्रिपाठी उन दिनों मेडिकल संस्थान आई.एम.एस. बी.एच.यू. में अध्ययन कर रहे थे। डॉक्टर कमलाकर प्रबल हिंदीप्रेमी और कुशाग्र अध्येता थे। मैं उनके साथ पहली बार पंडितजी के संस्कृत विश्वविद्यालय स्थित निवास पर गया। उनका पूरा घर संस्कृतमय और भक्तिरस से सराबोर था। स्वस्तिक, तुलसी, गोमाता, पूजाघर, पूजा करते लोग स्वयं आचार्यजी ध्यान निमग्न, ऐसा दृश्य किसी प्रोफेसर निवास में पहली बार मिला। पंडितजी पूजा समाप्त करने पर बड़े ही आत्मीय और स्नेहमयी मुद्रा में हँसते हुए मिले। उन्हें अल्प श्रेणी का उच्च रक्तचाप था और थोड़ी रक्ताल्पता थी, जिसके कारण परिश्रम करने के बाद शारीरिक कमजोरी की शिकायत थी। मैंने उन्हें कम-से-कम जाँच और ओषधियाँ लिखीं और घर लौट आया। वह दिन था और उसके बाद २००५ तक मैं न जाने कितने बाद उनसे मिला, परंतु उनके चेहरे से मधुर हास्य को कभी हटते हुए नहीं देखा। घर पर जब भी मिला, उन्हें पूजा में रत पाया। शायद यह संस्कार उन्हें अपने पितृव्य से मिला था।

अक्तूबर १९७३ के आसपास आचार्य विद्यानिवासजी का पेट कष्ट और रक्ताल्पता बढ़ती जा रही थी। सांगोपांग परीक्षण के लिए उन्हें सर सुंदरलाल अस्पताल के स्पेशल वार्ड में भरती करना पड़ा। इन्हीं दिनों मेरे घर लक्ष्मी के रूप में एक कन्या ने जन्म लिया। पत्नी अस्पताल में थी। आचार्यजी को पता चला तो बोले, 'श्रीधर, इसकी जन्मपत्री मैं बनाऊँगा।' मैं अवाक् था। मुझे उनके ज्योतिष पक्ष का बिल्कुल ज्ञान न था। मैं यह तो जानता था कि इलाहाबाद विश्वविद्यालय के संस्कृत एम.ए. में उनके द्वारा स्थापित प्राप्तांक का कीर्तिमान अभी तक कोई तोड़ नहीं पाया है, परंतु ज्योतिष में भी उनका उतना ही अच्छा प्रवेश है, इसका मुझे अनुमान न था। उन्होंने तुरंत अस्पताल में कुरसी पर बैठे-बैठे सद्यःजात पुत्री की जन्मपत्री बना दी। हल्दी द्वारा अभिषिक्त कर जन्मपत्री अपने आशीर्वाद के साथ मुझे दे दी। कहना न होगा, यही जन्मपत्री मेरी पुत्री रोली के समस्त मांगलिक कार्य, पढ़ाई-लिखाई, विवाह आदि शुभ कार्यों का आधार बनी। आचार्य विद्यानिवासजी के ज्योतिष कौशल का भान शायद ही किसी अन्य को हो।

वे जब काशी से दैनिक 'नवभारत टाइम्स' के मुख्य संपादक के रूप में दिल्ली आ गए तो मेरा उनसे अकसर मिलना होता। वे मुझसे अकसर कहते, वर्तमान दिल्ली एक बहुत बड़े कब्रगाह की भाँति है। हुमायूँ के मकबरे से लेकर राजघाट-विजयघाट तक हर जगह कब्र ही कब्र। इन कब्रों के बीच किसे अध्यात्म या सनातनता की अनुभूति होगी? स्पंदनहीन-संवेदनहीन है दिल्ली। उनका मानना था कि बनारस जैसी आध्यात्मिक जीवंतता दिल्ली में रंचमात्र देखने को नहीं मिलती। 'नवभारत टाइम्स' के बाद उन्होंने 'साहित्य अमृत' के संस्थापक-संपादक के रूप में काम किया। काशी का आकर्षण उन्हें अंततः भगवान् भूतनाथ और माँ भागीरथी की नगरी ले गया। वहाँ उन्होंने पुराण प्रसिद्ध अस्सी नाले के किनारे अपना अत्यंत सुरुचिपूर्ण स्थायी निवास बनवाया। बनारस को केंद्र बनाकर वे अपने लेखन, पठन-पाठन, ध्यान-अनुशीलन, भाषण, वर्कशॉप-सेमिनार आदि गतिविधियाँ सक्रिय रखते थे। ऐसे ही एक कार्यक्रम में भाग लेने हेतु वे वाराणसी से आजमगढ़ की तरफ कार से जा रहे थे कि बनारस से कुछ दूरी पर उनकी कार एक वृक्ष से टकराकर दुर्घटनाग्रस्त हो गई। आचार्यश्री की दुर्घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गई। उनके शव की पहचान एक राहगीर ने की। 'बाप रे बाप, गजब हो गया, अरे यह तो परम पूज्य विद्यानिवासजी मिश्र हैं।' उनके अनुज डॉक्टर दयानिधिजी को सूचना दी गई। उनकी दुःखद मृत्यु पर सारे काशीवासियों की आँखें नम थीं। वे काशी के गौरव थे। उन्हें हमारा शत-शत प्रणाम। वे वास्तव में हिंदी साहित्य विशेषतः ललित निबंध के विद्यानिधि थे।

चिकित्सकीय संदेश

इन महाविभूतियों की संस्मरण शृंखला में हृदयस्पर्शी मानवीय पक्षों से जुड़ी बातों के अतिरिक्त एक महत्त्वपूर्ण चिकित्सकीय संदेश भी है—प्रकृति ने इन धुरंधर मनीषियों के निधन के माध्यम से मानो आज के पचास वर्ष पूर्व भविष्य में होनेवाली महाव्याधियों के विषय में हमें पर्याप्त पूर्व चेतावनी दे दी हो। लेकिन फिर भी हमने खतरे की इन घंटियों को सुनकर अनसुना कर दिया। काश, अब हम इन सब महाव्याधियों पर काबू कर पाते!

वरिष्ठ हृदय रोग विशेषज्ञ
नेशनल हार्ट इंस्टिट्यूट, नई दिल्ली-११००६५
दूरभाष :९८१८९२९६५९

संवेदना

● लक्ष्मी रूपल

दुकान के सामने खड़े भीमा ने हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए महाजन से कहा, ''अबकी बार दो सौ रुपए दे दो माई बाप।''

''चुकाएगा कहाँ से···अपना पेट भरने का तो जुगाड़ नहीं है तेरे पास। मजूरी का क्या है, आज यहाँ, कल वहाँ। तुम छोड़कर कहीं और चले जाओ तो मैं क्या तुम्हारे पीछे दौड़ता फिरूँगा?''

''इस बार ऐसा नहीं होगा। यहाँ काम नहीं मिला तो मैं आपकी दुकान में काम करके पैसा चुका दूँगा।''

''तो सुन लो, ब्याज दस रुपए महीना लगेगा। तुम्हारा क्या भरोसा, तुम छह महीने में भी नहीं चुका पाए तो?''

''ऐसा नहीं होगा, मालिक! मैं खाऊँगा नहीं, पर आपका पैसा जरूर चुका दूँगा। बहुत जरूरत है।''

''अच्छा ठीक है, शाम को ले जाना। सुबह-सुबह बोहनी का समय है, शकुन खराब हो जाएगा।''

भीमा अपना सा मुँह लेकर वहाँ से चला आया।

भीमा के माता-पिता तो बचपन में ही उसे छोड़कर चल बसे थे। चाचा ने पाला था। पढ़ाने-लिखाने की बात तो कभी किसी ने सोची ही नहीं थी, जबकि गाँव में एक विद्यालय था, जिसमें सरकार की ओर से बच्चों को रात के समय पढ़ाने की व्यवस्था थी। परंतु यहाँ तो साँझ होते-होते ही भीमा इतना थक जाता था कि जिस जगह बैठकर खाता, वहीं लुढ़क जाता। दस वर्ष की उम्र में ही चाचा ने उसे गाँव के तेल-मिल मालिक के पास काम पर लगा दिया था। दूसरे नौकरों के साथ वह भी सारा दिन तेल निकालने की मशीन पर काम करता। जिस दिन मालिक के घर जूठे बरतन माँजने चला जाता, उस दिन उसे खाना भी वहीं मिल जाता। मालिक की बेटी रीना उसके साथ खेलती रहती। वह कभी उसे झूला झुलाने के लिए कहती तो कभी बगीचे में दौड़ जाती। एक दिन वह अमरूद खा रही थी। आधा खाया हुआ अमरूद उसने भीमा को दिया और कहा, ''भीमा! तू अपनी माँ से पैसे ले आना और मैं भी ले आऊँगी। हम दुकान से खूब सारे अमरूद खरीदकर ले आएँगे। फिर तुम पेट भरकर खाना।'' भीमा एकदम चुपचाप अपनी मैली कमीज का कोना मुँह में दबाए फटी-फटी आँखों से उसकी ओर देखकर कहने लगा, ''माँ···पैसे···अमरूद!'' मानो ये सब उसके लिए नए शब्द थे। बोला, ''दीदी! मेरी माँ नहीं है। मैं चाचा के पास रहता हूँ। मेरे सारे पैसे चाचा ले लेता है। अगर मैंने पैसे माँगे तो मुझे बहुत मारेगा।'' ''अच्छा, ठीक है, तू पैसे मत लाना।'' रीना उसके साथ कभी-कभी खेलती थी। उसके प्रति संवेदनशील हो गई थी। अत: कभी अपनी जेब से निकलकर

जानी-मानी रचनाकार। 'मन की मणियाँ' (गद्य-गीत), 'किराए का पति' (कहानी-संग्रह), 'कतरा-कतरा सच' (लघुकथा-संग्रह) प्रकाशित। 'स्व. सुरिंद्र कौर स्मृति सम्मान', 'परमहंस श्री गोपालनाथजी स्मृति सम्मान', 'टैगोर लिटरेसी अवार्ड' एवं श्रीनाथद्वारा में 'हिंदी भाषा भूषण सम्मान' के अलावा अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

मूँगफली और कभी भुने चने दे दिया करती।

भीमा अब सोलह वर्ष का हो गया था। काम भी खूब कर लेता था। चाचा ने गाँव की एक गरीब लड़की सुगनी के साथ उसका विवाह कर दिया। पहले कुछ महीने तो भीमा की बहू चाचा-चाची की सेवा करती रही, घर का सारा काम करती रही। बाद में गाँव से कुछ दूरी पर नहर बनाने का काम चालू हो गया और भीमा वहीं पर ठेकेदार के पास मजदूरी करने चला गया। कुछ समय बाद वह सुगनी को भी अपने साथ ले आया और ईंट-गारे से बनी कच्ची बस्ती में उसका संसार बस गया। आस-पास और भी बहुत से मजदूरों की झोंपड़ियाँ थीं। ठेकेदार का आदमी सात दिन में एक बार पैसे देने आता था, सो उसी से खाने-पीने का खर्च चलता था। सुगनी मिट्टी के बरतनों में जो भी जुटता, खाने को बना लिया करती। कभी पैसे नहीं होते तो महाजन की दुकान से सत्तू लाकर दोनों पेट की आग बुझा लेते। वैसे भी ठेकेदार का आदमी पूरे पैसे तो देता नहीं था। जो कुछ मिलता, उसमें से भी कुछ पैसे भीमा चाचा को दे आता और कुछ महाजन का उधार चुकाने में चले जाते थे। अत: आँखों में सुंदर सपने लेकर अभावों के जिस घर से वह आई थी, वही अभाव यहाँ भी उसका पीछा कर रहे थे।

घर में तो काम अधिक था नहीं, बस वह अपने घर-द्वार को गारे से लीप लिया करती। इस छोटी सी बस्ती में और भी मजदूर अपने बाल-बच्चों के साथ रहते थे। कुछ ऐसे भी थे, जो पति-पत्नी सारा दिन नहर पर काम करते और उनके बच्चे पेड़ की छाया में पड़े अपने छोटे भाई-बहनों को खिलाते रहते। काम के बीच में जब भी समय मिलता, माँ वहाँ आकर दूध पिला जाती। भीमा के घर से कुछ ही दूर पर एक बुढ़िया रहती थी। बेटा-बहू तो सारा दिन मजदूरी करते, बुढ़िया घर के छोटे-मोटे काम करती रहती। कभी जलाने के लिए उसके हाथ में दो-चार लकड़ियाँ होतीं तो कभी पेड़ों के नीचे से सूखे पत्ते इकट्ठे करके एक बोरे में भरकर वह घर ले आती और इन्हीं को जलाकर खाना बना लेती। एक दिन बुढ़िया लँगड़ाकर चल रही थी। सिर पर पानी की मटकी थी। सुगनी से देखा नहीं गया। उसने पास जाकर पूछा, ''दादी! पैर में

क्या हो गया? लाओ, तुम्हारे घर पानी मैं धर आती हूँ।'' आगे बढ़कर उसने पानी की मटकी अपने सिर पर रख ली। ''कौन हो तुम? अरे हाँ, याद आया···भीमा की ब्याहता हो, मरी, इन आँखन से तो दीखत भी न है।'' सुगनी ने पानी बुढ़िया के घर में रख दिया। बुढ़िया ने न जाने कितने आशीर्वादों से उसकी झोली भर दी। सुगनी कभी-कभी इसी बुढ़िया के दरवाजे पर आकर बैठ जाती थी और दोनों अपने अभावग्रस्त जीवन के सुख-दु:ख बाँटकर कुछ देर को हलका महसूस करतीं। इसी बस्ती में कुछ ऐसे भी लोग रहते थे, जो रात में शराब पीकर हो-हल्ला किया करते थे। इसीलिए कोई बहू-बेटी घर से बाहर नहीं निकलती थी।

सुगनी को यहाँ आए छह महीने से अधिक हो गए थे, परंतु उसकी अवस्था में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। पिता के घर में भी यही हाल था। न कभी पेट भर खाने को मिला, न ढंग का कुछ पहनने को। उसने सोचा था कि पति के घर में आने पर उसका जीवन बड़ा सुखद, सुंदर होगा। पर कहाँ? यहाँ पर भी वही दरिद्रता पाँव पसारे बैठी थी! विधाता का हिसाब भी कुछ अलग ही है, जिसने सारी दरिद्रता, सारे अभाव जैसे इन्हीं लोगों के जीवन में भर दिए हैं। भीमा चाहता तो यही था कि सुगनी को वह सुख व आराम से रखे, परंतु उसकी मजबूरियों ने सारी आशाओं पर पानी फेर दिया था। अत: वह चुप रहता था। सुगनी भी क्या करती। कभी-कभी यही कहती कि कभी तो हमारे भी दिन फिरेंगे। एक दिन सुगनी ने पति से कहा, ''इस बस्ती में और भी बहुत सी औरतें मेहनत-मजूरी करती हैं, मैं भी कर लूँगी। घर में दो पैसे आ जाएँगे। वैसे भी सारा दिन काम ही क्या है मेरे पास।'' भीमा भी मन-ही-मन यही तो चाहता था, परंतु अपने मुँह से नहीं कहना चाहता था। सोचा, चलो साथ तो रहेंगे और उसने हामी भर दी। दूसरे ही दिन भीमा ने ठेकेदार के मेट से बात कर ली और सुगनी काम पर लग गई।

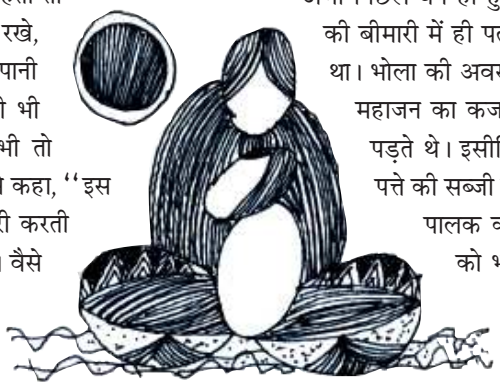

सुगनी को भी वही ईंट, पत्थर, गारा ढोने का काम मिला। ठेकेदार का आदमी एक मिनट को भी खड़ा नहीं होने देता था। पैरों की चाल जरा धीमी पड़ी कि गाली देने लगता और काम से निकाल देने की धमकी देता। सबके पैर फिर जल्दी-जल्दी उठने लगते। पहले कई दिन तो सुगनी का सारा शरीर अकड़ जाता, पोर-पोर चीसने लगता। परंतु कुछ दिन बाद आदत पड़ गई। उसे यों भी अच्छा लगता कि सारा दिन घर में अकेले पड़े रहने से तो अच्छा है कि यहाँ संगी-साथियों के बीच में बात करते-करते समय भी कट जाता है और काम भी हो जाता है। अब आस-पास के मजदूर व मजदूरनियाँ उसे पहचानने लगे और बात भी कर लिया करते थे।

दोपहर के अवकाश के समय सुगनी और भीमा कपड़े में बाँधकर लाई अपनी दो रोटी खा लेते और पेड़ की छाया में बैठकर आराम कर लेते। फिर अपने-अपने काम पर लग जाते।

भीमा की कोठरी से तीन घर छोड़कर भोला रहता था। वह भी वहीं पर मजदूरी करता था। वह अकसर सीमेंट मिलाने और तगारी में भरने का काम करता था। जिस दिन भोला सुगनी की तगारी में सीमेंट भरता तो दूसरों से कुछ कम भरता था और कभी-कभी तो तगारी उठवाकर उसके सिर पर भी रखवा देता। न जाने क्यों, उसे सुगनी पर बड़ी दया आती थी। उसे लगता कि कल ही तो बेचारी ब्याहकर आई है, और आज उसे सिर पर गारा ढोना पड़ रहा है। उसकी मधुर मुसकान, आँखों में अजीब सा बाँकपन और चलने का ढंग उसे बहुत अच्छा लगता था। वह घंटों उसके विषय में सोचता रहता। पर हाल तो सभी का एक जैसा ही था।

एक दिन भोला महाजन की दुकान से आलू खरीदकर ला रहा था। रास्ते में उसने दो आलू सुगनी को भी दे दिए। रात को सुगनी ने आलू की सब्जी बनाई। उसमें से थोड़ी सी सब्जी सुबह के लिए उठाकर रख दी। भोला और भीमा अच्छे मित्र थे। जहाँ पर साथ काम करते तो भीमा भोला की सहायता भी कर दिया करता। कभी दोनों चाय भी साथ में पी लिया करते। भोला भी लगभग भीमा की उम्र का ही था। विवाह अभी पिछले वर्ष ही हुआ था कि अचानक हैजे की दो-तीन दिन की बीमारी में ही पत्नी चल बसी। तब से वह अकेला रह रहा था। भोला की अवस्था जरा इसलिए भी अच्छी थी कि उसपर महाजन का कर्जा नहीं था और न उसे किसी को पैसे देने पड़ते थे। इसीलिए वह कभी आलू-प्याज और कभी हरे पत्ते की सब्जी खरीद लाता। एक दिन उसने आलू डालकर पालक की सब्जी बनाई। एक कटोरी सब्जी भीमा को भी दे गया। भीमा भी सुख-दु:ख में उसका साथ देता था। बस्ती के लोग दोनों को मित्र समझते थे।

सुगनी को काम करते हुए दो माह से अधिक हो गए थे। अब उसे जीवन बोझ सा नहीं लगता। सावन का महीना था। काम के स्थान से तीन मील की दूरी पर भैरोंजी का स्थान था। सोमवार के दिन वहाँ पर मेला लगा। काम के बाद भीमा और सुगनी भी मेला देखने चले गए। कुछ खरीदने के लिए पल्ले में पैसा-कौड़ी तो था नहीं, यों ही घूम-घामकर दूर से झूले, पकवान की दुकानें, महिलाओं के शृंगार की चीजों से सजी दुकानें और भीड़-भाड़ देखकर खाली हाथ लौट आए। रास्ते में भोला मिल गया, जो हाथ में जलेबी और नमकीन का पैकेट लिये था। भोला के कहने पर सब उसी के दरवाजे पर जा बैठे और आराम से जलेबी और नमकीन खाई। थक तो सभी गए थे। जब भीमा और सुगनी अपने घर जाने को उठे तो भोला ने कागज में लिपटी हुई काँच की हरी चूड़ियाँ चुपचाप सुगनी के हाथ में पकड़ा दीं। ये चूड़ियाँ वह मेले से उसी के लिए लाया था। दूसरे दिन सुगनी ने चूड़ियाँ हाथों में पहन लीं और भीमा को सबकुछ बता दिया। भीमा मन-ही-मन आहत हो उठा, परंतु मुँह से कुछ नहीं बोला। अपनी धोती के पल्ले से उसने भीगी आँखें पोंछ लीं।

पाँच महीने के बाद एक दिन अचानक सुगनी भीमा का घर

छोड़कर भोला के पास चली गई। भीमा भी मन-ही-मन कटकर रह गया। उसे न आश्चर्य हुआ और न क्रोध आया, न ही प्रतिशोध की भावना उत्पन्न हुई। सुगनी की कमी तो बहुत खटकने लगी, अकेलापन काटने लगा, परंतु उसने मन को समझा लिया कि वह सुगनी को दे ही क्या पाया है। न अच्छा खाना, कपड़ा, न शृंगार की कोई वस्तु। उसने न सुगनी को कुछ कहा और न भोला को। मानो दोनों के बीच कोई मौन समझौता हो गया था। इस परिवर्तन को कोई अज्ञात स्वीकृति मिल गई थी। उसे केवल यही संतोष था कि वह सुगनी को रोज देख तो सकेगा, कभी सुख-दु:ख की दो बात भी कर सकेगा। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि अब भीमा और भोला के बीच में बातचीत एकदम बंद हो गई।

बस्ती में यह बात फैल गई कि सुगनी घर छोड़कर चली गई है। बस्ती के लिए यह कोई नई बात नहीं थी। अभावग्रस्त परिवारों के बीच इस प्रकार का लेन-देन साधारण बात थी। बल्कि लोग भीमा की सराहना करते थे कि न तो उसने भोला से पैसे लिये और न उसके साथ मार-पीट की। भीमा तो इतने से ही संतुष्ट था कि भोला उसे आराम से रखता है, मारता-पीटता नहीं और रोज सुगनी से मुलाकात हो जाती है। कभी अवसर मिलने पर वे एक-दूसरे का हाल-चाल पूछ लिया करते और कभी मिट्टी के ढेर पर बैठकर अपनी दरिद्रता के घाव कुरेद लिया करते थे। फिर एक ठंडी साँस लेकर भीमा अपने काम पर लग जाता। भीमा मन-ही-मन कहता कि भोला ने सुगनी को वह सबकुछ दिया, जो मैं नहीं दे सका। जब कभी सुगनी का सुख उसके भाग्य में होगा तो वह उसे फिर से अपने घर ले आएगा। यही धूमिल सी आशा अब उसके जीवन का सहारा बन गई थी और वह दो-चार पैसे जोड़ने भी लगा था। इधर भोला भी यह अच्छी तरह जानता था कि भीमा सर्वथा लाचार है। अत: भीमा के लिए उसके मन में किसी प्रकार की आशंका, क्रोध या ईर्ष्या का भाव नहीं था। बाँध भी पूरा होने को था और लोगों को यह डर सताने लगा था कि पता नहीं, कब किसकी छँटनी कर दी जाएगी और फिर पता नहीं कब, कैसा और कहाँ पर काम मिले?

पिछले तीन दिन से भीमा ने सुगनी को काम पर नहीं देखा। पैसे लेनेवाले दिन भी वह पंक्ति में दिखाई नहीं दी। आँखें दूर-दूर तक गारे के ढेर के आस-पास, सीमेंट के कट्टे और ईंटों के पास तक दौड़ गईं, पर सुगनी कहीं नजर नहीं आई। काम में जरा भी मन नहीं लगा। सोचने लगा, आखिर क्या हो गया···कहीं बीमार तो नहीं पड़ गई? परंतु मेरा अब उससे नाता ही क्या है···वह तो खुद ही घर छोड़कर गई है। फिर भी उसका मन बहुत बेचैन था। न जाने क्यों, मन-ही-मन ईश्वर से उसके कुशल-मंगल की प्रार्थना करने लगा।

चौथे दिन तो भोला भी नहीं दिखा। भीमा की उद्विग्नता और बढ़ गई। धीरज का बाँध टूटने लगा। काम के बाद साहस करके वह सीधा भोला के दरवाजे पर चला गया। देखता क्या है कि भोला दाहिने पैर पर नीम के पत्ते बाँधे बैठा है। भीमा को देखकर सुगनी बाहर निकल आई और कहने लगी कि काम करते समय एक बड़ा पत्थर भोला के पैर पर गिर पड़ा, दो उँगलियाँ पूरी तरह कुचल गई हैं। सुनकर भीमा भी भोला के पास जाकर बैठ गया और कहने लगा, ''सुगनी भी कई दिन से काम पर नहीं आई?'' ''सुगनी का पैर भारी है। अब उससे बोझ नहीं उठता। कल को कुछ ऐसा-वैसा हो गया तो मैं क्या करूँगा। महीने भर बाद जापा भी हो जाएगा। मुझे तो अब यही चिंता खाए जा रही है कि पता नहीं क्या होगा? मेरा भी पैर टूट गया है। घर बैठा हूँ। पता नहीं, कब काम पर जा सकूँगा? भगवान् भी गरीब लोगों पर सब मुसीबतें एक साथ ला देता है।'' भीमा निर्जीव प्रतिमा के समान उसकी सारे बातें सुनता रहा और बिना कोई उत्तर दिए चुपचाप उठकर चला आया।

भीमा सारी रात सो नहीं सका, करवटें बदलता रहा। सोचने लगा, सुगनी ने मेरे साथ फेरे लिये थे, मेरे भाग्य में उसका सुख नहीं था। भोला उसे आराम से रखता है। अब उसपर दु:ख आन पड़ा है तो मैं उसकी सहायता जरूर करूँगा। आखिर उसने मेरा कोई अनिष्ट तो किया नहीं। जाने कब उसकी आँख लग गई और स्वप्न में एक सुंदर शिशु का हँसता हुआ चेहरा और कृशकाय सुगनी उसके सामने आकर खड़े हो गए। अचानक किसी चीज के गिरने की आवाज हुई। भीमा चौंक गया, स्वप्न टूट गया, वह हड़बड़ाकर उठ बैठा। फिर घुटनों पर सिर रखकर बड़ी देर बैठा विचार-सागर में डूबा रहा। यादों के बिखरे हुए टुकड़ों को उठाकर मन के किसी कोने में रखता रहा। फिर एक अँगड़ाई लेकर उठा। उस समय रजनी अपने सारे तारे समेटकर आकाश से विदा हो रही थी और पक्षी दिन के स्वागत में गान करने लगे थे। भीमा भारी मन से उठा और काम पर चल दिया।

भीमा का दिन भर काम में मन नहीं लगा, वह साँझ होने की प्रतीक्षा करने लगा। उसने निश्चय कर लिया कि काम के बाद वह आज शहर जाएगा और सारा सामान खरीदकर सुगनी को दे आएगा। साँझ होते ही वह महाजन की दुकान के सामने जाकर खड़ा हो गया और बोला, ''पैसे की जरूरत आ पड़ी है, मालिक! अब आप ही सहायक हैं।'' ''क्या करेगा इतने रुपए का?'' ''सुगनी का जापा होनेवाला है। भोला के पास पैसे नहीं हैं। उसके लिए दवाई का इंतजाम करना है।'' महाजन की आँखें आश्चर्य से खुली रह गईं। बोला, ''तू पागल हुआ है, भीमा। वह तुझे छोड़कर चली गई और तू उसकी दवा-दारू के लिए पैसे उधार लेगा?''

''हाँ, माई-बाप! एक दिन तो उसका मेरे साथ संबंध था न। मैं ही उसे नहीं रख पाया। भोला ने यदि उसे अपना लिया है, सुख दिया है तो मुझे इसका कोई गम नहीं है। आज वह मुसीबत में है। दवाई की जरूरत है। गरीब हूँ मालिक! और तो उसके लिए कुछ नहीं कर सकता। यही सही, मेरे मन को चैन तो मिलेगा।'' महाजन ने दो सौ रुपए उसके हाथ पर रख दिए और एक कागज पर उसके अँगूठे का निशान लगवा लिया।

भीमा तो पैसे लेकर तुरंत वहाँ से चला गया, किंतु महाजन संवेदना के इन रस-सिक्त कणों का अर्थ देर तक नहीं समझ पाया। सा.अ.

बी-३/२०१, निर्मल छाया टावर्स
वी.आई.पी. रोड, जीरकपुर-१४०३०६ (पंजाब)
दूरभाष : ९८७६२६९३६४

फिरता मारा-मारा क्यों

● कृपा शंकर शर्मा 'अचूक'

सुपरिचित कवि, गीतकार एवं समीक्षक। 'फिर भी शेष रह गया', 'बतियाती भोर' (गीत-संग्रह); 'गीत खुशी के गाओ तुम' (बालगीत-संग्रह) के अलावा अब तक लगभग ७ हजार रचनाएँ प्रकाशित। काव्य शिरोमणि, काव्यश्री, साहित्यश्री, गीत शिरोमणि, तुलसी सम्मान, हिंदी सम्राट् सहित दर्जनभर सम्मान प्राप्त। महाराष्ट्र सरकार द्वारा दसवीं के पाठ्यक्रम में रचनाएँ शामिल।

खिलखिलाती रहो मुसकराती रहो, गंध खिलती रहे सारे वातास में,
खुशबुओं से हवा फिर नहाने लगे, मैं उलझता रहूँ नित्य अनुपास में।

एक विनती तुम्हें उनको श्रद्धा भरी
आपकी याद आती रहे याद ही,
हम समय के सहारे-सहारे चलें
रोज करता रहे रोज फरियाद ही।

प्राण फूँको प्रिय, प्राण ईसुर बने, प्राण भासित हुए मेरी हर साँस में,
खिलखिलाती रहो मुसकराती रहो, गंध खिलती रहे सारे वातास में।

धूप पर तुम लिखो छाँव की चिट्ठियाँ
शब्द इतने लिखो कि कम पड़े गिनतियाँ,
फूल शरमाते तुमसे कहने लगे
खूब अच्छी लगो आज बन तितलियाँ।

नेह की बाँसुरी जब बजाने लगो, होगी झंकार फिर आस-विश्वास में,
खिलखिलाती रहो मुसकराती रहो, गंध खिलती रहे सारे वातास में।

मन भटके नहीं देखो मेरा कभी
टकटकी बाँधकर देखता ही रहूँ,
कंठ कोकिल सुरों में चहकता रहे
रूप में गंध बन नित महकता रहूँ।

बैठकर तुम पवन पालकी में सजो, रोशनी बन चमको आकाश में,
खिलखिलाती रहो मुसकराती रहो, गंध खिलती रहे सारे वातास में।

: दो :

द्वार खुले के खुले रह गए, पंछी जाने किधर गया,
छोड़-छाड़ के जगत पसारा, इस दुनिया से निडर गया।

लाख प्रयास किए सब हारे
दे-देकर आबोदाना,
अनायास कुछ मौसम बदला
टूट गया ताना-बाना।

रात अँधेरी सूना-सूना, इधर गया या उधर गया,
द्वार खुले के खुले रह गए, पंछी जाने किधर गया।

सभी योजना पड़ीं अधूरी
किस-किस की अब याद करें
समय-चक्र मर्यादा अपनी,
उचित नहीं परिवाद करें।

राग-द्वेष से अलग रहा जो, उसका सबकुछ सुधर गया,
द्वार खुले के खुले रह गए, पंछी जाने किधर गया।

सुनते आए बात अनेकों
पतझड़ बाद बहार मिलें,
कौन समेट लिया करता है
झोली किसकी फूल खिलें।

ढाल बना जो घूमा करता, आज वही फिर मुकर गया,
द्वार खुले के खुले रह गए, पंछी जाने किधर गया।

जान-बूझ 'अचूक' अनजाना
फिरता मारा-मारा क्यों?
खुशहाली की तज बगिया को
घूम रहा आवारा क्यों?

चलता रहा निरंतर मग में, सही ठिकाना गुजर गया,
द्वार खुले के खुले रह गए, पंछी जाने किधर गया।

: तीन :

इसकी-उसकी कब कर पाया, कोई बराबरी,
अब तो रोजाना ही सुनते, खोटी और खरी।

कौन यहाँ पर आशुतोष है
दोष भरे ठहरे,
कितनों के ही मन हैं मैले
काले भी चेहरे।

बे-मौसमी हवा जो बहती, किसकी धीर धरी,
अब तो रोजाना ही सुनते, खोटी और खरी।

परतों पर परतें नित खलतीं
नहीं पता कब से,
अपनी बस रोटी सिंक जाए
केवल मतलब से।

कुछ भी देना कहाँ किसी को, कौन यहाँ जिगरी,
अब तो रोजाना ही सुनते, खोटी और खरी।

जोड़-तोड़ में जीवन बीता
कथा पट कथाएँ,
आईं भी हिस्से में आईं
ढेरों विपदाएँ।

पोथी थका 'अचूक' बाँचते, काशी की नगरी,
अब तो रोजाना ही सुनते, खोटी और खरी।

३८-ए, विजय नगर, करतारपुरा
जयपुर-३०२००६
दूरभाष : ०९९८३८११५०६

नैतिक-सामाजिक मूल्य और साहित्य

● सुरेश शर्मा

आज प्रत्येक पढ़े-लिखे व्यक्ति की दिनचर्या अखबार की सुर्खियों से आरंभ होती है और वहीं से आरंभ हो जाता है समाज की कुरूपताओं से साक्षात्कार। चारों ओर व्याप्त भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, आडंबर, स्वार्थ-लोलुपता और घृणित सामाजिक बुराइयों के कारण जीवन-मूल्यों का निरंतर ह्रास हो रहा है। भारतीय समाज की जो दुर्दशा आज है, वह पहले किसी युग में नहीं थी।

युग की परिस्थितियों से मानवीय संवेदना जड़ हो गई है। भौतिक उपलब्धियों की दौड़ में आदमी अंदर से खोखला हो गया है। वैज्ञानिक उन्नति ने भले ही मानव के बाह्य शरीर को बड़ा कर दिया है। दृश्य-श्रवण उपकरणों से उनके आँख-कान बड़े हो गए हैं, मशीनों ने उसके हाथ-पैरों को शक्तिशाली और बड़ा बना दिया है, पर उसके अंतर को विज्ञान छू भी नहीं पाया। हम प्रतिदिन अपने ही आईने में खुद को देखते हैं कि घटना-दुर्घटना से अप्रभावित मशीन की तरह अपने बँधे-बँधाए स्वार्थों के लक्ष्य से अलग देखने-सुनने का हमें अवसर ही नहीं होता। महानगरीय सभ्यता ने तो व्यक्ति को प्राय: अकेला और अलग-थलग बना दिया है। आदमी को आदमी से कितना काट दिया है, उसका एहसास जब हमें होगा तो बहुत देर हो चुकी होगी। यह स्थिति कभी भी विस्फोटक बन सकती है।

मानवीय संवेदनाओं की इस जड़ता को पिघलाना आज नितांत आवश्यक हो गया है। इसके लिए हमें जीवन-मूल्यों का नैतिकता की पृष्ठभूमि में पुन: निर्धारण करना होगा, जिससे व्यक्ति को इतना तो एहसास हो जाए कि उसकी कौन सी बात, कार्य या आचरण सही या गलत है। मैं इसे मानता हूँ कि प्रत्येक विकासशील देश के समाज और सामाजिक मूल्यों में संक्रांति की अवस्था बनी रहती है। लेकिन यह नहीं भूलना चाहिए कि ऐसी स्थिति में मूल्यों की पहचान और भी जरूरी हो जाती है।

आजादी के सात दशक पश्चात् भी हम राष्ट्र के उन स्वप्नों को पूरा नहीं कर सके, जिसमें शांति पर आधारित अर्थव्यवस्था हो, सुख और वैभव का समान बँटवारा हो, शोषण से मुक्ति मिले, बेरोजगारों की पीड़ा न रहे तथा ईमानदारी और सहिष्णुता के गुणों की प्रतिष्ठा हो। आज भारत स्वतंत्र है, पर क्या भारतीय समाज स्वतंत्र है? आज भी नारी जाति के रूप में भारत की जनसंख्या का पचास प्रतिशत भाग गुलाम है। नारी-जागरण और नारी-स्वतंत्रता के अनेक आंदोलन होते हुए भी भारतीय समाज की आधी जनसंख्या रसोईघर में कैद है। समाज कितनी बुराइयों की गुलामी ओढ़े हुए है। दहेज प्रथा अलिखित संविधान बना हुआ है, तो शादी-विवाह में फिजूलखर्ची हमारी विवशता है। धर्म निरपेक्षता के

सुपरिचित लेखक, कवि, समालोचक। 'निराला साहित्य में सामाजिक चेतना' पुस्तक एवं पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। मोतीलाल नेहरू कॉलेज (सांध्य) में प्राचार्य पद से सेवानिवृत्त। संप्रति लेखन में रत।

सामने धर्मांधता सीना फुलाए खड़ी है, भ्रष्टाचार नैतिक मूल्यों को दबोचे है, क्षेत्रवाद ने राष्ट्रीय भावनाओं को कुचलने का षड्यंत्र रचाया है तो पश्चिमी भोगवाद भारतीय संस्कृति पर निरंतर प्रहार कर रहा है।

वास्तव में सामाजिक मूल्यों का विघटन आज के भारतीय समाज की सबसे बड़ी त्रासदी है। स्वतंत्रता के पश्चात् इन मूल्यों का जितना पतन हुआ है, उतना कभी नहीं हुआ और आज तो मूल्यों के पतन की पराकाष्ठा है। उस समाज का आप अनुमान लगा सकते हैं, जहाँ पत्रकार, डॉक्टर, इंजीनियर, शिक्षक, सिपाही और सैनिक अपने कार्य को व्यवसाय मानने लगें तथा अपने द्वारा किए गए काम को वेतन से जोड़ने लगें। यही कारण है कि आज स्थिति यहाँ तक पहुँच गई है कि चारों ओर दूर-दूर तक मनुष्य दिखाई नहीं देता। दफ्तरों में कुरसियों पर अधिकारी हैं, पुलिस स्टेशन में वर्दियाँ हैं, विद्यालय-महाविद्यालय में शिक्षक हैं, अस्पतालों में डॉक्टर हैं, संसद् में संसद् सदस्य हैं, मंत्री हैं, पर सब मानो संवेदनहीन। रोबोटों के इस बहुत बड़े समाज को देखकर किसी बहुत बड़ी त्रासदी की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता।

आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में श्रेष्ठता की आवश्यकता है। भूमंडलीकरण ने प्रतिस्पर्धा के द्वार उन्मुक्त कर दिए हैं। अत: अस्तित्व की लड़ाई में वही बचा रह सकता है, जो योग्य, श्रेष्ठ और जागरूक है। यद्यपि श्रेष्ठता और उत्कर्ष एक लक्ष्य न होकर एक सतत यात्रा है, जो अनेक पीढ़ियों तक चलती है। मानव सभ्यता की आदिम युग से आज तक की यात्रा इसका प्रमाण है। परंतु उन्नति और विकास की यह यात्रा यदि जीवन-मूल्यों, नैतिक, सामाजिक-मूल्यों और सर्वाधिक मानवीय-मूल्यों की उपेक्षा पर आधारित है तो निश्चय ही व्यर्थ है और खतरनाक भी। श्रेष्ठता वही काम्य है, जो मूल्यों से परिचालित हो।

अब प्रश्न उठता है कि आखिर ये जीवन-मूल्य क्या हैं? यद्यपि इस प्रश्न का उत्तर कठिन है, तथापि कुछ बातें बताने-समझाने एवं सोचने-विचारने से ज्यादा व्यवहार में जीने की होती हैं। जीवन जीने के न तो बँधे-बँधाए फॉर्मूले हो सकते हैं और न ही उनसे जीवन जिया जा सकता है। प्रत्येक राष्ट्र की संस्कृति में ही जीवन-मूल्यों का उत्स होता है, जो तथ्य राष्ट्र की संस्कृति की पहचान को कायम रखने के लिए सुदृढ़ संबल

बनते हैं, उन्हें ही हम जीवन-मूल्यों के रूप में पहचानते हैं।

लेकिन हमारी त्रासदी यह है कि इन मूल्यों को अपनाने और व्यवहार में लाने की क्षमता हम नहीं जुटा पाते। हमारे सामने दो ही मार्ग होते हैं। पहला है, स्वयं को भीड़ को समर्पित करके सिर नीचा कर लीक पर चलने का और दूसरा है जीवन-मूल्यों और आदर्शों के मार्ग में आनेवाले खतरों से टक्कर लेने का। गांधी, सुकरात तथा कबीर, निराला अपनी-अपनी लोकप्रियता के कारण महान् नहीं थे, बल्कि उनकी महानता इन खतरों को सीने पर झेलने में थी। आज हमारे राष्ट्रीय चरित्र से महानता का यह गुण लुप्त होता जा रहा है।

व्यक्तिगत स्वार्थ और जनकल्याण की भावनाओं में सदैव द्वंद्व रहा है। बहुजन हिताय को भुलाकर स्वांतः सुखाय मात्र को लक्ष्य बनाकर चलनेवाला श्रेष्ठतम व्यक्ति भी जीवन-मूल्यों की दृष्टि में निकृष्ट व्यक्ति कहलाएगा। राष्ट्र की श्रेष्ठतम संस्थाओं के अपकर्ष का एकमात्र कारण भी व्यक्तिगत स्वार्थों द्वारा जनहित की भावनाओं को दबाना मात्र है। जब यह स्वार्थ भावना मूल्यविहीन होकर राष्ट्र से जुड़ती है तो राष्ट्रीय चरित्र की कुरूप तसवीर उभरती है।

जब हम मूल्यों की रक्षा के लिए खड़े न होकर मौन रहने का निर्णय ले लेते हैं तो निश्चय ही हम बहुत बड़े पाप के भागी बन जाते हैं। ऐसी स्थिति में मौन का अपराध अक्षम्य है। मौन रहने का यह अपराध आज तो राष्ट्रीय चरित्र बन गया है, जो निश्चय ही एक बहुत बड़ा अभिशाप है। गलत निर्णय को मन से गलत मानते हुए भी उसके विरोध में प्रतिवाद न करके मौन रहकर पलायन की शरण ले लेना अनेक अपराधों का जनक बन जाता है। ऐसी स्थिति में मौन निश्चय ही बहुत बड़ा पाप है या यह कहा जाए कि मौन या तटस्थता जुर्म करने से भी बड़ा जुर्म है, क्योंकि ऐसी स्थिति में व्यक्ति को अपने हृदय, बुद्धि और जीवन-आदर्शों से छल करना पड़ता है। उस व्यक्ति की श्रेष्ठता बेमानी है, जो गलत निर्णय के विरुद्ध अपनी आवाज नहीं उठाता।

व्यक्तिगत स्वार्थ और जनकल्याण की भावनाओं में सदैव द्वंद्व रहा है। बहुजन हिताय को भुलाकर स्वांत: सुखाय मात्र को लक्ष्य बनाकर चलनेवाला श्रेष्ठतम व्यक्ति भी जीवन-मूल्यों की दृष्टि में निकृष्ट व्यक्ति कहलाएगा। राष्ट्र की श्रेष्ठतम संस्थाओं के अपकर्ष का एकमात्र कारण भी व्यक्तिगत स्वार्थों द्वारा जनहित की भावनाओं को दबाना मात्र है। जब यह स्वार्थ भावना मूल्यविहीन होकर राष्ट्र से जुड़ती है तो राष्ट्रीय चरित्र की कुरूप तसवीर उभरती है।

भूमंडलीकरण, प्रौद्योगिकी और प्राविधिक विज्ञान की अभूतपूर्व प्रगति तथा परिवर्तन की अनियंत्रित गति ने मानवीय जीवन-इतिहास के आवश्यक घटकों की उपयोगिता पर प्रश्न-चिह्न लगा दिए हैं। शिक्षा और साहित्य की उपयोगिता इनमें सर्वप्रथम है। भूमंडलीकरण गलत नहीं है, उसका सकारात्मक पक्ष यह है कि विश्व के किसी भी भाग के विकास का लाभ सभी को सुलभ हो। पर वास्तव में यह पूँजीवादी प्रसार प्रक्रिया के रूप में ही उभर रहा है। इसी प्रकार मुक्त व्यापार के नाम पर भी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के एकच्छत्र एकाधिकार की स्थापना की दुरभिसंधि चल रही है। मनोरंजन के नाम पर अपसंस्कृति के प्रसार का षड्यंत्र तो कब से चल रहा है, जिसमें विचरणा का तिरोहण, मानसिक-बौद्धिक क्षमता का क्षय, भाषा, कला और साहित्य का अपकेंद्रीकरण सभी कुछ सद्योजाताय नमो नमः। सबकुछ 'रेडीमेड'। साहित्य इस अपसंस्कृति में अनुपयोगी (मिस फिट) बन गया है, पर साहित्य संस्कृति, जातीय जीवन की अस्मिता और अंततः मानवीय अस्मिता और गरिमा का आधार है।

मैं अनुभव करता हूँ कि मानव जाति एक अत्यंत कठिन दौर से गुजर रही है। विभिन्न संकीर्ण स्वार्थों ने मानव-मूल्यों और मनुष्यता को दबोच लिया है। विश्व छोटे-छोटे संकीर्ण स्वार्थों के टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर रहा है। शहर और गाँव मुट्ठी भर लोगों की स्वार्थपूर्ति के लिए विभिन्न जातियों और संप्रदायों में बँटकर बिखर रहे हैं। चारों ओर भ्रष्टाचार, घूस-रिश्वत, 'स्कैम' और 'स्कैंडलों' का बोलबाला है। इस मूल्यहीन आपाधापी से परिचालित जातीय जीवन की रक्षा मात्र साहित्य ही कर सकता है, क्योंकि साहित्य ही मानव को भीतर और बाहर से सुसंस्कृत एवं उन्नत बनाता है। इंद्रिय-लोलुपता, छीना-झपटी और स्वार्थपरता के इस संक्रमण काल में साहित्य की उपादेयता स्वतः सिद्ध है।

मनुष्य को संकीर्ण दृष्टिकोण से ऊपर उठाकर उदात्त एवं विवेकवान बनाना ही साहित्य का प्रयोजन है। जैव-वैज्ञानिक दृष्टि से मानव भी प्राणी है। पशु के समान आहार, निद्रा, इंद्रिय-लोलुपता आदि विशिष्टताएँ और विकार उसमें भी हैं। तब हममें ऐसा क्या अलग है, जो हमें पशुओं से भिन्न करता है। वह है विवेक, दूसरे के सुख-दुःख में सहभागिता तथा संयमित जीवन-शैली। यही चीजें हमें मनुष्य की श्रेणी में स्थापित करती हैं और यही साहित्य की भूमि और उसका कार्यक्षेत्र है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना है कि साहित्य ही मानव को भीतर से सुसंस्कृत और उन्नत बनाता है, तभी उसका बाह्य रूप भी साफ दिखाई देता है। मुंशी प्रेमचंद भी मानते हैं, 'साहित्य मस्तिष्क की वस्तु नहीं, हृदय की वस्तु है। जहाँ ज्ञान और उपदेश असफल होता है, वहाँ साहित्य बाजी मार ले जाता है।'

मैं यहाँ संस्कृत साहित्य के महान् आचार्यों द्वारा विश्लेषित-साहित्य-प्रयोजन या 'रस आस्वाद' और 'ब्रह्मानंद सहोदर' की बात नहीं करूँगा, अपितु आज के इस आपाधापी और अपसंस्कृति के दौर में जहाँ मानवीय और सामाजिक-मूल्यों के पतन की पराकाष्ठा है, वहाँ साहित्य के अध्ययन-अध्यापन की क्या उपादेयता है, इस केंद्रीय बिंदु पर ही टिका रहूँगा।

हमारे विश्वविद्यालय हजारों की संख्या में डॉक्टर, इंजीनियर, वकील, अर्थशास्त्री, शिक्षाविद् और वैज्ञानिक बनाते हैं। प्रौद्योगिकी,

वाणिज्य, दूरसंचार, दूरदर्शन के क्षेत्र में भी हमारी उन्नति की सीमाएँ पीछे छूट गई हैं। हम चाँद पर जीवन का स्वप्न सँजो रहे हैं, पर दूसरी ओर सामाजिक-नैतिक और मानवीय-मूल्यों के पतन की पराकाष्ठा पर जा पहुँचे हैं। 'सा विद्या या विमुक्तये' के आदर्श वाक्य हमारे लिए बेमानी हो गए हैं। ऐसे में मानव की मानव के रूप में प्रतिष्ठा मात्र साहित्य से ही संभव है। जीवन-मूल्य मानवीय आचरण और व्यवहार का मानदंड एवं मानक होते हैं। इनमें जातीय अनुभव के निचोड़ और विविध सामाजिक-सांस्कृतिक परंपराएँ भी समाहित रहती हैं। इन्हीं में मानवीय-मूल्यों और नैतिक मानदंडों का वास रहता है। इन मानवीय मूल्यों पर प्रहार करनेवाले भ्रष्टाचारियों, अपराधियों और अवसरवादियों को भयभीत करने के लिए निश्चय ही साहित्य रूपी अस्त्र की धार को और पैना बनाकर नई पीढ़ी को सौंपना होगा।

अपने क्षेत्र का श्रेष्ठ इंजीनियर मूल्यों के अभाव में ठेकेदार के प्रलोभनों से नहीं बच पाता, वहीं श्रेष्ठ चार्टर्ड एकाउंटेंट आय-प्रोपर्टी और टैक्स के खेल में मात्र सेठों का दलाल बनकर रह गया है। जीवन-मूल्यों के अभाव में आज हर बालक सिजीरियन पैदा होता है या भ्रूण-परीक्षण कर अनेक बच्चों को इस संसार में आने नहीं दिया जाता। रक्षा के लिए बनाई ए.के.-४७ और अन्य स्वचालित अस्त्र-शस्त्र नैतिक मूल्यों के अभाव में मानव-विनाश का कारण बन गए हैं। इसी प्रकार कंप्यूटर, दूरदर्शन, दूरसंचार के साधन मोबाइल फोन आदि नैतिक-मूल्यों की खिल्ली उड़ाते दिखलाई पड़ते हैं। संसार के विकसित राष्ट्र भले ही आर्थिक क्षेत्र में अकूत क्षमता संपन्न हैं, पर नैतिक-सामाजिक दृष्टि से नितांत विपन्न और पिछड़े हैं।

निश्चय ही साहित्य मानव को जीवन-मूल्य तथा मानवीय आचरण और व्यवहार के मानदंड देता है। इसके बिना कई बार तो लगता है कि इस दौर में अपने-अपने क्षेत्र के श्रेष्ठ व्यक्ति अपने-अपने क्षेत्र के चरम उन्नति प्राप्त अपराधियों का एक संयुक्त परिवार बन गया है, जो सहअस्तित्व में विश्वास करता है। सहसा कवि धूमिल याद आ जाते हैं—

मैंने हरेक को आवाज दी
हरेक का दरवाजा खटखटाया
मगर बेकार
मैंने जिसकी पूँछ उठाई उसे मादा पाया है।
वे सब तिजोरियों के दुभाषिए हैं
वे वकील हैं, वैज्ञानिक हैं
अध्यापक हैं, नेता हैं
यानी कि
कानून की भाषा बोलता हुआ
अपराधियों का बड़ा एक संयुक्त परिवार।

लेकिन सर्वेक्षण यह बताते हैं कि जो अधिकारी साहित्य और सोशल साइंस के माध्यम से सिविल सर्विसेज में आते हैं, वे अँगूठा छाप भ्रष्ट नेताओं के दबाव में कम आते हैं। यही है साहित्य की ऊर्जा और शक्ति!

इस अंक के चित्रकार

श्री मार्टिन जॉन

शताधिक कविताएँ, लघुकथाएँ पत्र-पत्रिकाओं, वेब मैगजीन, ब्लॉग, फेसबुक समूहों में प्रकाशित। संकलनों में संकलित। आकाशवाणी से प्रसारित। प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत। रेखाचित्र, कविता पोस्टर बनाने में विशेष रुचि। दर्जनों कविता पोस्टर प्रदर्शित। पत्रिकाओं में रेखाचित्र प्रकाशित। लघुकथा संग्रह 'सब खैरियत है' और कविता-संग्रह 'ग्राउंड जीरो से लाइव' प्रकाशित।

संपर्क : अपर बेनियासोल, पोस्ट-आद्रा,
जिला-पुरुलिया, प. बंगाल-७२३१२१
दूरभाष : ०९८००९४०४७७

आत्मसम्मान और अस्मिता की रक्षा के लिए हमें मात्र साहित्य से ही शक्ति और हिम्मत मिल सकती है। साहित्य के चरम सत्य को पाने के लिए भी उसका मूल्य चुकाना पड़ता है। सहज और सीधे साधनों का प्रलोभन निश्चय ही त्यागना होगा। आज जीवन-मूल्यों का क्षरण जिस गति से हो रहा है और इससे नैराश्य का जो वातावरण चारों ओर व्याप्त है, इस विकट और भयावह स्थिति से उबारने की सामर्थ्य मात्र साहित्य में है। साहित्य-अध्ययन के बिना शिक्षा भले ही व्यक्तिगत उद्देश्य प्राप्त कर ले, पर सामाजिक दायित्व पूर्ण करने में नितांत असफल और असमर्थ रहेगा। कविगुरु टैगोर का विश्वास था कि केवल बौद्धिक विकास पर बल देने मात्र से ही मानव की कोमल वृत्तियाँ प्रस्फुटित नहीं हो पातीं। अत: साहित्य को जीवन का अभिन्न और अनिवार्य अंग बनाना हितकर ही नहीं, अपितु आज के दौर की आवश्यकता और अनिवार्यता भी है। समाज, राष्ट्र और विश्व के प्रति मानव मात्र के कर्तव्य और दायित्व को प्रौद्योगिकी, गणित, विज्ञान, वाणिज्य, टेक्नोलॉजी आदि नहीं सिखा सकते। मानव को सही अर्थों में मानव बनाने की सामर्थ्य और क्षमता मात्र साहित्य में ही है।

१२४, सहयोग अपार्टमेंटस,
मयूर विहार फेस-१, दिल्ली-११००९१
दूरभाष : ९९१००३०७१५

ईश्वर तेरी दुनिया में

● मालिनी गौतम

बादल हुए पिता
धूप-छाँव का तान चँदोवा
बादल हुए पिता।

इच्छाओं की माटी में चिंता के बैल चले
चाहत की फसलों ने अपने
सूखे हाथ मले
सुख के पौधे-पेड़ सींचने
छागल हुए पिता।

खुशियों की राहों में उगती नागफनी की भीत
उत्सव के होंठों ने गाए
विपदाओं के गीत
दबी उमंगों को खनकाने
माँदल हुए पिता।

रातों के सायों में फैली उजियारे की पाँख
चिंता की बस्ती में घर-घर नींद बाँटती आँख
थिगड़े जैसे जीवन में भी
मलमल हुए पिता।

घंटा बजाओ
वक्त कब से कैद है
कब तलक सोओगे तुम
अब उठो, घंटा बजाओ।

झूठ की इस भीड़ में
सच तिरोहित हो गया
इस गहन चिंता तले
दिन सिमटकर सो गया।

सो रहे रक्षक सभी
चोर अब मुस्तैद है
जागकर इस नींद से
अब उठो, घंटा बजाओ ।

दंश की पीड़ा लिये
उम्र पल-पल जागती
एक नीली चोट भी
मुँह छुपाए भागती।

इस सुबकते वक्त में
दर्द ही अब वैद है
मत डरो इस वैद से
अब उठो, घंटा बजाओ।

उठा-पटक
मन में चलती रहती
कोई उठा-पटक।

किसके हाथों की कठपुतली
बने जगत् में रहते हैं
किसके एक इशारे पर हम
काल-चक्र में बहते हैं
इन सारे प्रश्नों के उत्तर
रहे भटक।

चोर-लुटेरों के हाथों में
राम-नाम की माला है
भोले-भाले भक्तों को
अपने साँचों में ढाला है।
पोल खुली तो देखो कैसे
गए सटक।

ईश्वर तेरी दुनिया में
मिट्टी-पानी सब बिकता है
सपनों को भी बेच सके
वह शख्स यहाँ पर टिकता है।
बेच रहे सब अपनी चीजें
मटक-मटक।

चील झपट्टा मार रही है
बगुले घात लगा बैठे
बनिया मन में सोच रहा
निर्धन का धन कैसे ऐंठे
छोटी सी मछली को
पल में गए गटक।

सुपरिचित रचनाकार। अब तक 'बूँद-बूँद एहसास' (कविता-संग्रह); 'दर्द का कारवाँ' (गजल-संग्रह); 'गीत अष्टक तृतीय' (साझा गीत-संकलन) एवं प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। संप्रति एसोसिएट प्रोफेसर (अंग्रेजी), कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, संतरामपुर (गुजरात)।

मौन की बैसाखियों पर
वक्त के चूल्हे पे सिंकता
रोटियों-सा मन।

द्वार पर कठिनाइयों ने
चौक हैं माँडे
लाभ-शुभ, स्वस्तिक,
सभी पर हैं तने खाँडे
मुसकराना भूल बैठा
गाल का खंजन।

ख्वाब में हैं पींग भरते
चाह के झूले
मौन की बैसाखियों पर
शब्द हैं लूले
जेठ की लू में झुलसता
आज फिर सावन।

शुष्क होंठों पर
तजुर्बों के लगे पहरे
जर्द चेहरों में छुपे हैं
राज कुछ गहरे
उम्र की गठरी उठाता
एक जर्जर तन।

५७४, मंगल ज्योत सोसाइटी
संतरामपुर-३८९२६०
जिला-महीसागर (गुजरात)
दूरभाष : ९४२७०७८७११

राम झरोखे बैठ के

दूसरों को दोष देने की प्रतिभा

● गोपाल चतुर्वेदी

कल एक शादी में हमने अभूतपूर्व दृश्य देखा। आजकल शहर से दूर किसी 'रिजॉर्ट' या किराए के फार्महाउस में शादी के बाद 'रिसेप्शन' का चलन है। महिला समानता के स्वर्ण युग में वधू के परिवार पर आर्थिक वार करने का यह भी अंदाज है—'देखिए, हमें न दहेज की अपेक्षा है, न धन-दौलत की। जो भी करना हो, आप अपनी और अब हमारी बेटी के लिए करें। हम तो बस इतना चाहते हैं कि बरात का ध्यान रखें। विवाह किसी आकर्षक स्थान से हो।'

यह स्थान अधिकतर शहर से दस-पंद्रह किलोमीटर दूर होता है। जाना जरूरी है, सामाजिक बाध्यता जो है। लिफाफा देने की रस्म भी निभानी ही निभानी है। हमारे परिचित पांडेजी जो खर्च किया, उसे वसूलने में विश्वास करते हैं। सबको पता है, बस से आएँ या स्कूटर से, पधारते वे अपनी पत्नी और बेटा-बेटी के साथ ही हैं। उनके घर का नियम है कि रात को 'रिसेप्शन' है तो दिन में खाना नहीं बनता है। रात को यदि किसी खाद्य-पदार्थ को चखने से चूके तो कहीं कोई देवता रूठ न जाएँ! शादी की सफलता में बाधा न आए। एक बार हमने गिना है। उन्होंने सात-आठ गिलास शीतल पेय का सेवन किया। सबसे पहले लपककर गिद्ध भोज का प्रारंभ कर अंत में अनिच्छा से सबके बाद प्लेट रखी। कई प्लेट-चम्मच लेने की प्रतियोगिता में दौड़े तो ऊँची-नीची घास ढकी जमीन के कारपेट पर, कुछ ठोकर खाकर सलाद पर गिरे, कुछ रायते पर। पांडेजी उन शहीदों में नहीं थे। सुनते हैं कि लौटते समय उन्हें सड़क के किनारे झाड़ी जरूर तलाशनी पड़ी।

दूसरे दिन शाम तक बार-बार 'टॉयलेट' की दौड़ से बचने के लिए उन्हें एक डॉक्टर के क्लीनिक का सहारा लेना पड़ा, और प्रतीक्षा के दौरान वहाँ बने कामचलाऊ शौचालय का भी। बाहर आकर उन्होंने मन-ही-मन डॉक्टर को गाली दी और बुदबुदाए, ''कमबख्त, फीस सैकड़ों में लेता है और ढंग के टॉयलेट तक को कोई तरसे। जरूरतमंदों का शोषण इसे नहीं तो और किसे कहेंगे?'' इस दुर्घटना के बाद ठीक होकर मिले तो बताने लगे, ''यार! क्या कहें, जहाँ शादी में हम मिले थे, वहाँ मैन्यू तो ठीक था, बस खाना गड़बड़ था। अपना तो पेट चल गया 'फूड-पॉइजनिंग' के कारण। डॉक्टर और दवा की चोट अलग लगी।'' तब से हम सोचते हैं कि अकाल पीड़ितों की मानसिकता से भोजन पर स्वयं पांडे ने आक्रमण किया, हर संभव खाद्य-पदार्थ का दुश्मन के समान संहार किया और लगन से अपनी दुर्दशा के लिए उसी में मिले 'पॉइजन' को दोष दे रहे हैं। हमें आश्चर्य हुआ। वसूली के चक्कर में सपरिवार पहुँचे। खाने पर चील की तरह झपटे, पेट में ऐसे ठूँस-ठूँसकर भरा, जैसे भविष्य में भोजन की संभावनाओं का अंत है और बेशर्म ऐसे कि अपने लालच को नहीं, कोस उसी खाने को रहे हैं।

पांडेजी कोई अपवाद नहीं हैं। दूसरों को दोष देने की कला के कई विशेषज्ञ भारत में बसते हैं। इनमें कई प्राध्यापक-बुद्धिजीवियों का तो स्वभाव ही अपने सहकर्मियों के चरित्र में खोट की खोज है। कभी-कभी हमें शंका होती है कि चमचों के उद्‌भव में कहीं बुद्धिजीवियों का योगदान तो नहीं है? ये सामने वरिष्ठों को सराहते हैं, कनिष्ठों को धमकाते हैं और पीठ पीछे दोनों को दुत्कारते हैं। तब श्रोताओं में अधिकतर इनके शोध-छात्र हैं। शोध-कर्मियों के रहते इन्हें घर में किसी सेवक की दरकार नहीं है। भाजी-सब्जी की खरीद से लेकर घर की सफाई तक, किसी भी शोध-छात्र की सफलता की बुनियादी शर्त है। इसके अलावा उसके कर्तव्यों में गुरु के परिवार की भूरि-भूरि प्रशंसा, उसकी हर बात में मुंडी हिलाना, उसके ज्ञान के आगे सबको अल्पज्ञ समझने का दिखावा करना आदि सम्मिलित है। इन सबके सफल निर्वाह से ही शोधार्थी के नाम के आगे 'डॉक्टर' का विशेषण संभव है, वरना उसका शोधार्थी का शोधार्थी बने रहना निश्चिंत है। इधर बुद्धि के इन गुरूकंटालों ने धनार्जन के नए साधन का आविष्कार किया है। यह अब पी-एच.डी. का विषय ही नहीं सुझाते, उसपर शोध-प्रबंध भी लिखवा देते हैं। बौद्धिक क्षेत्र में यह सरकारी औद्योगिक नीति की 'सिंगल विंडो क्लीयरेंस' का नया प्रयोग है। आठ-दस हजार रुपए के एवज में डॉक्टर की उपाधि क्या बुरी है? यों मुद्रा स्फीति तथा गुरु के घटते-बढ़ते प्रभाव के साथ यह दर घटती-बढ़ती रहती है। कहते हैं कि गुरु 'रिटायर' तो कभी नहीं होते हैं, अपने विभाग में बस उनका दबदबा गिरता-उठता है। बहुधा वे सबसे स्नेह संबंध बना के रखते हैं, फिर भी कभी खटपट सामान्य बनाम आरक्षित वर्ग के मुद्दे पर मुमकिन है, कभी अन्य निजी मसलों को लेकर। रिटायर्ड प्रोफेसर इन सबसे बचने को गिफ्ट-भेंट और मौखिक चापलूसी-प्रशंसा पर निर्भर हैं। फॉर्मूला कभी कामयाब होना है, कभी नहीं।

बुद्धिजीवियों की तकरार का एक अन्य प्रमुख विषय राज्य सरकार या निजी संस्थाओं के पुरस्कार-सम्मान हैं। सार्वजनिक रूप से हर बुद्धिजीवी यही घोषणा करता है कि न वह पुरस्कारों के लिए लिखता है, न उसका इनसे कोई लेना-देना है। उल्टे वह इन सबसे उदासीन है। यह

अलग है कि यदि कोई राज्य सरकार या निजी संस्थान उसे इस योग्य समझे तो वह इनकार भी नहीं करेगा।

दीगर है कि हर छोटे-बड़े सम्मान के लिए वह क्या-क्या नहीं करता है? हर संबद्ध अधिकारी को साधता है। दूसरों की खुशामद करके अपनी संस्तुति भिजवाना, पुरस्कार की चयन समिति के संभावित सदस्यों की सूची बनाकर उन्हें अपने पक्ष में करना, प्रतिद्वंद्वियों के विरुद्ध प्रचार आदि उसके निजी हथकंडे हैं, जिनमें नियम से अभ्यास के कारण वह सिद्धहस्त है। हर पुरस्कार से पूर्व वह उसे हथियाने का जी-जान से प्रयास करता है। यदि सफल होता है तो अपनी योग्यता का हवाला देता है, अन्यथा पानेवाले के राजनैतिक प्रभाव और चयन समिति के पूर्वग्रह को—''हमें ऐसे पुरस्कारों की हसरत नहीं है, पर साहित्य में इस प्रकार की सियासत का प्रवेश उचित नहीं है।''

अफसरों की एक अन्य त्रासदी भी है। सरकार में ऐसे पद भी हैं, जो महत्त्वहीन हैं। शासकीय जीवन में उनका वही स्थान है, जो सामाजिक संदर्भ में जेल जाने की सजा का है। न कोई उनके दर्शनार्थ पधारता है, न फोन, न सिफारिश, न स्टाफ। उनकी हालत उस कार सी है, जिसका ढाँचा तो बरकरार है, पर इंजन नदारद है। उसकी उपयोगिता किसी के लिए नहीं है। बस कार का नाम है। यदि कोई उससे संतोष करे, तो कर ले। लोग भी समझदार हैं। जिसका कोई असर ही नहीं, वह कैसा अफसर है? जब यह बिना 'सर' का अफसर घर लौटता है तो डरा-सहमा।

यदि उसे नहीं मिलता है तो पुरस्कार पर राजनीति से लेकर हर प्रकार के दूषित प्रभाव, जैसे चयनकर्ताओं का जातिवाद आदि हावी हो जाते हैं, वरना वह सम्मान पूरी तरह निष्पक्ष और योग्यता की सही कसौटी, पहचान और आकलन है। ऐसे बुद्धिजीवी स्वयं को समाज का प्रेरक और दिशा-निर्देशक मानते हैं। समाज में समता, धर्म निरपेक्षता और समाजवाद उन्हीं की लेखकीय उपलब्धि है। नहीं तो इस देश को जाति और संप्रदाय के मध्य युग के अंधकार से छुटकारा कैसे मिलता? यह तो उनकी तरह के प्रगतिशील लेखकों ने विचारों की कंदील जलाकर हर प्रकार के तिमिर को दूर किया है। यह उनकी व्यक्तिगत त्रासदी है कि उनके अहम योगदान को सरकार ने अब तक नहीं सराहा है, नहीं तो कब से वह किसी-न-किसी पद्म सम्मान के वास्तविक अधिकारी हैं।

ऐसों को अपने मुँह मिट्ठू बनने की महारत हासिल है। अपने पर लिखवाई गई प्रशंसा की पत्रिका उन्हें स्वयं बाँटने से न परहेज है, न शर्म। उनकी प्रचारित छवि एक आदर्श पुरुष की है, पर असलियत में वे आम आदमी से बदतर भले हों, बेहतर कतई नहीं हैं। उनके दिखाने के दाँत उसूल और सिद्धांत के हैं, जबकि खाने के निजी स्वार्थ के। यह निश्चित नहीं है कि वे कब किसको किसी क्षुद्र लाभ के लिए धोखा दे बैठें। इसीलिए जानकारों का मत है कि न इनसे दुश्मनी अच्छी है, न दोस्ती। समझदार इनसे बचकर ही रहते हैं।

सरकारी सेवकों से बात कीजिए तो एहसास होता है कि सारे जहाँ का बोझ इन्हीं के नाजुक कंधों पर टिका है। बेचारे रात-दिन एक कर उसे ढो रहे हैं। कभी बेबात उनपर घूसखोरी के आरोप लगते हैं, कभी अकर्मण्यता के। कोई सोचे, करें तो क्या करें? वेतन है कि सुबह के साये सा महँगाई से हमेशा पीछे रहता है, काम है कि ताड़का के सन्मुख हनुमानजी के विशाल रूप सा बढ़ता ही जाता है। कोई पद सेवानिवृत्ति अथवा किसी दुर्घटना से खाली हुआ तो बस खाली रहना ही उसकी नियति है। सुस्ती सरकार की और कर्मचारियों की कामचोरी की सुर्खी अखबार की। वह क्या-क्या झेले? घर चलाने को कुछ लेता है तो भ्रष्टाचार है। खाली पेट काम करना मुमकिन है क्या? कुछ-न-कुछ खाना तो प्रकृति का नियम है। कभी रोटी खा ली, कभी पैसा। कितना दुखद है। उसका पक्ष सुनने तक को कोई प्रस्तुत नहीं है। जब तक न्यायालय में साक्ष्य न हो, डाकू भी डाकू नहीं है। पर कोई उसकी स्थिति पर विचार करे। सबको उसे नाकारा और भ्रष्ट का फतवा देने में वैसा ही आनंद आता है, जैसा 'कौमनष्टों' को दूसरे दलों को जन-विरोधी या कम्युनल का खिताब देने में। सच्चाई न कोई जानता है, न जानने का इच्छुक है। झूठ के पंख होते हैं, वह अफवाहों सा फैलता है, सच के पैर तक नहीं हैं। वह कैसे अपना बचाव करे?

अफसरों की एक अन्य त्रासदी भी है। सरकार में ऐसे पद भी हैं, जो महत्त्वहीन हैं। शासकीय जीवन में उनका वही स्थान है, जो सामाजिक संदर्भ में जेल जाने की सजा का है। न कोई उनके दर्शनार्थ पधारता है, न फोन, न सिफारिश, न स्टाफ। उनकी हालत उस कार सी है, जिसका ढाँचा तो बरकरार है, पर इंजन नदारद है। उसकी उपयोगिता किसी के लिए नहीं है। बस कार का नाम है। यदि कोई उससे संतोष करे, तो कर ले। लोग भी समझदार हैं। जिसका कोई असर ही नहीं, वह कैसा अफसर है? जब यह बिना 'सर' का अफसर घर लौटता है तो डरा-सहमा। पत्नी का उसे घूरना ही पर्याप्त है, जैसे बिना कुछ बोले कहे ''और ईमानदार बनो, देशहित का ढोल पीटो, अंजाम यही होना है। नाक नाम का अंग चेहरे पर है, किंतु पद, अधिकार और सत्ता की नाक कटनी थी, कट चुकी है।'' पत्नी की आँखें जैसे उस पर दोषारोपण करती हैं। उनके पिता भी प्रशासनिक सेवा के अधिकारी थे, पर उन्होंने जीवन भर सबसे बना के रखा। सरकार सरकार है, किसी भी दल की हो। हर मंत्री के अकेले में उन्होंने पैर छुए और सबके सामने झुककर प्रणाम किया। सबको ऐसे पटा के रखा, जैसे महत्त्वपूर्ण पदों का अपने नाम पट्टा लिखा के सरकारी नौकरी में पैदा हुए हों! रिटायर होकर भी मरते दम तक सलाहकार रहे। एक उनका पति है, बिल्कुल अक्खड़, गँवार, कतई बी.के.जी. (बिल्ली का गू)। वह हिकारत की नजर से सब कह जाती है और पति है कि सीता के समान जमीन में गड़ना चाहता है, पर इसमें भी असमर्थ है।

सियासी महापुरुषों की खासियत है, वे कभी भी न गलत बोलते हैं, न करते हैं। यदि उनके अल्पसंख्यक समर्थन को कोई वोट का दाँव कहे तो यह उसकी बुद्धि का फेर है। हर चुनाव हारने से साबित होता है कि जनता उनकी बात समझ नहीं पा रही है। पर विकास की अपनी प्राथमिकता के लिए उनके पास न कोई कार्यक्रम है, न कोई एजेंडा। उनके भाषणों को सुनकर केवल यही लगता है कि उनका पूरा ध्यान सत्ताधारी दल के नेता की व्यक्तिगत आलोचना पर ही केंद्रित है। वह कभी सत्ता में आए तो क्या नए गुल खिलाएँगे, इसका कहीं जिक्र तक

नहीं है।

सत्ता में रहकर उनके दल ने भ्रष्टाचार का नया कीर्तिमान रचा है। यदि वह फिर कभी कुरसी पर बिराजे तो इस विषय में क्या कदम उठाएँगे, इस बारे में उनका मौन रहस्यमय है। क्या उनका विचार है कि जनता की सामूहिक याददाश्त इतनी कमजोर है कि उसे निकट अतीत का कुछ याद नहीं है? यदि ऐसा होता तो उनका राष्ट्रीय दल इतिहास की सबसे बुरी हार न झेलता। संभावना यही है कि वह स्वयं स्मृति-दोष से पीड़ित है, वरना कैसे भूलते कि उन्होंने खुद को हमेशा प्रजातंत्र, दल और सरकार से ऊपर समझा है। कैबिनेट के फैसले को फाड़ना क्या दरशाता है? सियासी महानता उनकी खुद की कमाई नहीं है। यह उनको विरासत में मिली दौलत है। दल ने उनके नेतृत्व में ज्यादातर चुनाव हारे हैं। फिर भी पारिवारिक प्रजातंत्र का ऐसा प्रभाव है कि वे अपनी पार्टी के सर्वोच्च और एकच्छत्र नेता हैं। किसकी मजाल है कि उनके बारे में चूँ भी कर सके? यदि किसी ने ऐसा दुस्साहस दिखाया तो दल से उसका निष्कासन निश्चित है। भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है या जेबी पारिवारिक जनतंत्र? यह निर्णय देश के चिंतक मतदाताओं और राजनीति-शास्त्र के अध्येताओं पर निर्भर है।

यों असलियत यह है कि नेता की चर्चा चलते ही सामान्य लोग थूकने की कोशिश करते दिखते हैं, जैसे उन्हें उल्टी आ रही हो। जो पान के लतियल हैं, उनके लिए यह पीक का स्वर्णिम अवसर है। अतीत के सम्मानित और सिद्धांतों को समर्पित जनसेवक का नाम वर्तमान के अवतारों ने स्वार्थ प्रेरित कर्मों से ऐसा बदनाम किया है कि उनकी हैसियत आज मोहल्ले के सार्वजनिक कूड़ेदान सी हो गई है। उसमें हर प्रकार के उच्चारित उसूल का कचरा पड़ता रहता है और एक-दो दिन बाद उसे किसी भी दल के कूड़ास्थल में फेंक दिया जाता है, गँधाने के लिए। सुविधानुसार कूड़ा-मैदान के स्थान बदलते रहते हैं और पार्टियों के लेबल भी। हर पार्टी ने अपने प्रवेश-द्वार पर जैसे एक ड्राई-क्लीनिंग की दुकान खोल रखी है। जब कोई तथाकथित कम्युनल नेता उस स्वप्रचारित सेक्युलर दल में घुसता है तो ड्राई क्लीनिंग के द्वारा अचानक धर्मनिरपेक्ष बन जाता है। ऐसे आज के नेता उस पर्यटक के समान हैं, जो सत्ता के रमणीक स्थलों की सैर के विशेषज्ञ हैं। कभी चुनाव हारे तो अकेले बंद कमरे में जनता को असली मुँह से गरियाते हैं और बाहर जन-निर्णय को विनम्रता का मुखौटा लगाए सिर झुकाकर स्वीकार ही नहीं करते, उसकी सेवा करते रहने की कसम भी खाते हैं। श्रोता भयग्रस्त हैं। अब तक की सेवा में उन्होंने डरा-धमकाकर सिर्फ पैसे खाए हैं, अब क्या उनके हाथ-पैर तुड़वाएँगे?

जहाँ तक समाज के सामान्य व्यक्ति का सवाल है, उसे लोकतंत्र में जुबान चलाने की आजादी है। त्रासदी यह है कि कमबख्त जुबान भी भरे पेट ही चलती है। लिहाजा वह भूख-पीड़ित पेट बजाकर नियति को दोष देता है। कुछ हद तक सही भी है। जन्म की दुर्घटना कहीं भी मुमकिन है। अभावग्रस्त निर्धन के घर न होकर यदि उसका जन्म किसी नेता या समृद्ध पूँजीपति के यहाँ होता तो उसकी जुबान भी मौके-बेमौके चलती रहती और पेट बजाने की नौबत भी शायद ही कभी आती!

९/५, राणा प्रताप मार्ग
लखनऊ-२२६००१
दूरभाष : ९४१५३४८४३८

कविता

दहलीज के भीतर

● रचना दीक्षित

कंकाल

साँकल से आँगन तक लहूलुहान टपकते देखे हैं
मैंने रिश्तों के कंकाल लटकते देखे हैं
छत औ दीवारें गलबहियाँ डाले इक दूजे को साझे
बरसों बरस स्वागत में महकते देखे हैं
फलदार फसलें फासलों की बोई थीं जिसने
फूल भी उनकी याद में अकसर सिसकते देखे हैं
सहमी हुई किलकारियों के झुंड पाँव भारी लिये
चौखट के बाहर हर रोज ठिठकते देखे हैं
बाँहें आहें और निगाहें दिन-रात कराहें
अपने ही कंधों पर सिर रखकर बिलखते देखे हैं
रिश्तों के जख्मों के रंग-बिरंगे टाँके
सूखने के बाद भी जब-तब चटकते देखे हैं
पिसते-पिसते रिसते-रिसते सारे रिश्ते
बलि की वेदी पर सिर पटकते देखे हैं
आँगन-तुलसी लहू के धब्बे जीवंत अभी भी
मन की चौखट के भीतर धू-धू कर धधकते देखे हैं
माँ की आँखें और साँसें खिड़की का कोना थामे
जाने क्या इतने बरसों मैंने ही सुबकते देखे हैं
साँकल से आँगन तक लहूलुहान टपकते देखे हैं
मैंने रिश्तों के कंकाल लटकते देखे हैं।

देहलीज

बचपन, सपने, यादें, विरासत
छोड़ आई थी, रख आई थी, सहेज आई थी
अपने घर की
देहलीज के भीतर कभी
ढूँढ़ती हूँ, खोजती हूँ,
टटोलती हूँ, तलाशती हूँ
कहीं भी कुछ भी
जब तब
पूछते हैं वे
क्या खोजती हो?
यहाँ कहाँ खोजती हो?
कैसे कहूँ उनसे
क्या खोजती हूँ?
कोई नहीं जानता
क्या खोजती हूँ
खोजती हूँ
रोशनी
उस देहलीज के भीतर
गहन अंधकार जो है।

१२५ मधुबन कॉलोनी, प्रीत विहार,
दिल्ली-११००९२
दूरभाष : ९८१८४९४७१७

आँसू बनकर बह गई

● पुरु मालव

दुःख अपना किससे कहें, सभी यहाँ मशगूल।
हमने भी रोते हुए, कर ली हँसी कबूल॥

जब तक पैसा है, तब तक दुआ-सलाम।
तंग हुआ जब हाथ तो, भूल गए सब नाम॥

देख जगत् की रीत को, हँसने लगे कबीर।
आँखों में आँसू घने, दिल में ना ही पीर॥

कोलाहल में दिन गया, अवसादों में रैन।
जीवन के घुड़दौड़ में, मिला कहीं न चैन॥

विलासिता के चीर से, सज-धज गया शरीर।
तन के उजले हो गए, मन के रहे फकीर॥

बन गए कागा नेक दिल, बगुले साधु-पूत।
उल्लू ज्ञानी हो गया, मेढक शांति दूत।

आँसू बनकर बह गई, बादल मन की पीर।
इस पागल के रंज में, कौन बहाए नीर॥

कलियुग के इस दौर की, क्या कीजै अब बात।
हंसों को दाने नहीं, कौवे खाएँ भात।

प्रभु तेरे इस जगत् का, कैसा विचित्र विधान।
ज्ञानी बैठा सिर धुने, मूरख पाए मान॥

रिश्तों के इस दौर में, हम कितने मजबूर।
रहते इस छत के तले, लेकिन कोसों दूर॥

मन की कोमल भूमि पर, खड़ा आस का रूख।
बिन पानी, बिन खाद के, गया बिचारा सूख॥

झीना पट ओढ़े खड़ी, शरद कौमुदी नार।
लजा गई नद नीर से, नैन हुए जब चार॥

बरसों मैं फिरता रहा, पाले भ्रम का रोग।
किंतु सिवा मेरे, भले लगे सब लोग॥

भटके दर-दर सिर झुका, घूमे चारों धाम।
बाट जोहते मिल गए, घर में सीता-राम॥

ताजीवन जो हर कदम, साथ चले दिन-रैन।
उनके मेरी मौत पर, हुए न गीले नैन॥

जग में उसकी धूम है, पिटा हुआ है ढोल।
लाख टके का आदमी, घर में कौड़ी मोल॥

खुशियाँ लौटीं जब यहाँ, सारी दुनिया घूम।
मेरे घर में था मचा, आँसुओं का हुजूम॥

सबसे मैं कहता फिरा, अपने मन की पीर।
लोग हँसे, चलते बने, कौन बँधाए धीर॥

हसरत है दिल की यही, बहकें जब जज्बात।
सिर रख तेरी गोद में, रोऊँ सारी रात॥

इब्तदाए-इश्क में, हुए अजब हालात।
दोहों जैसा दिन लगे, गजलों जैसी रात॥

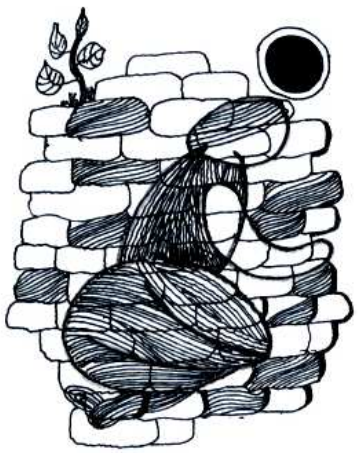

देख तेरे वियोग में, सूख गया है गात।
काँटों जैसा दिन चुभे, शूलों जैसी रात॥

लक्ष्मण-रेखा खींच दी, फिर भी चिंता शेष।
रावण हर घर में घुसा, धर साधु का भेष॥

ये कलियुग के देवता, सुनते उलटी बात।
माँगा जरा उजास तो, दूनी कर दी रात॥

हम लोगों की भुखमरी, चलती उलटी रीत।
खाई बासी घूघरी, गाए ताजा गीत॥

हम कहते-सुनते रहे, दुनिया के हालात।
लेकिन कही-सुनी नहीं, अपने मन की बात॥

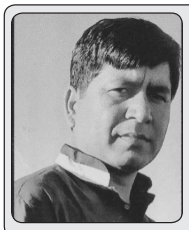

सुपरिचित कवि-लेखक। देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में सतत रचनाएँ प्रकाशित। संप्रति राजस्थान के शिक्षा विभाग में कार्यरत।

दो पल की है जिंदगी, उसमें लाखों काम।
फिर मुझको क्योंकर मिले, इक पल का आराम॥

इमली, बरगद, नीम की, मीठी-शीतल छाँव।
मेरी आँखों में है बसा, अब तक मेरा गाँव॥

तेरे आने पर कि यों, हुआ मुझे अहसास।
आया हो जैसे कुआँ, खुद प्यासे के पास॥

फनकारों के साथ है, दुनिया का दस्तूर।
जिंदा हैं गुमनाम हैं, मरे हुए मशहूर॥

हर पल लाखों हादसे, हर पल मौत सामान।
कहाँ-कहाँ बचती फिरे, ये नन्ही सी जान॥

तूने पल में रख दिया, मौला अखिल जहान।
बना न पाया उम्र भर, मैं तो एक मकान॥

मैं अपने हालात का, कैसे करूँ बयान।
होंठों पे ताला पड़ा, दिल में है तूफान॥

महलों की हस्ती मिटे, टूटे तख्तो-ताज।
हक की खातिर इस तरह, कर बुलंद आवाज॥

यही जगत् की रीत है, यही जगत् की चाल।
दुनिया जाए भाड़ में, अपना रखो खयाल॥

कड़वा-मीठा, झूठ-सच, चाहे कितना बोल।
हुकूमत के खिलाफ पर, होंठों को मत खोल॥

कृषि उपज मंडी के पास
अकलेरा रोड, छीपा बडौद
जिला-बाराँ-३२५२२१ (राजस्थान)
दूरभाष : ०९९२८४२६४९०

पैंतरेबाज

● दामोदर दत्त दीक्षित

सितारों ने करवट बदली थी और उनकी आँख लग गई थी। अँधेरे ने छँटना शुरू कर दिया था, पर मोहल्ला अभी भी औंधे मुँह पसरा पड़ा था। पुरवाई मद्धम में बह रही थी। चाय की चुस्कियों के साथ या बगैर चाय की चुस्कियों के अखबार पढ़ने का वक्त अभी फासले पर था। दूध, बिस्कुट, डबल रोटी वगैरह के जुगाड़ में निकलने का समय अभी शुरू नहीं हुआ था। यहाँ तक कि जवान मर्दों के टहलने का समय भी नहीं आया था। बस चंद बुजुर्ग ही टहलने की हिम्मत जुटा सके थे।

दो बुजुर्ग दोस्त टहलने के उद्देश्य से बाहर निकल पड़े थे। उनमें से एक बुजुर्ग ने, जिसके कान काफी चुस्त-दुरुस्त और ग्रहणशील बने हुए थे, ठिठकते हुए दूसरे से कहा, ''यार, नाले की ओर से किसी नन्हे बच्चे के रोने की आवाज आ रही है।''

दूसरा भी ठिठक गया, ''यहाँ नाले के पास बच्चा कहाँ? किसी कुतिया का पिल्ला होगा, जो 'कूँ-कूँ' कर रहा होगा।''

''नहीं, आवाज में फर्क है। चलो, देखते हैं।'' पहलेवाले बुजुर्ग ने कहा।

दूसरा बोला, ''क्या देखते हैं? सुबह-सुबह नाले की खुशबू सुँघाना चाहता है क्या? चल, आगे बढ़!''

''नहीं यार, जरा देर के लिए चलने में क्या हर्ज है?'' पहलेवाले से रहा नहीं गया।

''हो सकता है, झोंपड़पट्टी की कोई औरत आई हो, साथ में उसका छोटा बच्चा हो।''

''अमा यार, अब जवान नहीं रहे, सभ्य भाषा में सीनियर सिटीजन हो गए हो, पर ललक अभी तक गई नहीं।'' उसकी जुबान सरौता हो रही थी।

पहलेवाले ने छड़ी तान दी, ''साले! बहुत चरबी चढ़ गई है। अपनी ताक-झाँक की आदत मुझ पर लाद रहा है। चुपचाप चलता है या दूँ खींचकर।''

''भगवान् बुद्ध-महात्मा गांधी का नाम ले। अबे, क्यों सुबह-सुबह हिंसक पशु हो रहा है?''

दोनों हँसते हुए नाले की ओर बढ़ लिये। वहाँ जो दृश्य सामने था, उसे देखकर चौंक पड़े। सहमे भी। सामने चार-पाँच महीने की बच्ची फटी-पुरानी चद्दर पर पड़ी रो रही थी। फट रहे अँधेरे के बीच दिखा कि आँसू कोरों के नीचे से उतरकर चद्दर तक पहुँच गए थे। वह रोए जा रही थी और निरंतर हाथ-पाँव चला रही थी।

सुपरिचित व्यंग्यकार-कथाकार। अब तक 'दरवाजे वाला खेत', 'अलगी-अलगा' (कहानी-संग्रह), 'सबको धन्यवाद', 'प्रतिनिधि व्यंग्य', 'आपरेशन महुआ' (व्यंग्य-संग्रह), 'धुआँ और चीखें' (उपन्यास) चर्चित हुए।

उन्होंने अपने-अपने मोबाइल फोन निकाले और मुहल्ले के कुछ लोगों को बुला लिया। पुलिस को भी फोन कर तुरंत पहुँचने के लिए कह दिया। एक-दूसरे से सुनकर 'माउथ पब्लिसिटी' से मुहल्ले के कई लोग इकट्ठे हो गए। कुछ लोगों ने शक किया कि किसी आदमी या औरत ने अपनी बच्ची को यहाँ छोड़ दिया है। लड़की को बोझ समझा होगा या फिर यह अवैध संतान हो सकती है। कुछ आवाजें ऐसी भी आईं कि बच्ची को कोई घातक बीमारी या विकलांगता हो सकती है और यही यहाँ छोड़ने का कारण बना हो। कुछ ने कहा कि यह किसी संगठित आपराधिक गिरोह का काम हो सकता है।

सूरज ने हौले से अँगड़ाई ली थी और उठ बैठा था। मुहल्ले की खुमारी अप्रत्याशित तौर पर टूट गई थी। भीड़ जुट गई थी। लोग बच्ची के माँ-बाप, उनकी निष्ठुरता, उनकी निर्दयता को कोस रहे थे। घटना को लेकर अनुमानपरक किस्से अब भी जारी थे। जितने मुँह, उतनी बातें। तभी पुलिस की जीप आ गई। इंस्पेक्टर और दो सिपाही उतरे। इंस्पेक्टर ने चाइल्डकेयर हेल्पलाइन 'वरदान' को पहले ही फोन कर दिया था। कानाफूसी अचानक स्थगित हो गई। लोग इंस्पेक्टर से शहर की गिरती कानून-व्यवस्था की शिकायत करने लगे। यह भी कि मुहल्ले में अब रात के समय पुलिस गश्त नहीं देती। इसलिए चोर, उचक्के, शराबी, जुआरी, ड्रग ऐडिक्ट आदि बेफिक्र और बेलगाम घूमते रहते हैं। गश्त होती रहती तो किसी की हिम्मत न पड़ती कि मासूम बच्ची को इस तरह छोड़ जाए। एक व्यक्ति ने जोर से कहा कि पुलिस पर कैसे भरोसा किया जाए कि वह बच्ची छोड़नेवाले को पकड़ेगी और सजा दिलवाएगी।

इंस्पेक्टर घटनास्थल की ओर आगे-आगे बढ़ रहे थे और भीड़ पीछे-पीछे चल रही थी। की गई शिकायतों पर इंस्पेक्टर एक भी शब्द नहीं बोला था। साफ संकेत था कि बकते रहो, जो चाहो, मैं धेले भर परवाह नहीं करता मेरे ठेंगे से! तभी चाइल्ड हेल्पलाइन 'वरदान' के

प्रतिनिधि सेंट्रो कार से आ गए। इंस्पेक्टर ने पहले से कह रखा था कि पुलिस काररवाई के बाद देखभाल के लिए बच्ची को 'वरदान' को सौंप दिया जाएगा।

इंस्पेक्टर ने घटनास्थल का बारीकी से निरीक्षण किया। अपराधी के आने-जानेवाले मार्ग का अनुमान लगाया। अपराध-स्थल की चौहद्दी का विवरण नोट किया। फिर लोगों से पूछताछ शुरू की। सबसे पहले उन दो बुजुर्गों का बयान लिया, जिन्होंने बच्ची को सबसे पहले देखा था। पास के घरों के लोगों से पूछताछ की।

तफतीश जारी थी। तभी एक स्त्री भीड़ को चीरते हुए आगे आई। स्वरूप शरबती श्यामल और बदन भरा-भरा था। चेहरा सुडौल-सानुपातिक था। नाक लंबी और होंठ पतले थे। माँग में अच्छा-खासा सिंदूर फैला था। माथे पर बड़ी सी लाल बिंदी और चिंता की रेखाएँ थीं। हिरनी जैसी आँखों में कोई उत्साह, कोई सपना नहीं था। दैहिक कमनीयता को गंदुमी, पुराने एवं मसके साड़ी-ब्लाउज और बिखरे-उलझे बालों ने छीन लिया था। एक हाथ में सूरज गुदा था, दूसरे में चाँद। बाएँ हाथ में मौली बँधी थी। स्त्री रोते हुए बोली, ''साहब, यह बच्ची मेरी है। मैं इसकी अम्माँ हूँ। इसे मुझे दे दो। मैं अपनी बच्ची किसी को नहीं दूँगी।''

मजमे में स्तब्धता छा गई। गोया अपराधी खुद सामने हाजिर है!

स्त्री लगातार रोए जा रही थी और बार-बार एक ही रट लगा रही थी, ''बच्ची मेरी है। मैं इसकी अम्माँ हूँ। इसे मुझे दे दो। मैं अपनी बच्ची किसी को नहीं दूँगी।''

इंस्पेक्टर ने उसे संदेह की दृष्टि से घूरा, फिर जोर से डपटा, ''चुप रह। जो पूछता हूँ, सच-सच, सही-सही बता। तेरी बच्ची है, तो तूने इसे यहाँ क्यों फेंका था?''

उसने कहना शुरू किया, ''दरोगाजी, मेरी दो बेटियाँ पहले से हैं। यह तीसरी हो गई। मेरे आदमी ने खूब बुरा-भला कहा, खूब कोसा, दोष मढ़ा। कहा, तुम्हारे करम खराब हैं, मुकद्दर खराब है। इसीलिए बार-बार लड़की हो रही है। मारपीट करता रहता है। उसने दबाव डाला कि इस तीसरी को नाले के पास फेंक आऊँ। कहता है, इतनी लडकियों को पाल-पोस नहीं सकता। शादी-ब्याह में भी भारी खर्चा होगा, जिसे बरदाश्त नहीं कर पाऊँगा। फिर लड़कियाँ तो दूसरे घर चली जाती हैं।''

वह रुकी, धोती के खूँट से अपने आँसू पोंछे और फिर कहना शुरू किया, ''झगड़ा-झंझट और मारपीट से तंग आकर आदमी के दबाव में आज बहुत तड़के मैंने इसे यहाँ छोड़ दिया। फिर पेड़ की ओट में छिप गई कि बच्ची को कुत्ते, बिल्ली जैसे जानवर नुकसान न पहुँचाएँ। चाहती थी कि यह किसी भले आदमी के हाथ लग जाए, जो इसे पाल ले। थोड़ी देर बाद ये दो बुजुर्ग आदमी—जिनके हाथों में छड़ी है—आए और फोन कर लोगों को बुला लिया। थोड़ी देर में लोग बटुर आए और हंगामा काटने लगे। फिर आप आ गए, दरोगाजी। अब आप मेरी बेटी को ले जा रहे हैं और इसे जेल में बंद कर देंगे। मेरी नन्ही सी बच्ची की वहाँ कौन देखभाल करेगा? यह तो वहाँ मर ही जाएगी।''

इंस्पेक्टर ने उसे टोका, ''अरी बेवकूफ, इसे जेल में नहीं रखा जाएगा। एन.जी.ओ. को दे दिया जाएगा, जो इसकी देखभाल करेगा।''

''दरोगाजी, अब मैं अपनी बच्ची किसी को नहीं दूँगी। खुद पालूँगी। मुझे मेरी बच्ची दे दीजिए।'' उसने माथे को पोंछा, यद्यपि वहाँ पसीना नहीं था।

इंस्पेक्टर ने जद्द-बद्द बकने की एक अदद खेप खिसकाई, ''बदमाश, मक्कार, निर्दयी कहीं की! इसे यहाँ फेंकते वक्त नहीं सोचा था। अब माया-मोह सता रहा है, टेसुए बहा रही है। मामले की जाँच हो रही है। अब नहीं दी जा सकती। सरकार इसकी देखभाल करवाएगी। तेरा क्या है, कल फिर तू इसे फेंक देगी। निर्मोही जो है! सुबह-सुबह दौड़ा दिया, दिमाग खराब कर दिया। अपशकुन कर दिया। अब सारा दिन खराब बीतेगा। जा परे हट! बच्ची नहीं दी जाएगी।''

स्त्री के माथे पर बल पड़ आए। वह हाथ जोड़कर इंस्पेक्टर के पैरों पर गिर पड़ी, ''साहब, हुजूर, मानती हूँ कि गलती की। पर माफ किया जाए। वादा करती हूँ कि बच्ची अपने पास ही रखूँगी। फिर कभी ऐसी गलती नहीं करूँगी।''

इंस्पेक्टर ने सात पुश्तों का तर्पण करते हुए कुछ भद्दी बातें कहीं, फिर उसे झटक दिया, ''पीछे हट···।''

सोच रहा होगा कि इसके बालों की जुएँ उसपर न चढ़ जाएँ। छूत की कोई बीमारी न पकड़ ले।

स्त्री प्रायश्चित्त स्वरूप अपने गालों पर थप्पड़ जड़ने लगी। रो-रोकर बुरा हाल कर लिया। कुछ समय बाद वह उठी और सिपाही के हाथों से बच्ची छीनने लगी। सिपाही ने झटक दिया। नीचे गिर पड़ी और मछली की तरह तड़पने लगी। गिरने के कारण और बच्ची को ले पाने में असफल रहने के कारण रोने की आवाज तेज हो गई। वह गेहूँ की नई बाली की तरह लगातार काँप रही थी।

कुछ समय तक वह बदहवास सी रोती-कलपती रही। सहसा सिकुड़ा मन बेहिसाब फैल गया। चेहरा चूल्हे की तरह दहकने लगा और शेष शरीर मानो अदहन की तरह उबल रहा हो। वह स्टिंग के झटके की तरह उछली और बिजली की गति से झपटकर असावधान सिपाही तक पहुँची। चोट खाई बाघिन की तरह लपककर बच्ची छीन ली। फिर कुछ दूर जाकर जमीन पर बैठ गई और ब्लाउज से अपना सुपुष्ट स्तन निकालकर बच्ची के मुँह में दे दिया। बच्ची का रोना बंद हो गया और वह दूध पीने लगी। सबकुछ पलों में घटित हो गया। स्त्री में ऐसा तेवर,

ऐसा जज्बा कि पूरे प्रदेश की पुलिस होती, तब भी बच्ची छीनकर ही दम लेती। भावावेश में उसकी आँखें भर आईं और साड़ी का पल्लू भीगने लगा।

सभी हतप्रभ! अचानक हुए आक्रमण से सिपाही हक्का-बक्का रह गया। वह स्त्री की ओर झपटा, वहाँ तक पहुँचा भी, पर ठिठक गया। दूध पिलाती स्त्री से बच्ची छीनने का साहस नहीं जुटा सका। पहलवानी धरी-की-धरी रह गई। गरीब, अनपढ़ और जाहिल स्त्री के तात्कालिक चातुर्य ने सबको चारों खाने चित्त कर दिया था।

भीड़ में भी सन्नाटा पसर गया था। यद्यपि सिपाही रुक चुका था, फिर भी भीड़ के अनगिनत स्वर एक साथ उभरे, ''रुक जाओ, रुक जाओ, बच्ची मत छीनो।''

बच्ची को दूध पिलाने की भावनात्मक, संवेदनात्मक और संवेगात्मक घटना ने स्त्री की भर्त्सना करती, विरोध में खड़ी भीड़ को अचानक उसके पक्ष में ला खड़ा किया। उनके मन में ओस में भीगी मटर की फली की तरह कोमलता-तरलता दौड़ गई।

छड़ीवाले बुजुर्ग, जिनकी बच्ची की तलाश में मुख्य भूमिका थी, इंस्पेक्टर के पास गए और खौलते मन पर पानी डालने की कोशिश की, ''इंस्पेक्टर साहब, हम सबकी राय है कि इस मामले को यहीं खत्म कर दीजिए। यह तो जाहिल ठहरी, गलती तो हम सबसे भी हो जाती है। अभी तो तफतीश चल रही है। मामला दर्ज नहीं हुआ है। छोड़िए अब। इसे हम कायदे से समझा देंगे, इसके पति को भी कि आइंदा ऐसा न हो।''

इंस्पेक्टर ने नाक के कोये फड़फड़ाए और साइलेंसर मुक्त मोटर-साइकिल की तरह गुराया, ''कैसे छोड़ दूँ? अभी तो आपके लोग लैक्चर पिला रहे थे कि पुलिस कोई कारवाई नहीं करती, मुझे नौकरी करना सिखा रहे थे। अब जब कारवाई कर रहा हूँ तो आप ही लोग कारवाई रोकने की बात कर रहे हैं। पता नहीं, किस मुँह से कह रहे हैं? आप लोग अपना काम कीजिए, पुलिस को अपना काम करने दीजिए। अब तो मामला न्यायालय में जाएगा। न्यायालय जैसा चाहेगा, वैसा ही होगा। आप लोगों को जो कहना हो, वहीं कहिएगा।''

इंस्पेक्टर लिखा-पढ़ी करता रहा। तभी पास के मंदिर से लाउड स्पीकर पर गीत गूँजा—

तू प्यार का सागर है, तेरी इक बूँद के प्यासे हम
लौटा जो दिया तूने, चले जाएँगे जहाँ से हम

गीत के बोल सुनते ही इंस्पेक्टर की कलम थम गई और वह डायरी के कोने पर लकीरें बनाने लगा। उसका सारा ध्यान गीत पर केंद्रित हो गया, गीत के एक-एक शब्द को पीने लगा, सारी तल्लीनता गीत में समाहित हो गई।

गीत समाप्त हुआ। इंस्पेक्टर को लगा कि गीत में नन्ही बच्ची, उसकी माँ और खुद वह मौजूद है। उसने कलम जेब के हवाले की और डायरी बंद कर दी। सिपाहियों से चलने का संकेत कर वह उठ खड़ा हुआ। स्त्री की आँखों में खुशी की लहरें मचलने लगीं। वह घने कुहासे में प्रकाश की लकीर के मानिंद इंस्पेक्टर को देखती रही।

लोग 'धन्यवाद', 'थैंक यू' और ऐसे ही शब्द बोलते रहे, पर इन शब्दों की ओर बगैर कोई ध्यान दिए, बगैर किसी की ओर देखे और बगैर कुछ बोले वह जीप में बैठ गया। जीप चल दी। गीत अभी भी उसपर हावी था और वह अभी भी दूसरी ही दुनिया में था!

१/३५, विश्वास खंड, गोमती नगर,
लखनऊ-२२६०१० (उ.प्र.)
दूरभाष ९४१५५१६७२१

आराध्या

कविता

● रवींद्र कुमार उपाध्याय

उषा की पावनता
दोपहर का यौवन
और संध्या की
लालिमा हो तुम
जीवन की
आराध्या हो तुम।
रोम-रोम पुकारता
दृष्टियाँ निहारतीं,
कर्ण रहते बेचैन
बिसूरता है व्यथित मन
पल-पल प्रतीक्षारत
तुम सागर से मिलने
बहता हूँ नदी की भाँति
तन-मन-जीवन सर्वस्व
समर्पित है तुम्हें।
अंतस की पुकार
आँखों की भाषा
समझनी है तुम्हें
मन-मंदिर की
मूरत हो तुम
आराध्या! तुम्हारा
पारिजात सा खिलना
चाँद सा चमकना
कोहिनूर सा दमकना

स्वर्ग सा महकना
कल्पवृक्ष सा देना
और पारस सा छूना
पूर्ण करेगा मेरे
पुरुषार्थ चतुष्ट्य
जो तुम मिल जाओ
आराध्या
पूरी हो जीवन की सार्थकता।

४० महेश नगर, निंबाहेड़ा
जिला-चित्तौड़गढ़ (राजस्थान)
दूरभाष : ९४६८६६१२७८

उसको बारंबार प्रणाम

● बसंता

सुपरिचित कवि एवं रचनाकार। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। संप्रति अंग्रेजी विभाग के प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, सरदार वल्लभभाई पटेल महाविद्यालय, कैमूर (बिहार)।

कटी पतंग

नीलगगन में पतंग उड़ाते जिसकी डोर हमारे हाथ,
उसी तरह साँसों की डोर रहती नित परमेश्वर के हाथ।
जब तक डोरी रहे हाथ में तब तक संभव उड़ पाना,
तब तक ही जीवन है जब तक साँसों का मिला खजाना।

पतंग जितना भी इतराए पर बंधन से दूर न जाए,
अठखेलियाँ करे गगन में, नजरों से ओझल हो जाए।
जिसके हाथ में डोरी रहती सदा देखता नजर गड़ाए,
हाथों से संचालन करता, कदम बढ़ाता दाएँ-बाएँ।

कटी पतंग डोर से ज्योंही हुआ असंभव उड़ पाना,
लहराते-बलखाते उसको निश्चित धरती पर आना।
नियति में होता उसका किसी डाल में फँस जाना,
या तो पीछे दौड़ रहे बच्चों के हाथों लुट जाना।

सब जीवों की अखिल चेतना में ईश्वर नित रमण करे,
साँसें टूटीं, बुझी चेतना जीव यहाँ से गमन करे।
मानव है असहाय यहाँ पर अगर न हो ईश्वर का संबल,
विश्वनियंता अखिल स्रोत बन सब जीवों में बहता निर्मल।

साँसों का जो मिला खजाना उसका सदा रखें हम ध्यान,
ईश्वर को हम करें समर्पित इन साँसों का पुष्प-वितान।
कब तक आए, कब न आए; सबकुछ ईश्वर का अवदान,
साँसों के न आने पर तो हो जाता सबका अवसान।

वही कृष्ण और वही है राम

घट-घट में नित रमनेवाला
कण-कण में नित रहनेवाला,
जड़-चेतन सबका रखवाला
सब जीवों का अंतिम धाम,
उसको बारंबार प्रणाम!

अंतर्यामी वह भुवनेश्वर
अखिल सृष्टि का वह परमेश्वर,
दीन दयाल, सुहृद् हितकर
उसके तो हैं अगणित नाम,
उसको बारंबार प्रणाम!

कोई रूप कहीं ले सकता
सुगंध बन फूलों में महकता,
चिड़ियों की बोली में चहकता
वह दाता निष्काम,
उसको बारंबार प्रणाम!

असीमित है उसका वैभव
उससे होता सबका उद्भव,
जिसका उद्गम नहीं पराभव
वही गति और वही विराम,
उसको बारंबार प्रणाम!

जल में, थल में, सकल भुवन में
सूरज, चंदा और गगन में,
कंकड़, पत्थर और पवन में
रमण करे अविराम,
उसको बारंबार प्रणाम!

माया से वह दिख न पाए
भक्तिभाव से वह दिख जाए,
भक्तों का वह भार उठाए
चिदानंद चिन्मय सुखधाम,
उसको बारंबार प्रणाम!

वह सर्वज्ञ, अनंत, विधाता
निर्गुण, सगुण, वही हो जाता,
राई से पर्वत बन जाता
लीलाधारी वह अभिराम,
उसको बारंबार प्रणाम!

उसकी महिमा अमित, निराली
वही समर्थ, वही बलशाली,
अखिल सृष्टि बगिया का माली
वही कृष्ण और वही है राम,
उसको बारंबार प्रणाम!

सा.अ.

अध्यक्ष, अंग्रेजी विभाग,
सरदार वल्लभभाई पटेल कॉलेज
भभुआ, कैमूर-८२११०१ (बिहार)
दूरभाष : ०९४३०५८१२४६

स्मरण

केदारनाथ सिंह : सिर्फ मेरी दिनचर्या बदल जाएगी

● हेमंत कुकरेती

मेरी कवि पीढ़ी ने जब आँखें खोलीं और धीरे-धीरे चलना सीखा तो उसे देखना और चलना सिखानेवाले अग्रज कवियों में केदारनाथ सिंह की उपस्थिति सबसे आत्मीय और प्रिय थी। एक कवि और व्यक्ति के रूप में वे इतने बड़े थे कि उनमें बड़प्पन की जरा भी बू नहीं थी। मुझे जब भारत भूषण सम्मान मिला तो उसके निर्णायक केदारजी ही थे। हिंदी कविता के लिए यह एक ऐसा प्रतिष्ठादायी सम्मान है, जो किसी भी युवा कवि के लिए हिंदी कविता की बड़ी दुनिया में स्थापित होने का सिंहद्वार ही नहीं खोलता बल्कि उसे उच्च क्रम पर स्थापित भी करता है। हर रचनाकार की अपनी पसंदीदा मनोभूमि होती है। उससे बाहर आना जरा मुश्किल होता है। केदारजी इस मामले में अपवाद जैसे रहे। केदारजी गाँव की संवेदना के कवि हैं, जबकि मेरा मानसिक विकास महानगरीय कवि के रूप में हुआ है। उन्होंने उक्त पुरस्कार के लिए जिस 'सिलबट्टा' शीर्षक मेरी कविता का चुनाव किया, उसकी भावभूमि शहर द्वंद्व और अंतर्विरोधों से निर्मित हुई है।

(७ जुलाई, १९३४—१९ मार्च, २०१८)

वे अपने बाद की युवा और युवतर कवि पीढ़ियों से जुड़े रहे। अनेक मंचों पर वे उनकी दिल खोलकर प्रशंसा किया करते थे। जब मैंने छपना शुरू किया तो मैं दिल्ली विश्वविद्यालय में बी.ए. की पढ़ाई कर रहा था। केदारजी जे.एन.यू. में वरिष्ठ प्रोफेसर थे। एम.ए. के शुरुआती दिनों में ही मुझे उनका एक बेहद अपनेपन से भरा पत्र मिला। जिसमें मेरी कविता के विषय-वैविध्य और भाषा की ताजगी की उन्होंने घनघोर तारीफ की थी। वह मेरे लिए किसी भी बड़े पुरस्कार से कम नहीं था। इससे अपने लेखन पर विश्वास जमना शुरू हुआ। मुझे उनका शोध छात्र माना जाता था। कई पत्रिकाओं में मेरा परिचय कविताओं के साथ इसी रूप में छपा है। अभी हाल ही में हिंदी कवियों की समृद्ध परंपरा को तीन-चार खंडों में प्रस्तुत करने के सिलसिले में उनका सान्निध्य मिला। स्वयंभू से लेकर अरुणकमल तक लगभग ८५ कवियों का चयन उनकी सहमति से किया गया। मेरे आलस्य और दूसरी बेमतलब व्यस्तताओं के चलते उनके सामने यह काम नहीं आ पाया। इसकी भूमिका भी उन्होंने ही लिखनी थी।

७ जुलाई, १९३४ से लेकर १९ मार्च, २०१८ तक फैले जीवनकाल में वे अंत तक रचनारत रहे। इसका साक्ष्य उनका उत्कृष्ट और विपुल लेखन है। 'अभी बिल्कुल अभी, जमीन पक रही है, यहाँ से देखो, अकाल में सारस, उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ, ताल्सतॉय और साइकिल, सृष्टि का पहरा (कविता-संग्रह) के अतिरिक्त मेरे समय के शब्द, कब्रिस्तान में पंचायत, चिट्ठियाँ कैलाशपति निषाद के नाम, मेरे साक्षात्कार जैसी किताबों में उनके बेहतरीन गद्य का आस्वाद मिलता है।

सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं के अलावा अंग्रेजी, स्पेनी, रूसी, जर्मन, हंगारी, फ्रांसीसी, इतालवी, डच भाषाओं में उनकी कविताओं के अनुवाद प्रकाशित हुए हैं।

काव्यपाठ के लिए उन्होंने अमेरिका, रूस, जर्मनी, ब्रिटेन, इटली, कजाकिस्तान समेत अनेक देशों की यात्राएँ कीं और लेखन के लिए उन्हें कई महत्त्वपूर्ण पुरस्कारों से उन्हें सम्मानित किया गया, जिसमें २०१३ का देश का सर्वोच्च साहित्य सम्मान ज्ञानपीठ पुरस्कार शामिल है। यह पुरस्कार पानेवाले वे हिंदी के १०वें साहित्यकार थे। इसके अलावा १९८९ में 'अकाल में सारस' कृति के लिए साहित्य अकादेमी पुरस्कार, १९९३-९४ का मैथिलीशरण गुप्त सम्मान, १९९७ में उत्तर कबीर तथा अन्य कविताएँ के लिए व्यास सम्मान, कुमारन आशान पुरस्कार, दिनकर पुरस्कार, जीवनभारती सम्मान पानेवाले केदारजी साहित्य अकादेमी के महत्तर सदस्य रहे।

एक बातचीत में यह पूछने पर कि आप लंबे समय तक साहित्य के अध्यापक रहे हैं। अध्यापन ने आपके कवि की मदद की या अध्यापन की व्यवसायगत कंडीशनिंग कविता लिखने में कहीं भी बाधक बनी? इसके उत्तर में उन्होंने कहा कि आपने यह अच्छा प्रश्न पूछा! पहली बार किसी ने ऐसी जिज्ञासा रखी है। दरअसल मेरे मन में भी यह चीज कई बार उठती रही है। यहाँ मैं यह कहना चाहूँगा कि किसी भी पेशे की तरह अध्यापन के पेशे में रहने की भी सीमाएँ जरूर होती हैं। साहित्य का अध्यापक चूँकि साहित्य के बारे में एक खास तरह की कंडीशनिंग भी करता है, इसलिए एक रचनाकार के लिए उस कंडीशनिंग से लड़ने की जरूरत लगातार होती है।

मैं तुलसी को पढ़ता रहता हूँ। यहाँ सीधे कहूँ कि मैंने पहली बार रामचंद्र शुक्ल की आँख से उन्हें पढ़ा और वह मेरी एक ऐसी कंडीशनिंग थी, जिससे मुक्त होने में मुझे काफी समय लगा। इस तरह की सीमाएँ कुछ दूसरों को पढ़कर तथा कुछ अपनी तत्संबंधी मान्यताओं के कारण बनती चलती हैं। एक अध्यापक-सर्जक को उनसे लगातार लड़ना पड़ता है।

कविता के जीवन-रस की प्राप्ति के लिए केदारजी बार-बार अपने

गाँव जाते रहे। उनके यहाँ गाँव का कोई यूटोपिया तो नहीं है, लेकिन वहाँ एक नॉस्टेलेजिक अनुभव की तरह उसे देख सकते हैं। केदारजी ने स्वीकार किया कि 'आपने ठीक कहा! दिल्ली में २५ वर्षों से हूँ, लेकिन आज भी यहाँ स्वयं को अजनबी की तरह पाता हूँ। इसका कारण यह है कि मेरे जीवन का महत्त्वपूर्ण हिस्सा गाँव में या गाँव जैसे परिवेश में बीता है। मैं दिल्ली आना नहीं चाहता था, जे.एन.यू. में नियुक्ति के बाद भी नहीं! बल्कि एक बार तो शायद १९६७ में दिल्ली विश्वविद्यालय के खालसा कॉलेज में नियुक्ति का ऑफर भी अस्वीकार कर दिया था। पता नहीं क्यों, दूर बैठे-बैठे दिल्ली से डर लगता था! अब इनसाइडर हूँ, तब भी उस डर से पूरी तरह मुक्त नहीं हुआ हूँ। शायद इस शहर का विराट् आकार और उसका जनसंकुल परिवेश, आपाधापी, भागदौड़—इस भय के मूल में हों!'

केदारजी अपने प्रभा-मंडल के सम्मोहन से परिचित थे। लेकिन वरिष्ठ, समकालीन और अनुज—सबके प्रति सम्मान का भाव उनमें बना रहा। बातचीत में परेशान करने वाला मैंने एक सवाल किया कि 'हिंदी कविता को सर्वाधिक लोकप्रिय मुहावरा आपने दिया है। कई कवि तो देर तक आपकी आवाज में बोलते रहते हैं। आपने कविता को आसान और आकर्षक बना दिया है। सुगम गायकी की शुरुआत के लिए मुकेश का अनुकरण किया जाता है, ऐसे ही कविता की दृष्टि से आपका काम रेफरेंस की तरह है। आज की हिंदी कविता को प्रभावित करने की दृष्टि से रघुवीर सहाय का नाम भी महत्त्वपूर्ण है। इस संदर्भ में उनके साथ तुलना किए जाने पर आपकी टिप्पणी?' इसके संतुलित और गंभीर जवाब में उन्होंने कहा कि यह आपने संकोच में डालनेवाला सवाल पूछ लिया है। ऐसा प्रश्न पहले किसी ने पूछा नहीं और पूछा भी जाता तो मैं उसका जवाब नहीं देता। इसलिए इसका उत्तर देने में मुझे थोड़ी कठिनाई हो रही है—तब भी मैं बात साफ करने की कोशिश करता हूँ।

यह आपने संकोच में डालनेवाला सवाल पूछ लिया है। ऐसा प्रश्न पहले किसी ने पूछा नहीं और पूछा भी जाता तो मैं उसका जवाब नहीं देता। इसलिए इसका उत्तर देने में मुझे थोड़ी कठिनाई हो रही है—तब भी मैं बात साफ करने की कोशिश करता हूँ...दरअसल जब भी मैं सुनता हूँ—रघुवीर सहाय बनाम केदारनाथ सिंह—तो मुझे यह एक सरलीकरण की तरह लगता है और इससे मुझे हमेशा परेशानी होती है। पता नहीं यह स्थिति कब और कैसे बन गई और अब तो यह एक चालू मुहावरे जैसा बन गया है। मैं इस स्थिति को दुर्भाग्यपूर्ण मानता हूँ।

दरअसल जब भी मैं सुनता हूँ—रघुवीर सहाय बनाम केदारनाथ सिंह—तो मुझे यह एक सरलीकरण की तरह लगता है और इससे मुझे हमेशा परेशानी होती है। पता नहीं यह स्थिति कब और कैसे बन गई और अब तो यह एक चालू मुहावरे जैसा बन गया है। मैं इस स्थिति को दुर्भाग्यपूर्ण मानता हूँ।

आज की कविता को जहाँ तक मेरे द्वारा प्रभावित करने का सवाल है, उसको लेकर कुछ ठीक-ठीक आकलन करने में मैं समर्थ नहीं हूँ। बाद की पीढ़ी ने जिस परंपरा का विकास किया, उसमें मैं कहाँ, कितना या बिल्कुल नहीं हूँ, इस संदर्भ में मैं पूरी ईमानदारी के साथ कह सकता हूँ कि इसे जाँचने का कोई पैमाना मेरे पास नहीं है। मैं मानता हूँ कि बाद की पीढ़ी जो आई है, वह अपने से पहले की पीढ़ी के बावजूद आई है। यह और बात है कि हर पीढ़ी अपनी पूर्ववर्ती पीढ़ी से कुछ लिये-दिए, अपने वजूद में आती है। मेरा खयाल है कि रघुवीर सहाय-केदारनाथ सिंह की ऐसी चर्चा स्वस्थ आलोचना का विषय नहीं है और किसी भी प्रकार की तुलना की दृष्टि से इसे नहीं देखा जाना चाहिए। असल में केदारजी उस समय जोर-शोर से जारी हिंदी कविता के कथित षड्यंत्र-प्रहसन को पहचानते थे। वे न किसी की तरह दिखना चाहते थे, न किसी को अपनी तरह बनने की महत्त्वाकांक्षा उनमें थी। हालाँकि उस समय ऐसे कई थे, जो केदारजी जैसा दिखना और लिखना चाहते थे—इसका भी उन्होंने समर्थन नहीं किया!

कोई भी स्मृति अंततः बिंब होती है। हर बड़ा कवि अपने बिंबों से पहचाना जाता है।

केदारनाथ सिंह की काव्य-पीढ़ी के ज्यादातर कवियों की कविता विचारों से बोझिल दिखाई देती है। केदारनाथ सिंह छोटे लेकिन स्थायी असर डालनेवाले बिंबों के द्वारा बड़ी बात कहनेवाले कवि हैं। वस्तुओं और मनोदशाओं के जितने बिंब उन्होंने निर्मित किए हैं, शायद ही किसी आधुनिक हिंदी कवि ने किए होंगे। यह काव्यात्मक-अकाव्यात्मक, सहज-जटिल को एकसाथ साधने की विलक्षण कला का साक्ष्य है।

शब्दों के बचे रहने तक बचे रहने का स्थायीभाव केदारनाथ सिंह की कविताओं का है। अपने अंतिम प्रकाशित संकलन की आखिरी कविता में उन्होंने लिखा—'रहेगा सब जस का तस/सिर्फ मेरी दिनचर्या बदल जाएगी/साँझ को जब लौटेंगे पक्षी/लौट आऊँगा मैं भी/सुबह को जब उड़ेंगे/उड़ जाऊँगा उनके साथ।' शब्द में अर्थ की तरह उनकी कविता का सौंदर्य बार-बार सघन और प्रासंगिक होता रहेगा।

वरिष्ठ रचनाकार। अब तक पाँच कविता-संग्रह प्रकाशित। भारत-भूषण सम्मान, कृति सम्मान, केदार सम्मान से सम्मानित। कविताएँ देसी-विदेशी भाषाओं में अनूदित। संप्रति श्यामलाल कॉलेज (दि.वि.वि.) से संबद्ध। 'साहित्य अमृत' (मासिक) के संयुक्त संपादक।

ए-३/५०, पश्चिम विहार,
नई दिल्ली-११००६३
दूरभाष : ०९८१८५४०१८७

बड़े क्लोजअप का फ्रीज शॉट

मूल : **सुनील दास**

अनुवाद : **श्याम सुंदर चौधरी**

२५ मई, १९४३ को कलकत्ता में जनमे श्री सुनील दास ने अध्यापन किया। अब तक ३५० से अधिक कहानियाँ, १६ उपन्यास, ८ नाटक, कुछ यात्रा-संस्मरण प्रकाशित तथा विमल मित्र रचनावली के २० खंडों के संपादन कार्य में संलग्न। अभी तक दस खंड प्रकाशित हो चुके हैं। इनके निर्देशन में कई नाटक देश-विदेश में मंचित हुए। इनमें दो उपन्यास और कुछ कहानियों पर बांग्ला फिल्में एवं टेलीफिल्में बन चुकी हैं। भारत, स्वीडन और जर्मनी में सम्मानित। रीडर पद से सेवानिवृत्त होकर स्वतंत्र लेखन और नाट्य निर्देशन में व्यस्त।

अपने उलझे हुए बालों पर ब्रश चलाते हुए रिंकी ने कहा, ''कुछ भी कहो, मुझे तो इस सपने में बड़ा मजा आया। मैंने तो भई लिट्रली एन्ज्वॉय किया। ऐसी भयानक परिस्थिति में भी इस तरह दौड़ते हुए चले जाना भला कम थ्रिलिंग है? क्या कहते हो?''

शुभव्रत थोड़ा मुसकराया, फिर बोला, ''इससे तुम्हारे भीतर की प्रभुत्वकामी मानसिकता का पता चलता है।''

''क्या कामी··· ?'' रिंकी ने शुभव्रत की आँखों में आँखें डालकर पूछा।

''प्रभुत्वकामी। असल में तुम्हारे भीतर एक डिक्टेटर रहता है।''

''ऐसा है?'' इस बार रिंकी के होंठों पर एक गुलाबी हँसी खिल उठी।

''हाँ, तुम लोगों के सिर पर पैर रखकर चलना पसंद करती हो।''

दीवार पर लगे हुए ओवल डिजाइन के दर्पण में अपनी आँखें गड़ाते हुए रिंकी बोली, ''ऐसा भीतर से नहीं चाहती, यह भी तो मैंने कभी नहीं कहा। न तो मैं तुम्हारी तरह 'क्रीम ऑफ द प्रोग्रेसिव सर्कल' हूँ और न किसी तरह का ढोंग करती हूँ। मेरे खयाल में तो हर आदमी प्रभुत्वकामी होता है, दूसरे को हर क्षण डॉमिनेट करने की फिराक में रहता है।''

शुभव्रत ने पहले कहना चाहा, 'मैं इस फिराक में नहीं रहता।' लेकिन चुप रहा।

इस वक्त वह किसी तर्क-कुतर्क के चक्कर में फँसना नहीं चाहता। सिर्फ रोचक होने के कारण उसने रिंकी के सपने को सुना। उसपर गंभीर चर्चा करना उसके लिए कोई बड़ी बात नहीं थी। छात्र-जीवन से ही उसका प्रगतिशील मंच में उठना-बैठना रहा है। कड़ी-तीखी प्रतिक्रिया वह बहुत सहजता से दे सकता था, किंतु इतनी सी बात पर बड़े परदे की इस ग्लैमरस हीरोइन के साथ बहस करके समय बरबाद करे, इतना बेवकूफ भी नहीं है वह।

दिन भर उसे कितनी मेहनत करनी पड़ी, यह सिर्फ वही जानता है। रायटर्स बिल्डिंग के कर्मचारियों के साथ इतनी बक-बक करनी पड़ी है कि उसका सिरदर्द होने लगा था। अभी भी भारीपन महसूस हो रहा है। इसी भारीपन से निजात पाने के लिए वह रिंकी के इस फ्लैट में आया है। शुभव्रत ने कुछ न कहते हुए गिलास में थोड़ी सी व्हिस्की उड़ेल ली।

अपने को मानसिक और शारीरिक रूप से आराम पहुँचाने के लिए ही वह अकसर दक्षिण कलकत्ता के इस हाईराइज बिल्डिंग में दसवें माले के इस फ्लैट का उपयोग करता है। रिंकी का यह फ्लैट धूल, गर्द और गंदगी से तो काफी ऊपर है ही, साथ ही भीड़ और शोरगुल से भी दूर है। इसके अलावा यहाँ शुभव्रत जब-तब उससे मिलने आनेवालों से भी बचा रहता है। यहाँ उसका कुछ समय शांति से कट जाता है। लगातार दो विदेशी फिल्मोत्सव में उसकी फिल्म 'दो वक्त दो मुट्ठी' के पुरस्कार पाने के बाद तो उसके लिए शांति से अपने हिसाब से रह पाना बहुत कठिन हो गया, जबकि किसी क्रिएटिव इनसान के लिए शांति से आईसोलेसन में रहना कितना जरूरी है, यह हर कोई समझ नहीं सकता। वैसे रिंकी से भी हर वक्त मिल पाना उसके लिए बहुत आसान नहीं है। आखिर वह भी तो टॉलीगंज की एक व्यस्त नायिका है।

व्हिस्की की सिप लेते-लेते उसने मन-ही-मन रिंकी के सपने का शॉट डिवीजन कर लिया। सही जगह इस शॉट को लगा दिया जाए तो गलत नहीं होगा। सपना कुछ इस तरह था—एक बहुत बड़ा मैदान। हजारों की संख्या में लोग वहाँ एकत्र हुए हैं। मंच की तरह किसी ऊँची जगह से रिंकी सिर्फ लोगों के काले-काले सिर देख पा रही है। जहाँ तक नजर जाती, काले सिरों का समुद्र नजर आता, तभी अचानक मंच के पीछे कहीं आग लग जाती है। उस आग से डरकर रिंकी भागने लगी। वह जितना भाग रही थी, आग उतना ही उसका पीछा करती जा रही थी। वह और तेजी से भागने लगी। भागते-भागते मंच से कूद पड़ी, फिर लोगों के सरों पर पाँव रखकर दौड़ने लगी। वह समझ नहीं पा रही थी

कि किस दिशा में भाग रही है। सिर्फ उन असंख्य सिरों पर पैर रखकर भागते रहना ही उसकी नियति बन गई थी।

तभी रिंकी बोली, ''मुझे अपने इस सपने का अर्थ समझ में आ गया है।''

''कैसे···क्या मतलब है तुम्हारे हिसाब से?''

''मैंने तुम्हें बताया था न कि पब्लिक स्टेज में मेरे जाने की बात चल रही है।''

''विदेशों में तो स्टेज की हीरोइनों को कुछ ज्यादा ही सम्मान की नजर से देखा जाता है, लेकिन हम लोगों के यहाँ मामला बिल्कुल उल्टा ही है, स्वर, तुम अपनी बात कहो।''

''ग्रुप थियेटर तो छोड़ो, कभी मुहल्ले के थियेटर में भी काम करने की मेरी हिम्मत नहीं हुई। बाप रे! आँखों के सामने ढेरों काले सिर देखकर ही मेरे पाँव काँप उठते थे। मुझे तो लगता है, मेरे इस सपने के पीछे कहीं-न-कहीं यह डर जरूर काम कर रहा है।''

शुभव्रत कुछ बोलने जा रहा था कि तभी फोन की घंटी बज उठी। रिंकी ने जाकर क्रेडिल से रिसीवर उठाया और फिर शुभव्रत को इशारे से बताया कि कोई उससे बात करना चाहता है।

''मेरा फोन है?'' धीमी आवाज में उसने रिंकी से पूछा और कुछ टूटने की आवाज के साथ सेंटर टेबल पर गिलास रखा। यहाँ कौन उसे फोन कर रहा है? ऐसा कौन है, जिसे मालूम है कि इस वक्त वह रिंकी के इस फ्लैट में हो सकता है। निश्चित रूप से इंदिरा नहीं हो सकती। इंदिरा सोम सवेरे ही पुत्र को लेकर कल्याणी चली गई है। उनके जाने के लिए गाड़ी भी देनी पड़ी थी। नई गाड़ी और नया ड्राइवर। शुभव्रत ने पहले उन लोगों को एक्सप्रेस बस से चले जाने को कहा था। बारासात से कृष्णानगर होते हुए पहुँचने में भला कितना समय लगेगा? सुनते ही इंदिरा बिगड़ गई थी। उसका तर्क था कि रिश्तेदारी में शादी का कार्यक्रम है, वहाँ अगर गाड़ी में नहीं जाया गया तो फिर गाड़ी खरीदने का क्या लाभ? निश्चित रूप से इंदिरा ने कल्याणी से फोन नहीं किया होगा।

रिसीवर कान से लगाते ही वह क्रोध से फट पड़ा, ''व्हाट नॉनसेंस! हू द हेल टोल्ड यू आई एम हेयर?'' तारापद रक्षित की आवाज सुनते ही शुभव्रत बिल्कुल आपे से बाहर हो गया। तारापद रक्षित शुभव्रत के यूनिट का ही लड़का है। पेशे से असिस्टेंट कैमरामैन। कभी सबर्ब के जिलों में ग्रुप थियेटर में काम करता था। स्कूल की उच्च कक्षाओं में आते ही वह पार्टी की छत्रच्छाया में आ गया। बाद में पार्टी का कैडर बन गया। ज्यादातर वक्त पार्टी की कल्चरल विंग में ही व्यस्त रहा। जिन दिनों पार्टी का चरित्र काफी उग्र था, शुभव्रत से तारापद के बड़े भाई की सलाम-दुआ थी, किसी बलवे में गोली लगने से उनकी मृत्यु हो गई थी। उसी परिचय का हवाला देकर तारापद शुभव्रत के पास काम के लिए आया था। देखने में आज्ञाकारी और मेहनती लगा था, इसलिए शुभव्रत ने उसे अपनी यूनिट में रख लिया। आगे चलकर गिल्ड का सदस्य भी बना दिया। वही तारापद इतना गैर-जिम्मेदार होने लगा कि डायरेक्टर से बात करने के लिए सीधे-सीधे हिरोइन के घर फोन कर रहा है। ऐसे लोगों में साधारण एटिकेट नाम की भी चीज नहीं होती है। शुभव्रत गुस्से से उसके ऊपर चीख पड़ा, किंतु उसने शांत आवाज में कहा, ''दादा, असल में दो-तीन जगह फोन करने पर भी आप नहीं मिले तो मैंने सोचा, यहाँ फोन करके देख लूँ। मुझे इस वक्त पैसे की बहुत जरूरत है दादा, अभी अगर पैसे नहीं मिले तो मैं बहुत मुसीबत में पड़ जाऊँगा।''

''लेकिन तारापद, मैंने तो तुमसे पहले भी कहा है कि इस वक्त मेरे हाथ बिल्कुल खाली हैं, अभी तुम्हें थोड़ा इंतजार करना पड़ेगा।''

''मैं जानता हूँ, दादा, लेकिन मेरा तो सर्वनाश हो जाएगा। मुझ पर दया कीजिए, दादा। आपके पास न हों तो किसी से लेकर ही दे दीजिए।''

''इससे अच्छा यह होगा कि तुम ही किसी से लो, किसी तरह काम चलाओ। अगले महीने की शुरुआत में ही तुम्हें तुम्हारा पैसा मिल जाएगा।''

''मुझे भला कौन देगा? किसी पैसेवाले के साथ मेरा कोई उठना-बैठना तो है नहीं और फिर मेरे जैसों को वे लोग क्यों पैसा देने लगे? आप खुद मुझे नहीं दे पा रहे हैं तो एक अपरिचित आदमी किस आधार पर देगा?''

तारापद रक्षित की इस बात से शुभव्रत का पूरा शरीर क्रोध से जलने लगा, ''तारापद, जरा सोच-समझकर बात करो। तुम्हें तो मालूम ही है कि इस वक्त मैं एक बड़ी फिल्म बनाने की तैयारी कर रहा हूँ। स्क्रिप्ट पर डिस्कशन चल रहा है। मैं इस मामले में बहुत सीरियस हूँ और तुम अभी मुझे डिस्टर्ब कर रहे हो।''

''इस मुसीबत की घड़ी में मुझे अगर आप जैसा फिल्म मेकर ही···''

''तारापद, ज्यादा फालतू बातें मत करो। तुम कहाँ से फोन कर रहे हो?''

''आपके फ्लैट से ही कर रहा हूँ। आपका यह सर्वेंट भी तो मुझे पहचानता नहीं है, फोन करने नहीं दे रहा था, बड़ी मुश्किल से···''

''इस तरह फिर कभी फोन मत करना,'' कहकर शुभव्रत ने फोन काट दिया। गुस्से से उसका चेहरा लाल हो रहा था। रिसीवर को क्रेडिल पर रखकर उसने रिंकी को देखा। रिंकी भी उसकी ओर देख रही थी। रुमाल निकालकर माथे पर छलक आए पसीने की बूँदों को पोंछते हुए शुभव्रत ने कहा, ''ऐसे लोगों के रहते कोई भी सीरियस काम करना बहुत मुश्किल है। तारापद आजकल कुछ ज्यादा ही परेशान करने लगा है।''

''पैसे माँग रहा है?''

''हाँ, वही जो टी.वी. सीरियल की एक कहानी पर काम किया था, उसका पैसा अभी तक उसे नहीं मिला, वही माँग रहा था। इन लोगों को जब देखो, तब कोई-न-कोई समस्या घेरे रहती है।''

''इस बार कौन सी समस्या बता रहा था?''

''कह रहा था, बारासात के अस्पताल में उसकी बहन भरती है। ऑपरेशन होना है। खून की भी जरूरत पड़ेगी, ब्लड बैंक जाना है, वगैरह-वगैरह।''

फिर फोन की घंटी बज उठी। इस बार भी रिंकी ने लपककर रिसीवर उठाया। दूसरी ओर से आवाज सुनने के बाद माउथपीस पर हाथ रखकर रिंकी ने धीरे से कहा, ''फिर वही···''

''तारापद?''

''हाँ, आवाज तो वही लग रही है।''

शुभव्रत ने रिसीवर उससे लिया, कान से लगाया और फिर तेजी से उसे क्रेडिल पर रख दिया।

तभी रिंकी ने उससे पूछा, ''बारासात के अस्पताल में उसकी बहन क्यों? क्या तारापद वहीं रहता है?''

''हाँ, बामनगाछी और दत्तपुकुर के लगभग बीच में ही उसका घर है।''

अचानक तीसरी बार फिर से घंटी बजने लगी। इस बार शभव्रत ने रिसीवर को क्रेडिल से हटाकर कुछ देर सुना, फिर रख दिया।

रिंकी मुसकराते हुए बोली, ''लग रहा है, रक्षित यादा गुस्सा दिला दिया है। तुम्हें फोन पर गाली तो नहं

''नहीं, नसीहत दे रहा था। कह रहा था कि एक व से कुछ ज्यादा एक्सपेक्ट किया ही जाता है। वह मुझसे लगाए हुए था।''

''कैसी उम्मीद? शूटिंग बंद करके लोगों का रहना?''

''हाँ, ऐसा ही कुछ समझ लो। तुम तो जानती जितना पैसा है, उससे नेक्स्ट लॉट का पैच वर्क ही हो सकता है। तारापद चाहता है कि मैं इसमें से ही उस

''ऐसा करने से तो तुम्हें अपना नेक्स्ट शिड्यूल कासल करना पड़ेगा। इस तरह तो तारापद को भी नुकसान होगा यह उसकी समझ में नहीं आता।''

''सब समझ में आता है, लेकिन कुछ ज्यादा ही समझता है। मैंने 'धर्मपुरुष' में दिखाना चाहा कि धार्मिक बाबाओं ने तो ऐसा माहौल बना दिया है कि देश कभी शनिपूजा, ताबीज और रंग-बिरंगे पत्थरों से बाहर शायद ही निकल पाए। अगर संभव होता तो मैं छुटभैए नेताओं की बेवकूफियों पर भी एक फिल्म बनाता, लेकिन इस तरह की फिल्म बनाने से मेरा बेस खत्म हो जाएगा।''

''बेस खत्म नहीं होगा, बल्कि तुम्हारी लॉबी बदल जाएगी और एक बार अगर नाम हो जाए तो फिर 'लॉबी' बदलना यहाँ कतई गलत नहीं समझा जाता है।''

शुभव्रत ने उसकी बात का जवाब दिए बिना व्हिस्की से भरे गिलास को फिर मुँह से लगाया और कहा, ''तारापद ने तो आज सारा मूड ही खराब कर दिया। रिंकी, तुम्हारे नौकर को जरा बाहर भेजना है। बहुत भूख लग रही है। चौराहे के चाइनीज रेस्टोरेंट से कुछ खाने के लिए मँगवाया जाए।''

''आजकल मैं देख रही हूँ, तुम्हें भूख कुछ ज्यादा ही लग रही है। कहीं यह भूख पर फिल्म बनाने का रिएक्शन तो नहीं है?''

शुभव्रत की अगली फिल्म 'धर्मपुरुष' की नायिका रिंकी ही है। इस तरह का कैरेक्टर रिंकी ने पहले कभी प्ले नहीं किया। उसकी कोमल, किंतु उत्तेजक देहयष्टि और अभिजात चेहरे से 'धर्मपुरुष' के भूख से पीड़ित चरित्र को निकाल पाना आसान काम नहीं है, पर शुभव्रत जानता है कि रिंकी से यह संभव है। वह अपनी अभिनय प्रतिभा के बल पर देह की मांसलता और चमड़ी की मक्खनी आकर्षण को गौण बना देगी।

पर्स से दो पचास के नोट निकालकर शुभव्रत ने रिंकी के नौकर को दिए और बताया कि उसे क्या-क्या लाना है। फिर थोड़ी देर के लिए बाथरूम गया। बाहर आने के पहले मुँह पर पानी के छींटे मारकर रुमाल से पोंछा और आईने में थोड़ी देर खुद को देखता रहा। आजकल वह पहले जैसा दुबला-पतला नहीं लगता है, फिर भी अभी तक शरीर कट जमा नहीं हुआ है, जबकि सिर्फ बियर पीते हुए देरा कितनी मोटी हो गई। उसका बेटा भी गोलमटोल

नई फिल्म में कई सौ दुधमुँहे बच्चों की जरूरत पड़ेगी, पोषण के शिकार दिखते हों। पसलियाँ बाहर निकली च्चों के शॉट की कल्पना करते उसका ध्यान रिंकी के कोमलता पर चला गया। शॉट में भूख से बिलबिलाते पंक्ति में पड़े होंगे। ट्रॉलीशॉट में उस दृश्य को शूट रे की गति के साथ अपनी गति को मेंटेन करते हुए ों में ढकी रिंकी गिरते-पड़ते आगे बढ़ेगी।

कर के बाहर जाने के दस मिनट बाद डोरबेल बज ी नौकर वापस क्यों आ गया?' रिंकी ने यह सोचते हुए दरवाजा खोला तो सामने तारापद रक्षित को देखकर सन्न रह गई, लेकिन प्रत्यक्ष रूप में उसकी प्रतिक्रिया कुछ ऐसी थी, मानो वह रक्षित को लॉन्ग शॉट में देख रही है। यही तो खूबी है रिंकी की। पल भर में चेहरे के भावों को बदलने में महारत हासिल है उसे। अपनी पसंद और स्तर के अनुरूप वह करीबी व्यक्ति को दूर का और दूर के किसी इनसान को बहुत करीबी होने का एहसास अपने चेहरे के भावों के आधार पर करा सकती है।

अचानक तारापद को देखकर शुभव्रत खुद को संयत नहीं कर सका। उसकी गले की नसें तन गईं, जब वह 'स्क्राउण्ड्रल' कहकर जोर से चीखा। 'गेट आउट आई से' कहकर दुबारा चीखा और धड़ाम से उसके मुँह पर दरवाजा बंद कर दिया। इसके बाद भी डोर बेल लगातार बजता रहा। क्रोध में जैसे शुभव्रत के चेहरे पर खून उतर आया। उसने झटके से दरवाजा खोला और तारापद पर झपटने को हुआ तो वह चीखते हुए बोला, ''दादा, मैं पैसे के लिए नहीं आया हूँ। आपकी गाड़ी का एक्सिडेंट हुआ है। भाभीजी और आपका बेटा दोनों इस वक्त बारासात के अस्पताल में हैं।''

''क्या···यह कैसे हुआ? कहाँ से खबर मिली तुम्हें?'' अचानक शुभव्रत का चेहरा जैसे एकदम पीला पड़ गया।

रिंकी ने भी पूछा, ''जरा खुलकर बताओ न?''

तारापद उस वक्त हाँफ रहा था। इतनी दूर दौड़ते-भागते खबर देने आया था, बस लिफ्ट में ही जो कुछ सेकेंड के लिए खड़ा रहा, धीरे-धीरे बोला, ''शुभ दा ने जैसे ही फोन की लाइन काट दी, बारासात से भाभीजी के फुफेरे भाई प्रशांत बाबू ने फोन किया था। शुभ दा को तुरंत बुलाया था। मैं तब से लगातार इन्हें फोन मिलाता रहा, लेकिन लाइन नहीं मिली। मजबूरन भागते-दौड़ते आना पड़ा।''

शुभव्रत ने रिंकी की ओर असहाय नेत्रों से देखा और फिर पर्स निकालकर उससे बोला, ''मेरे पास तो इस वक्त बहुत ज्यादा पैसे नहीं हैं, तुम्हारे पास कुछ हैं क्या? कल बैंक खुलते ही तुम्हें वहाँ से निकालकर दे दूँगा।''

''जितना होगा, उतना दे रही हूँ। मैं भी तो घर पर ज्यादा पैसा नहीं रखती हूँ,'' कहते हुए रिंकी भीतर चली गई।

''तारापद, तुम थोड़ी देर बैठो, मैं आता हूँ।'' कहकर शुभव्रत तेजी से भीतर रिंकी के पास चला गया।

आलमारी के भीतर जितना मिला, रिंकी ने शुभव्रत को देकर कहा, ''और कुछ पैसे साथ में ले जाते तो अच्छा होता। किसी प्रोड्यूसर से क्या कुछ इंतजाम हो सकता है?''

''ट्राई कर सकता हूँ, लेकिन इसमें काफी देर हो जाएगी।'' कहते हुए शुभव्रत रिंकी के साथ बाहर निकल आया।

''दादा!'' तारापद ने उससे कहा, ''मेरी बहन का ऑपरेशन तो परसों है। उसके ऑपरेशन के लिए कुछ पैसे इकट्ठे किए थे, वे अभी मेरे पास हैं। आप रख लीजिए, कल मुझे दे दीजिएगा। जाते वक्त अपने यूनिट के कुछ लोगों को साथ ले लिया जाएगा। अब और देर मत कीजिए।''

तारापद को शुभव्रत ने कुछ कहना चाहा, लेकिन जैसे गले में आवाज फँस गई और उस वक्त लॉन्ग शॉट में नहीं, रिंकी और तारापद शुभव्रत को एक बड़े क्लोजअप के फ्रीज शॉट में दिख रहे थे।

एफ/१७, शांति नगर (कैंट)
कानपुर-२०८००४
दूरभाष : ०९६५१९२४१००

नकली मोती

लघुकथा

● रचना गौड़ 'भारती'

कल सुबह 'अपना घर' संस्था की कवरेज पर जाना था। निर्मल घड़ी में अलार्म भरकर सो गया। नियत समय दरवाजे पर ओ.बी. वैन आ गई और अपनी दूरदर्शन की टीम के साथ निर्मल रवाना हो गया। 'अपना घर' नामक वृद्धाश्रम पर यह उसकी पहली कवरेज थी। एहतियातन अपनी असिस्टेंट शलभा को पहले ही काफी होमवर्क करवा चुका था। वे जैसे ही संयोजक के कक्ष से बाहर निकले, अहाते के कोने में एक चिर-परिचित चेहरा नजर आया। उन्होंने भी अपनी पहचान छुपाने का काफी प्रयास किया। रूखे बाल, झुर्रियोंदार त्वचा लिये ये वृद्धा हो, न हो मिसेज कासठ थीं। निर्मल अपने को रोक न सका और सीधे उनके समीप पहुँच गया, ''नमस्कार आंटी! अरे आप, यहाँ कैसे?''

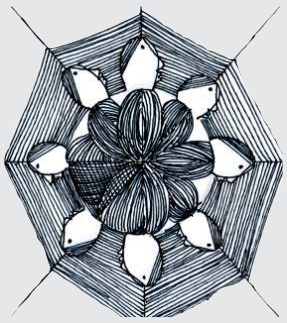

कुछ पल अचकचाकर वे रो पड़ीं, ''निर्मल, तुम यहाँ? बेटा, क्या बताऊँ? मेरा बेटा तो विदेश गया हुआ है तीन साल के प्रोबेशन पर। बहू और बच्चे यहीं हैं। घर में मन नहीं लगता था, सो यहाँ चली आई।''

निर्मल ने असिस्टेंट शलभा को आदेश दिया, ''आप इनके बाल बना दें। सिर में तेल वगैरह डालकर इनकी जो मदद कर सकती हैं, करें।''

अन्नदाता

अजीत बाबू अपनी धर्मपत्नी के साथ सरकारी दौरे पर थे। जहाँ पृष्ठभूमि, तकदीर और रुतबे का संगम हो, वहाँ पाँचों उँगलियाँ घी में और सिर कड़ाही में होता है। साहब पर अफसरी का भूत कम, उनके घरवालों, खासतौर पर उनकी पत्नी पर अधिक था। दौरे पर—''कैसे हो सुगनलाल?''

''हुकुम! दया है आपकी।''

''ऐसे नहीं, ढोक लगा मूरख। बड़े साहब हैं।'' किसी ने कहा। मुड़कर देखा तो इशारा समझते देर न लगी कि यह इनकी मेमसाहब हैं।

थोड़ी दूर पर, ''और भई, रतन?''

''सरकार!'' एक करबद्ध शून्यता पसर गई।

''गोड़े लग, सरकार···सरकार क्या? अन्नदाता हैं तेरे।''

उसने एक बार ऊपर आकाश में देखा, जहाँ कुछ चील-कौए शोर मचाए हुए थे। इस तरह अजीत बाबू का दबदबा दरकार था। लोग अजीत बाबू के पास बाद में, उनकी सत्ताधारी पत्नी के पास पहले जाते। देवी खुश हुईं तो टूटे कपों में पार्टियों से बचा बोतलों में बंद चरणामृत मिल जाता, वरना घुड़की के साथ ऊँट पलटी मारकर बैठ जाता।

३०४, रिद्धि-सिद्धि नगर प्रथम,
बूँदी रोड, कोटा (राजस्थान)
दूरभाष : ०९४२४७४६६६८

अपना-पराया

● रंजना किशोर

जरा सी आहट होने पर चौंक जाती हूँ। लगता है, जैसे कोई आया है। परंतु अब कौन आएगा इस सूने प्रांगण में। अपना कहने को एक बेटा है, वह भी ससुराल में सेटल हो गया। उसकी पत्नी अपने माँ-पापा की इकलौती संतान है। भला माँ-पापा उसका बिछोह कैसे सहन करते! अपनों से जब कोई आस नहीं तो फिर कोई पराया क्या कुशल-क्षेम पूछने आएगा।

पति का साथ छूटने के बाद मेरी लेखनी मेरे साथ थी। आँखों में मोतियाबिंद की वजह से उसपर भी विराम लग गया। बालों में झलकती बर्फ सी सफेदी, झुरियों से सिकुड़ा निस्तेज चेहरा, बिना दाँतों का पोपला मुँह, अपना ही बोझ उठाने में असमर्थ हुए कंधों के साथ जब दर्पण के सामने खड़ी होती हूँ तो लगता है कि दर्पण में दरारें पड़ जाएँगी।

अब तो दिन-तारीख भी याद नहीं रहते। सिर्फ दिन-रात होने का एहसास होता है। आज शाम बाहर निकली तो झिलमिलाती रोशनी, फुलझरियों-पटाखों के शोर से पता चला कि दीवाली का त्योहार है। वर्षों इस त्योहार को पूरे उत्साह के साथ मनाया है। आज दीया भी कैसे नहीं जलाऊँगी, सोचकर बाजार की तरफ बढ़ गई। लौटकर आई तो मेरा नौकर रामू एक कार्ड मेरी तरफ बढ़ाते हुए बोला, ''कोई साहब गाड़ी से आपसे मिलने आए थे।'' यह लो, जब मैं सारा-सारा दिन किसी के आने में गुजार देती हूँ तो कोई नहीं आता। जरा सा बाजार क्या गई, कोई लौट भी गया। ''कौन था, तुमने उसे बिठाया क्यों नहीं?'' ''वे जरा जल्दी में थे, कल आने की बात कहकर गए हैं। आपके लिए मिठाई का डिब्बा और कार्ड छोड़कर गए हैं।'' कार्ड लेकर नाम पढ़ने की कोशिश करने लगी। बैराग राम, आई.ए.एस. २००४ बैच। कौन हो सकता है यह? दिमाग पर कितना भी जोर डालने की कोशिश की, पर कुछ भी याद नहीं आया। क्या मैं इसे जानती हूँ? ओह! कहीं यह अपना भीखू तो नहीं। क्या भीखू आई.ए.एस. अधिकारी बन सकता है? माना वह पढ़ाई में तेज था, उसमें लगन भी थी, पर उसके घर का माहौल उसे कैसे इतने बड़े ओहदे पर पहुँचा सकता है। भीखू का ख्याल आते ही मन पंद्रह साल पीछे लौट गया।

मेरे पति सरकारी ऑफिसर थे। बंगलुरु जैसा शहर, बड़ा सा सरकारी क्वार्टर, आगे लॉन, पीछे किचन, गार्डन, साथ ही सलाम बजाने के लिए ढेर सारे तबके के सरकारी कर्मचारी मौजूद थे। मेरे पास सुख-सुविधा के सारे साधन मौजूद थे। मुझे कोई परेशानी थी तो वह यहाँ के मेहतर से, जो मुँह अँधेरे ही नाली, आँगन की सफाई के लिए पीछे का दरवाजा खटखटाते। इतनी सुबह तो कामवाली भी नहीं आती। उनके लिए मुझे ही दरवाजा खोलना पड़ता। एक तो सुबह उठना पड़ता, जो मेरी आदत में शामिल न था। दूसरा, सुबह-सुबह झाड़ू-बाल्टी के साथ उसे देखकर मन कसैला हो जाता।

नवोदित रचनाकार। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में अब तक दस कहानियाँ तथा कुछ कविताएँ प्रकाशित। कुछ काल तक विद्यालय में अध्यापन।

ऐसी एक सुबह दरवाजा खटखटाने पर मेहतर श्याम की जगह करीबन पंद्रह-सोलह साल का लंबा सा लड़का खड़ा था। मुझे अपनी ओर आश्चर्य से ताकता पाकर कहना शुरू किया, 'आज मेरे पिताजी नहीं आ पाएँगे, उनकी जगह मैं सफाई करने आया हूँ।'

'क्यों, तुम्हारे पिता को क्या हुआ?' थोड़ा झिझकते हुए उसने बताया, 'कल उन्होंने ज्यादा शराब पी ली थी, इसीलिए उनकी नींद नहीं खुली।' बाद में पता चला कि यह हमेशा का नियम है, श्याम नशे की बुरी आदत की वजह से कभी भी अपना काम समय पर नहीं कर पाता। उसकी नौकरी बचाने के लिए उसका बेटा ही सुबह-सुबह पूरे मोहल्ले की सफाई करता। पता नहीं क्यों, उस लड़के से मोह सा हो आया। उसे हमेशा खाने-पीने का बचा सामान देने लगी, जिसे वह सहर्ष स्वीकार कर लेता। एक दिन मैंने उससे कहा, 'तुम मेरे बेटे की उम्र के हो, मुझे मेमसाहब न बुलाकर आंटी कहा करो।' 'कैन आई कॉल यू, माँजी?' क्या तुम्हें अंग्रेजी आती है? मेरा मुँह खुला-का-खुला रह गया। 'बिल्कुल माँजी, मैं बारहवीं क्लास में पढ़ता हूँ, हमेशा फर्स्ट आता हूँ।' मेरे आश्चर्य का ठिकाना न था। खुशी के साथ थोड़ी ईर्ष्या भी पनपने लगी। उसी के बराबर का मेरा बेटा सुकांत किसी तरह घसीटकर हर साल पास होता। अनपढ़-गँवार माँ-बाप, जो हमेशा ताड़ी-शराब के नशे में धुत्त रहते हैं, जिनके लिए पास-फेल भी मायने नहीं रखता, उनका बेटा सबके घर की गंदगी बुहारकर, जूठन उठाकर भी फर्स्ट आ रहा था। वहीं मेरे पति इतने बड़े अधिकारी, साथ ही मैं खुद एम.ए. गोल्ड मेडलिस्ट बचपन से लेकर आज तक हर कक्षा में प्रथम आनेवाली का बेटा पढ़ाई में फिसड्डी हो। लगा, गले में जैसे कुछ अटक सा गया है।

हो न हो, हम लोगों के लाड़-प्यार का ही परिणाम है कि वह पढ़ाई में इस कदर पिछड़ता जा रहा है। इस बार रिजल्ट खराब हुआ तो कसकर पिटाई करूँगी।

आज फिर तिमाही परीक्षा का रिजल्ट लेकर मुँह लटकाए है। सुबह भीखू का रिजल्ट देखकर मन के किसी कोने में उसके बराबरी में लाने की इच्छा मचल उठी। आव देखा, न ताव, तड़ातड़ तीन-चार थप्पड़ जड़

दिए। आवाज सुनकर सासू माँ दहाड़ती हुई कमरे से निकलीं, 'बहू तुमने इसे थप्पड़ क्यों मारा? भूल गई वे दिन, जब इसे पाने के लिए पूरे देश के मंदिर, मसजिद और गिरजाघरों में जाकर माथा पटक रही थीं। तुम्हारे पाँव के फफोले क्या सूख गए हैं कि तुम्हें वह दिन याद नहीं रहा। वह जी रहा है हमारे लिए, यही काफी है। इसे पढ़ने-लिखने की जरूरत नहीं है, इसके दादाजी की पुश्तैनी संपत्ति ही जिंदगी गुजारने के लिए काफी है।'

कितनी ही दुआओं और मन्नतों से शादी के दस साल बाद हमारे नीड़ में सुकांत की किलकारी गूँजी थी। ढेर सारी दुआओं के असर के कारण ही सुकांत दिन-प्रतिदिन लापरवाह और बदतमीज होता जा रहा था। सुकांत का रात-रात भर गायब रहना हमसे छिपा नहीं था। सुकांत पर कड़ाई करती तो लगता, भगवान् से न्याय नहीं कर पा रही हूँ। मैंने भगवान् से माँगा था कि मुझे एक बच्चा चाहिए, जिसे मैं जिंदगी भर फूल की तरह सँभालकर रखूँगी। अगर सुकांत की सारी गलतियाँ माफ कर लाड़ उड़ेलती तो लगता, अपने आप से न्याय नहीं कर पा रही हूँ। कभी अपने आपसे किया वायदा टूटता नजर आता। एक ही बच्चा पैदा करूँगी, उसे आदर्श नागरिक बानाऊँगी। बीतते वक्त के साथ मैं सुकांत की पढ़ाई की तरफ से उदासीन होकर भीखू की पढ़ाई में दिलचस्पी लेने लगी। उसे सड़क की लाइट में पढ़ते देखकर अपने आँगन में पढ़ाई करने का आमंत्रण दे डाला। मन के किसी कोने में उम्मीद थी कि अपने हिस्से का प्यार दूसरे बच्चो को मिलता देखकर सुकांत कहीं सही रास्ते पर आ जाए। बारहवीं की फाइनल परीक्षा खत्म हो चुकी थी। भीखू का आना भी कम हो गया। एक दिन सुबह-सुबह मिठाई का डिब्बा लेकर भीखू खड़ा था। 'किस बात की मिठाई खिला रहे हो, अभी तो तुम्हारा रिजल्ट नहीं आया?'

'नहीं माँजी, हमारे यहाँ दो-दो बच्चे हुए हैं। दो बच्चे यानी की तुम्हारे भाई-बहन? जी नहीं माँजी, एक मेरी माँ और दूसरा मेरी पत्नी को। 'तुम्हारी शादी कब हुई?' घोर आश्चर्य से भर उठी।

'वो तो बचपन में हो गई थी, मुझे भी ठीक से याद नहीं।' बच्चे के लिए ढेर सारे कपड़े तैयार करके उसके दरवाजे पर पहुँच गई। बच्चे से ज्यादा उसकी पत्नी से मिलने की उत्सुकता थी। मुझे लगा, शायद पत्नी के सहयोग से ही वह इतनी पढ़ाई कर पा रहा हो। दरवाजे पर पहुँचते ही मेरे पाँव ठिठक गए। अंदर उसकी पत्नी नाशपीटी, छिनाल, रंडी जैसे विभूषणों से अपनी सास को विभूषित कर रही थी। मैं उलटे पाँव वापस लौट आई।

कभी बाप को शराब के अड्डे से खींचकर लाना, कभी माँ को जचगी के लिए ले जाना तो कभी अपने बच्चे, भाई-बहनों को डॉक्टर के पास लेकर दौड़ते हुए भी उसकी पढ़ाई अनवरत जारी थी। पढ़ाई के प्रति उसके रुझान को देखकर रुपए-पैसे से लेकर किताब-कॉपी, कपड़ा-लत्ता, हर प्रकार से उसकी मदद करने लगी। मेरी रचना किसी पत्रिका में छपती तो सबसे पहले वही लेकर आता। 'माँजी, आप बहुत अच्छा लिखती हैं। मुहल्ले में सभी को बताता हूँ कि माँजी की कहानी छपी है। मैं भी थोड़ा-बहुत लिख लेता हूँ।' 'अच्छा, किसी दिन लाकर दिखाना। अच्छी लगी तो मैं छपवा दूँगी।' उसकी रचना पढ़कर यकीन नहीं हो रहा था कि इतने ओछे परिवार का लड़का, वह भी इतनी कम उम्र में इतनी संवेदनशीलता कहाँ से ला पाता है? कलेजे में हूक सी उठती। इसे तो मेरी कोख से पैदा होना चाहिए था। गलत जगह पैदा हो गया।

ग्रैजुएशन में पूरी यूनिवर्सिटी में प्रथम आया, वहीं सुकांत थर्ड डिवीजन से पास हुआ। सुकांत की नौकरी में उसके पिता की पैरवी काम आई। वहीं भीखू ट्यूशन करके कंपटीशन की तैयारी कर रहा था। सुकांत के नौकरी ज्वॉइन करते ही रिश्ते आने शुरू हो गए। हम लोगों ने बंगलुरु के जाने-माने व्यापारी मि. वर्मा की इकलौती बेटी से सुकांत का ब्याह कर दिया। उस वक्त कहाँ पता था कि उन्हें अपने बेटी के लिए वर से ज्यादा व्यापार चलाने के लिए उत्तराधिकारी की जरूरत थी। सुकांत के ससुराल में जाकर रहते ही मेरे लिए उस शहर में रहना मुश्किल हो गया। सोसाइटी में मेरा निकलना बंद हो गया। जितने मुँह उतनी बातें। तंग आकर मेरे पति ने अपना तबादला दूसरे शहर में करवा लिया। वहाँ से आते वक्त अपने लिए जो आँसू, प्यार-स्नेह मैंने भीखू की आँखों में देखा था, वही अपने बेटे की आँखों में देखना चाहती थी। भीखू को याद करते-करते कब आँख लग गई, पता नहीं चला। सुबह रामू के जगाने पर आँख खुली। ''माँजी, कल वाले साहब आए हैं।'' आँख मलते हुए ड्राइंगरूम में पहुँची। मोतियाबिंद की वजह से कहीं मेरी आँखें धोखा तो नहीं खा रहीं। यह सुंदर, सजीला सा नौजवान अपना भीखू है। चरणस्पर्श करके एक ओर खड़ा हो गया। ''क्या तुम भीखू हो?'' मैं अति उत्साह में भरकर उसे छू-छूकर देख रही थी। ''माँजी, सब आपकी ही प्रेरणा का फल है।''

''मेरी प्रेरणा कैसी बैटा, अपनी तपस्या कहो, यह सब तो तेरी साधना का फल है।''

माँ-बाप के बारे में पूछने पर बताया कि उनकी मृत्यु बहुत पहले ही जहरीली शराब पीने से हो गई। ''और तुम्हारी पत्नी बच्चे?'' ''मेरी पत्नी में धैर्य की कमी थी, मेरी जिंदगी में पढ़ाई के महत्त्व को समझ नहीं सकी। किसी अन्य पुरुष के साथ भाग गई। दोनों बच्चों को हॉस्टल में डाल दिया है। वर्षों आपको तलाशा, आपके चरण-स्पर्श कर कृतार्थ होना चाहता था। आप मुझे सेवा करने का मौका दीजिए। मैं आपको लेने आया हूँ।'' अपनी आँखों के कोर से झिलमिलाते आँसुओं को पोंछते हुए सोच रही थी कि इसने अपनी जिंदगी की सारी गंदगी बुहार ली।

सा.अ.

ओ.सी.एस. अपार्टमेंट, फ्लैट नं. ३७ बी
मयूर विहार फेस-१ विस्तार
दिल्ली-११००९१
दूरभाष : ९६५४१३७०८८

भैयाजी

● शंकरलाल माहेश्वरी

भैयाजी का नाम है भगवान् स्वरूप, किंतु लोग इन्हें भाईचारे के कारण 'भैयाजी' संबोधित करते हैं। शादी-विवाह, मौत-मरकत, जाति-बिरादरी, जान-बरात, स्कूल-अस्पताल, थाना-चुंगीनाका कहीं पर भी आपके दर्शन हो सकते हैं। कभी वे किसी से बतियाते, ताल ठोंकते, हाथ उठाते, नारा लगाते, तख्ती पकड़े, माइक थामे, रैली में, धरने पर, जुलूस में और आम सभा के मंच पर भी दिखाई दे सकते हैं। सिर पर कभी लाल तो कभी सफेद टोपी, कभी गले में भगवा रंग का रूमाल डाले तो कभी शुद्ध खादी के धवल परिधान में भाषण देते हुए इनके दर्शन लाभ कर धन्य हो सकते हैं।

यदि आपको स्कूल की फीस माफ करानी हो, जमीन का नामांतरण कराना हो, मकान की रजिस्ट्री करानी हो, बैंक से ऋण लेना हो, भामाशाही उपचार कराना हो तो पहुँच जाइए भैयाजी के पास; किंतु ध्यान रखना, उनसे अकेले मिलोगे तभी काम होगा। काम कैसा भी हो, आपको निराश नहीं लौटना पड़ेगा। उद्घाटन, शिलान्यास, भूमि-पूजन, रैली, धरना, अनशन, प्रदर्शन इन सबके लिए भैयाजी की सेवाएँ सराहनीय हैं। वह भी निःशुल्क और समयबद्ध। सरपंच से लेकर विधायक और अब दिल्ली दरबार को कृतार्थ कर रहे हैं भैयाजी।

आजकल उनके ही गाँव के पासवाले शहर में उनकी चर्चा हर सुनागरिक की जबान पर है। मैं भी हनुमान बगीचेवाले चौराहे पर गया था। वहाँ आँगनबाड़ी वाली शांताजी मिल गईं। वे चीख रही थीं। नेता बनकर फिरनेवाला ढोंगी समाजसेवक भैयाजी अबकी बार जो मेरे केंद्र पर आया तो उसे धक्के देकर बाहर कर दूँगी। तुमने सुना नहीं, नर्स बाई तो उस कलमुँहे का मुँह भी नहीं देखना चाहती। भोला कुम्हार कह रहा था, उन्होंने पैसे भी ले लिये और काम भी नहीं हुआ। थानेदार से तो हर माह बीस हजार की बंदी लेना नहीं चूकता है। खुद नहीं आएगा। इस सेवाकार्य के लिए पोते को नियुक्त कर रखा है। अग्रसेन कॉलेज, खनन विभाग का वह राजीव अभियंता और ठेकेदार हरभजन हर महीने आकर उनकी मोटी जेब कर लौटते हैं। बेचारे सेठ धन्नालाल की उस दिन सबके सामने लू उतार दी। कह रहा था, ''हिसाब-किताब ध्यान से रखना, नहीं तो रेड पड़वा दूँगा।'' बेचारा गिड़गिड़ाकर कहने लगा, ''भैयाजी, अगले महीने से समय पर आपका माल घर पर पहुँच जाएगा, बाबू साहब!'' बड़े स्कूलवाला रामू चपरासी परेशान है इन दिनों। उसे चौबीसों घंटे भैयाजी के घर सेवा देनी पड़ रही है। यह तो हद हो गई श्रीमती भैयाजी अपने कपड़े भी खुद नहीं धोतीं। पर करे तो क्या रामू। परिवार को जो पालना है। नौकरी स्कूल की, चाकरी भैयाजी के घर की। कैसी विडंबना है यह!

भैया भगवान् स्वरूप उर्फ भैयाजी जब भी शहर आते, दो-चार चाटुकार-चमचे साथ आते और पूर्व नियोजित योजनानुसार भैयाजी को वहीं ले जाते, जहाँ काम के बदले भारी-भरकम धनराशि उपलब्ध हो सके। कभी आपने काम के बदले अनाजवाली बात तो सुनी होगी, पर धीरे-धीरे विकास की अनवरत प्रवाहित होनेवाली धारा मायाजाल में फँसती दिखाई देने लगी। भैयाजी की विनम्रता, उदारता, समर्पण, कर्तव्यनिष्ठा, अनवरत सेवाभावना की लोग प्रशंसा करते हैं, सबके सामने; फिर पीछे मुड़कर हँस देते हैं। यदि आप रास्ते में मिल गए तो भैयाजी पूछेंगे, 'कहिए भैया! क्या हालचाल है। घर पर सब ठीक है न। बड़का बेटा क्या कर रहा है और हाँ, सीमा की तो शादी हो गई होगी। बड़ी अच्छी लड़की है वह। कभी कोई काम हो तो उसे कहना, आकर मिल ले। और हाँ, तुम्हारे बड़े लड़के ने बी.एड. कर लिया है न। मास्टरों की सीधी भरती निकली है, उसे लेकर जयपुर आना। मास्टर बना दूँगा छोकरे को। तू भी क्या याद करेगा। जिंदगी बन जाएगी। जब किसी का जीवन बनाना है तो त्याग तो करना ही पड़ता है।'' मैंने हाँ-में-हाँ मिलाते हुए कह दिया, ''हाँ बाबूजी, सही है।'' मैंने भी संक्षिप्त उत्तर से काम चलाया।

अब उन्हें उसी शांताबाई की याद आ गई। कहने लगे, ''आजकल वह शांताबाई नहीं दिखाई दे रही है।''

''अब वह गाँव छोड़कर चली गई, सर। कह रही थी, जब तक यह भैया का भूत यहाँ मँडराता रहेगा, मैं नहीं आनेवाली। मेरी जिंदगी बरबाद कर दी साले ने। अब अपने बड़े बेटे के पास अमृतसर में रह रही है।'' भैयाजी ने मातादीन को अच्छा भला काम दिलाया, हवाला का। अपने दोस्त के यहाँ। पगार भी अच्छी थी, किंतु निकला बड़ा धोखेबाज। छोड़ आया उस धंधे को। लाखों के वारे-न्यारे थे। देशप्रेम की बात करता है। मातृभूमि की सेवा, भारत माँ की आन-बान-शान की रक्षा कहता हुआ अपने भागीदार से लड़ाई करके आ गया। अब दर-दर भीख माँगेगा। करेगा भी क्या? तुम्हारे स्कूल में प्रधानाध्यापकजी बड़े नेक इनसान हैं। मेहनती हैं। विद्यालय के विकास की चिंता है उन्हें। वफादार इतने कि जब से वे आए; दो साल हो गए, मेरी दोनों लड़कियों और राहुल को निःशुल्क पढ़ा रहे हैं। मिलते कहाँ हैं आजकल ऐसे लोग!

गाँववालों को सब्सिडी दिलाने, शौचालयों को मुफ्त बनवाने, वृद्धावस्था पेंशन दिलाने में गहरी भूमिका रही थी आपकी, किंतु लोग भूल जाते हैं किए गए उपकार को, दादा! लोग मुँह पर मीठे हैं, पर पीठ पीछे कह रहे हैं, सब्सिडी, बैंक लोन, वृद्धावस्था पेंशन, नरेगा कार्य सबमें भैयाजी की 'बंधी' बँधी हुई है और बातें करते हैं समाज-सेवा की। दलित और पिछड़ों का उद्धार और गरीबी से नीचे के परिवारों को ऊपर

उठाने की बातें। कब तक यह नौटंकी चलेगी। देखते हैं हम भी। कुछ निजी विद्यालयों में आर.टी.ई. में हुए घोटालों की जाँच करने में भैयाजी को नियुक्त किया गया। बिना विलंब के निरीक्षण करने पहुँच गए। भारी मात्रा में गड़बड़ थी। करोड़ों का घोटाला था, किंतु तीन दिन की जगह सात दिनों में जाँच रिपोर्ट प्रस्तुत की गई तो घोटाले की शिकायत बेबुनियाद निकली। स्कूल के संचालक भैयाजी के लिए बड़े काम के आदमी हैं। चुनाव में रात-दिन पसीना बहानेवाले संचालक महोदय ने विद्यालय की अनुदान राशि भी बढ़वा ली, क्योंकि भैयाजी भी सिद्धांतवादी थे। उन्हें अधिक आभारी बनने का शौक नहीं था। संचालकजी उपकृत हुए। कहने लगे, ''इस बार आपके विद्यालय में आर.टी.ई. में छात्र-संख्या बढ़ जाएगी।'' ''हाँ, जरूर बढ़ाओ।'' देश का विकास, तभी होगा जब नीचे का आदमी शिक्षित बनकर ऊँचा उठेगा। भगवान् सब ठीक करेगा। आप निश्चिंत रहे।'' जाते-जाते भैयाजी ने संचालकजी के कंधे पर हाथ रखकर कहा, ''बोलो रावत सा., मैं कब वापस आऊँ? यह फोन पर बता देना। बस इतना ही कहना कि आपकी याद आ रही है, भैयाजी। बस मैं समझ जाऊँगा।''

विद्यालय का वार्षिक उत्सव था। भैयाजी मुख्य अतिथि थे। उद्‍बोधन में कहा, ''मेरे देशवासियो, मैंने हमेशा जनभावना का ध्यान रखा है। लोगों को रास्ता दिखाया। उनकी लंबित समस्याओं का समाधान किया। फिर भी लोग कहते हैं तो कहने दो। कुछ तो लोग कहेंगे, लोगों का काम है कहना।''

भैयाजी की उदारता का क्या कहना, वे तो कहते हैं, यदि आप वृद्धजन हैं, नि:शुल्क रेल या हवाई यात्रा करना चाहते हैं तो कभी भी आकर मेरे फार्म हाउसवाले बँगले पर मिल लें। उनकी चिंता न करें। चालीस तक भी होंगे तो चलेगा। आयु प्रमाण-पत्र कुछ ले-देकर बनवा लेना। बाद में मैं सबकुछ सँभाल लूँगा। पूछो, उस छोटू के बच्चे को मैंने कैसे तीन बार मुफ्त में हवाई यात्राएँ करवाई हैं। मैं तो कहता हूँ, लोग व्यर्थ ही परेशान होते हैं। काम सबके होते हैं। समस्याएँ तो आती-जाती हैं। सबका समाधान है। कहा गया है, 'जीवन में कुछ पाना हो तो खोना भी पड़ता है।'

हमारी सरकार अच्छे दिनों के लिए ढेर सारी योजनाओं से जनता की सहायता कर रही है। व्यापार, उद्योग, बैंक, स्कूल, अस्पताल, पेंशन, कन्या उन्नयन, किसान विकास की कई योजनाएँ हैं, जिनका उपयोग लोगों को करना चाहिए। किंतु लोग समय पर लाभ नहीं उठाना जानते। नोट बंदी के समय रामनाथ आया था, कह रहा था, ''पुराने नोट पड़े रह गए दादा! क्या करें?'' मैंने कहा, ''चिंता मत कर, मैं हूँ न, सब ठीक हो जाएगा। कल आता तो मैंने पुरुषोत्तम पांडे का यही काम करवाया था। साथ-साथ ही हो जाता। पुरुषोत्तम से जरूर मिल लेना।''

जयपुर में भैयाजी का एक होटल है, राजमंदिर। निर्माण उस समय शुरू हुआ, जब देश में मनरेगा शुरू हुआ था। मनरेगा से ही पचास से अधिक कुशल मजदूर और बीस कारीगरों की कठोर साधना से इस भव्य भवन का निर्माण पाँच वर्ष में पूरा हुआ। अब अपने ही गाँव के १४-१५ वर्षीय नौजवान बालक अपना सेवाधर्म निभा रहे हैं, जिनमें २५ बालक हैं और १५ बालिकाएँ। होटल के ऊपरी भाग में आपको राजस्थानी कला व संस्कृति के दर्शन के साथ ही राजस्थानी खान-पान भी मिलेगा। नीचे तलघर है, यानी बेसमेंट। यहाँ मांसाहारी भोजन, बार बालाएँ, नगर वधुएँ, विदेशी शराब और नशीले हेरोइन की समुचित व्यवस्था है। इस कक्ष के दरवाजे पर लिखा होगा, 'वंदे मातरम्'। यही पहचान है नीचेवाले तल की।

भैयाजी को मैंने कहा, ''आपने दल बदलकर अच्छा नहीं किया। लोग आपके पुराने कारनामों को उघाड़ रहे हैं। कहते हैं, किसना गुर्जर को लोन दिलाया तो आधा पैसा ही हाथ आया। बैंक मैनेजर से पूछा तो कहने लगा, 'भैयाजी से जाकर मिल लो।' बीस लाख में से केवल बारह लाख मिले। इतना भी घपला होता है क्या? पर करे तो करे क्या? कौन सुने, किससे कहें, सुने तो समझे नाहिं, कहना, सुनना, समझना सब मन हि के मन माहि।''

एक दिन मास्टर अशोक के तबादले के लिए भैयाजी को मैंने कहा तो वे कहने लगे—''बारह वर्ष हो गए उसे यहाँ, कभी एक बार भी आया क्या मेरे पास। बुलाओ उसे अभी-का-अभी।'' अशोकजी नंगे पाँव दौड़े आए भैयाजी के पास। जैसे सुदामाजी दौड़कर गए थे। मास्टर गिड़गिड़ाया, रोया, दाँतों में उँगली दबाई, पैर पड़ गया। बंद कमरे में लंबी बात हुई। लंबी अवधि के ठहराववालों की सूची तैयार की गई। सभी को उपकृत करने का आश्वासन दिया भैयाजी ने। दोनों ओर के आश्वासन रंग लाए और चुनाव के बाद तबादला हो गया। भैयाजी का लँगोटिया भीखू भाई चूड़ीघर बाजार में मिल गया। वर्षों तक साथ निभाया भैयाजी का उसने। कुछ समय उनका निजी सचिव भी बना रहा। अब तो भैयाजी के पैर जमीन पर नहीं टिकते। अब उनकी पाँचों नहीं, दसों उँगलियाँ घी में हैं। क्योंकि वेतन-भत्तों में भारी बढ़ोतरी के साथ विदेशी यात्राओं में छूट तथा दैनिक भत्ते भी आसमान को छूने लगे हैं। सेवा केवल पाँच साल की और सेवाप्रसाद जीवन भर का। है न आदमी तकदीरवाला। सावधान दोस्तो, अब उनका सेवा शुल्क भी आनुपातिक ढंग से बढ़ गया है। विद्यालय का वार्षिक उत्सव था। भैयाजी मुख्य अतिथि थे। उद्‍बोधन में कहा, ''मेरे देशवासियो, मैंने हमेशा जनभावना का ध्यान रखा है। लोगों को रास्ता दिखाया। उनकी लंबित समस्याओं का समाधान किया। फिर भी लोग कहते हैं तो कहने दो। कुछ तो लोग कहेंगे, लोगों का काम है कहना।'' यदि भैयाजी से मिलना चाहो तो दो माह बाद ही जाएँ, क्योंकि वे कल ही अपने सेवाकाल के पाँचवें वर्ष में सपरिवार नि:शुल्क विदेश यात्रा करेंगे। पाँच बड़े राष्ट्रों में अंतिम यात्रा चीन की होगी। जहाँ कुछ अधिक समय ठहरकर लौटने की योजना है। धैर्य बनाए रखें। मिलेंगे अवश्य। जय हिंद-जय भारत!

सा अ

पोस्ट+गाँव-आगूंजा, जिला-भीलवाड़ा
राजस्थान-३११०२२
दूरभाष : ०९४१३७६१६१०

भाग्यवान् लड़का

मूल : **रेमन डेल वालेक्लेन**

अनुवाद : **भद्रसैन पुरी**

गाँव की सबसे बूढ़ी औरत अपने पोते का हाथ थामे हरे किनारेवाले रास्ते पर जा रही है; रास्ता उदास और प्रभात की धुँधली रोशनी में चेतनाशून्य नजर आ रहा है। उसकी कमर झुकी हुई है और चलते हुए आह भरकर बच्चे को उपदेश देती है, जो बिना आवाज किए रो रहा है।

''अब जब तुम कमाई करने लग गए हो, तुमको विनम्र होना चाहिए, क्योंकि यह परमात्मा का विधान है।''

''ठीक है, बड़ी माँ।''

''तुम अपने दादा, जो हमें छोड़ गए हैं, की आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करो।''

''ठीक है, बड़ी माँ।''

''तुम सान गुनडियन के मेले में जाने के लिए सस्ता सा लबादा खरीदो, यदि तुमने कुछ पैसे बचा लिये हैं; बार-बार वर्षा होती है।''

''ठीक है, बड़ी माँ।''

''जब तुम रास्ते पर चलो, तुम्हें अपनी खड़ाऊँ उतार देनी चाहिए।''

''ठीक है, बड़ी माँ।''

दादी और पोता चलते जा रहे हैं। सड़क की निर्जनता बचपन के उस संगीत की उदासी को बढ़ाती है, जो जीवन के आरंभ में ली गई विनम्रता, समर्पण और निर्धनता की प्रतिज्ञा जैसी लगती है। बूढ़ी औरत अपनी खड़ाऊँ, जो सड़क के पत्थरों पर झनझनाहट करती है, में घिसट-घिसटकर चलती है और सिर पर ओढ़ी शॉल के नीचे आह भरती है। पोता सरदी से सिसकियाँ भरता और काँपता है, उसके कपड़े फटे हुए हैं। वह चित्तीदार गालों के साथ सूरजमुखी लड़का है; किसी दूसरे काल के गुलाम की तरह उसके स्वच्छ और सीधे बाल माथे पर बारीक काटे गए थे, मानो मकई के रेशे हों।

प्रभात के नीले आकाश में अभी कुछ डूबते तारे चमक रहे हैं। एक लोमड़ी गाँव से भागकर रास्ते के आर-पार जाती है। दूर कुत्तों के भौंकने और मुरगों की बाँग सुनी जा सकती है, सूर्य धीरे-धीरे पहाड़ियों की चोटियों को सुनहरा बनाना शुरू करता है; ओस घास के तिनकों पर और वृक्षों के इर्दगिर्द चमकती है। अपने घोंसलों को पहली बार छोड़ते हुए छोटे पक्षी अपनी कायर उड़ानों के साथ चक्कर लगाते हैं; नदियाँ हँसती हैं और पेड़ों की टहनियाँ मरमर की ध्वनि उत्पन्न करती हैं और हरे किनारोंवाला उदासीन और उजाड़ रास्ता, बुआई और अंगूर की फसल काटनेवाले पुराने रास्ते की तरह जाग उठता है। भेड़ों के झुंड पहाड़ी ढलानों पर चढ़ते हैं; औरतें फव्वारे से गाती हुई आती हैं; एक सफेद बालोंवाला देहाती अपने बैलों को हाँकता है, ज्यों ही वे बाड़ को खाने के लिए रुकते हैं; वह आदरणीय वृद्ध पुरुष है; उसकी आवाज दूर से आती है।

''क्या तुम बार बनजॉन के मेले में जा रहे हो?''

''हम लड़के के लिए मालिक ढूँढ़ने सान एमेडियो जा रहे हैं।''

''इसकी आयु कितनी है?''

''कमाने योग्य, गत जुलाई में नौ वर्ष का हो गया था।''

दादी और पोता चलते जा रहे हैं, चलते जा रहे हैं···आनंददायक सूर्य के तले, जो अब पहाड़ियों के ऊपर चमक रहा है, गाँव के लोग सड़क पर गुजरते हैं। धूप से झुलसा हुआ घोड़ों का एक प्रसन्न व्यापारी एड़ियों और खुरों की झनझनाहट के बीच दुलकी चाल से चल रहा है। सेला और लेस्ट्रोव की बूढ़ी औरतें मुरगियाँ, सन से बना माल और राई लेकर मेले में जा रही हैं। वहाँ दर्रे में एक गँवार हाथ हिलाकर ऊँची आवाज में बकरियों को भयभीत कर रहा है, जो चट्टानों में शान से कूद-फाँद रही हैं। लेस्ट्रोव के पादरी को रास्ता देने के लिए दादी-पोता एक तरफ हो जाते हैं—पादरी, जो गाँव के त्योहार में प्रचार के लिए जा रहा है।

''शुभ प्रभात, परमात्मा तुम पर दया करे।''

शांत और प्रतापी चाल से चल रहे पादरी ने घोड़ा रोक लिया था।

''क्या तुम मेले में जा रहे हो?''

''हम निर्धनों के पास मेले में जाने के लिए क्या रखा है? हम लड़के के लिए मालिक ढूँढ़ने सान एमेडियो जा रहे हैं।''

''क्या यह प्रश्नोत्तर प्रणाली जानता है?''

''हाँ श्रीमान्, जानता है। निर्धनता किसी को ईसाई बनने से रोकती नहीं है।''

और दादी-पोता चलते रहते हैं, चलते रहते हैं। दूर नीली धुंध में उन्होंने गिरजा के चहुँओर सान एमेडियो के काले और उदास वृक्षों को ताका, जिनकी चोटियाँ सुबह की सुनहरी रोशनी से पोती हुई लगती हैं। गाँव में प्रत्येक दरवाजा पहले से ही खुला हुआ है और चिमनियों से सफेद धुआँ निकलकर शांति के सत्कार की तरह आकाश में गुम हो रहा है। दादी और उसका पोता ड्योढ़ी पर पहुँचते हैं। दरवाजे के रास्ते में एक अंधा व्यक्ति बैठा भिक्षा की याचना कर रहा है और अपनी पथरीली आँखें आकाश की ओर उठाता है।

''सेंट लूसी तुम्हारी नजर और स्वास्थ्य बनाए रखे, ताकि इस संसार में अपनी रोटी कमा सको। परमात्मा तुम्हारा भंडार भरे और तुम्हें देने योग्य बनाए—स्वास्थ्य और भाग्य, ताकि संसार में रोटी कमा सको। परमात्मा के इतने अच्छे लोग कुछ-न-कुछ दिए बिना नहीं जाते।''

और अंधा व्यक्ति दरवाजे के रास्ते में अपनी पीली हथेली फैलाता है। बूढ़ी औरत अपने पोते का हाथ थामे उसके पास जाकर उदासीनता से बड़बड़ाती है—

''हम निर्धन लोग हैं, भाई!...हमें पता चला है कि तुम्हें नौकर की जरूरत है।''

''यह सच है। जो मेरे पास पहले था, वह संता बाया डी सेला की यात्रा में अपना सिर फड़वा बैठा है। वह अब बिल्कुल मतिहीन हो गया है।''

''मैं अपना पोता लाई हूँ।''

''तुमने अच्छा किया।''

अंधा आदमी हवा में टटोलते हुए हाथ फैलाता है।

''निकट आओ, लड़के!''

दादी लड़के को धकेलती है, जो डरपोक मेमने की तरह सिपाही का लबादा पहने भयानक बूढ़े आदमी के सामने काँपता है। अंधे का दृढ़ाग्रही पीला हाथ लड़के के कंधों पर पड़ता है, पीठ को टटोलता है और उसकी टाँगों तक जाता है।

''क्या तुम बोरों को पहाड़ी पर ले जाते थक जाओगे?''

''नहीं श्रीमान्, मैं इसका आदी हूँ।''

''उनको भरने से पहले हमें कई घरों पर दस्तक देनी होगी। क्या तुम गाँव की सड़कों से अच्छी तरह परिचित हो?''

''जहाँ मुझे पता नहीं चलेगा, मैं पूछ लूँगा।''

''यात्राओं में जब मैं भजन गाऊँगा, तो क्या मेरा साथ दे सकोगे?''

''अभ्यास कर लूँगा, श्रीमान्।''

''बहुत लोग अंधे आदमी का नौकर होना पसंद करेंगे क्या?''

''हाँ श्रीमान्, हाँ।''

''अब तुम आ ही गए हो तो आओ, हम पाजो डी सेला चलें। वहाँ के लोग उदार और दयालु हैं। यहाँ तो एक सिक्का भी नहीं मिलता!''

अंधा आदमी कठिनाई से उठता है और अपना हाथ लड़के के कंधे पर रखता है, जो सामने लंबी सड़क और गीले मैदान को शोकाकुल देखता है—मैदान, जहाँ दूर एक श्रमिक कमर झुकाए घास काट रहा है, जबकि गले में बँधी रस्सी को खींचते हुए एक गाय चर रही है। अंधा आदमी और लड़का धीरे-धीरे चलते जाते हैं और दादी अपनी आँखों को सुखाती हुई बड़बड़ाती है—

''भाग्यवान् लड़का! नौ वर्ष का और रोटी कमा रहा है—रोटी, जो वह खाता है, परमात्मा को धन्यवाद!''

सा अ

लघुकथा

दर्जा

● रचना गौड़ 'भारती'

''संजय बेटा! ये बैग ऊपर से उतार दे।'' माँ ने कहा।

कंप्यूटर पर काम कर रही गीता अचानक उठ खड़ी हुई, ''संजय तुम्हारी पीठ में दर्द है न? लाओ, मैं उतार देती हूँ।''

संजय को यों बहन का उसके प्रति ध्यान रखना अच्छा लगा। उसे याद हो आया, दिल्ली स्टेशन पर पापा के साथ जब उसने भारी-भारी सामान उठा रखा था तो वह लपककर आई थी, 'हटो, संजय। थोड़ा सामान मैं शेयर कर लेती हूँ।'

माँ ने बीच में टोका भी था, 'तू रहने दे, गीता। बेटी, लड़कियों को वजन नहीं उठाना चाहिए।' शायद माँ की धारणा अलग थी। संजय को स्पोर्टस के दौरान लगी चोट से बैकऐक हो गया था, जिसे माँ ने गंभीरता से नहीं लिया, यह सोचकर कि लड़का है, ठीक हो जाएगा। एक गीता ही थी, जो उसे सहानुभूति का मलहम लगा स्ट्रॉन्ग बना रही थी। संजय पेपर देने गीता के साथ घर से निकला। दोनों मेट्रो में गंतव्य स्टेशन का इंतजार कर रहे थे कि दो बुजुर्ग व्यक्ति ट्रेन में आए और संजय से सीट माँगने लगे। गीता झटके से कह उठी, ''अंकल! आप यहाँ बैठ जाएँ।'' वे सकुचाते हुए, ''अरे, यह लड़का है। तुम बैठो, यह उठ जाएगा।'' गीता जानती थी इस समय संजय का बैठना उससे ज्यादा जरूरी था। ऐसे में उसे लड़की होने का बैनेफिट न भाया और उनसे बोली, ''अंकल! उसे तकलीफ है। इस समय मैं लड़की होने का नहीं, इनसान होने का दर्जा लेना चाहती हूँ।''

सा अ

३०४, रिद्धि-सिद्धि नगर प्रथम,
बूँदी रोड, कोटा (राजस्थान)
दूरभाष : ०९४१४७४६६६८

मिड-डे मील

• मंजरी शुक्ला

जब ईश्वर जरूरत से ज्यादा झोली में गिरा देता है तो वह भी मनुष्य के लिए अहंकार और पतन का कारण बन जाता है—ऐसा ही कुछ हुआ चाँदनी के साथ। सभ्य, सुशील और बेहद महत्त्वाकांक्षी चाँदनी को जब महात्मा गांधी के आदर्शों पर जीवनपर्यंत चलनेवाले ईमानदार और अकेले बाबूजी ने पहली बार सरकारी स्कूल के प्रिंसिपल के पद पर कार्य करने के लिए भेजा तो मानो कई सतरंगी इंद्रधनुष उनकी आँखों में झिलमिल वर्षा के साथ मुसकरा उठे। उसकी माँ की मौत के बाद बाबूजी ने अकेले होते हुए भी उसकी सारी जिम्मेदारियाँ माँ बनकर बिना किसी शिकन या परेशानी के उठाईं, जहाँ आस-पड़ोस के मर्द घर में घुसते ही एक गिलास पानी के लिए भी अपनी घरवाली को चीखते हुए बुलाते, वहीं पसीने में लथपथ बाबूजी आँगन में आते ही उसे प्यार से गोद में उठाकर जी भर दुलार करने के बाद भीगी आँखों से सूखी-गीली लकड़ियों को चूल्हे में जलाने के लिए कवायद शुरू कर देते। उसे गोदी में लेकर खाना बनाने के लिए जुट जाते। 'संस्कार', बस इसी शब्द के बीज वे उस नन्ही बच्ची के मन-मस्तिष्क में बो देना चाहते थे, सारी दुनिया देखने के बाद उनकी अनुभवी आँखें ताड़ गई थीं कि पैसे से खरीदी गई इज्जत मजबूरीवश सिर्फ शरीर ही देता है। अगर किसी के मन का मालिक बनना हो तो पहले खुद गुणी बनना पड़ेगा!

शायद यह बात चाँदनी भी महात्मा गांधी, महाराणा प्रताप, भगत सिंह और लाल बहादुर शास्त्री जैसे अनेक महान् और अपने सिद्धांतों पर अडिग रहनेवाले व्यक्तियों के बारे में जानकर समझ गई थी। अपने बाबूजी के सपनों को पूरा करने के लिए उसने भी सारी दुनियादारी को ताक पर रखकर लालटेन की रोशनी में अपने जीवन के वे सुनहरे साल किताबों की काली स्याही में डुबो दिए, जिनमें उसकी हमउम्र सहेलियाँ सावन के झूलों में झूलते हुए अठखेलियाँ करती थीं। वर्षों बाद बाबूजी की वे सारी कहावतें चरितार्थ होते हुए एक दिन डाकिये के हाथों से नियुक्ति-पत्र के रूप में उसके पास आ गईं। आँसुओं ने हँसते हुए बाबूजी के तकलीफों में गुजरे हुए हजारों पलों को एक ही झटके में अलविदा कह दिया। उसकी तमाम मनुहार और उलाहनों के बाद भी बाबूजी उसके साथ शहर नहीं गए और उसे आशीर्वाद देते हुए उसकी बचपन की खट्टी-मीठी यादों के साथ आँसू पोंछते हुए उस मिट्टी के घरोंदे के अंदर चले गए।

चाँदनी को वहाँ पर हर नए प्रिंसिपल की तरह स्कूल के सारे स्टाफ ने हाथोहाथ लिया। जब उसके हाथों से होती हुई लक्ष्मी से कई घरों का

सुपरिचित लेखिका। अब तक बाल-साहित्य की पाँच पुस्तकें। देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित। संप्रति कुरुक्षेत्र आकाशवाणी में एनाउंसर। स्वतंत्र रूप से साहित्य लेखन में रत।

चूल्हा जलता था तो जाहिर था कि उन जुबानों में भी सदा चाशनी ही लिपटी रहती। स्कूल के गेट के अंदर घुसते ही मानो वह महारानी बन जाती। गेटकीपर से लेकर बच्चे और बच्चों से लेकर प्रत्येक टीचर की झुकी हुई गरदन शुरू में तो उसे संकोच से मानो जमीन में गाड़ देती थी, पर पता नहीं कब हौले से उसके साथ अहंकार भी अदृश्य रूप में कदम-से कदम मिलाते हुए चलने लगा। इसका पता उसे तब चला, जब एक दिन स्कूल के बूढ़े गेटकीपर ने अपनी ऐनक पोंछते हुए उसे नहीं पहचान पाने के कारण सैल्यूट नहीं मारा। इतनी गहरी चोट तो उसे तब भी नहीं लगी थी, जब मास्टरजी ने फीस नहीं भर पाने की वजह से उसे डंडे से मारते हुए हथेलियाँ नीली कर दी थीं।

गुस्से से आगबबूला होते हुए, गोरे चेहरे को लाल करके और पैर पटकते हुए उसने अपने कमरे से न जाने कौन सा फोन मिलाया कि बेचारा गरीब बूढ़ा गेटकीपर रिटायर होने से पहले ही आँखों में आँसू भरे उसकी तरफ बेबस नजरों से देखते हुए चुपचाप बिना एक शब्द कहे वहाँ से चला गया। शायद वहीं से बाबूजी की सारी कहानियाँ उसके दिलोदिमाग से विलुप्त हो गईं। अब वह जमाने के हिसाब से सुर-ताल मिलाकर चलने लगी। महँगे कपड़ों से अपनी अलमारी को विभिन्न प्रकारों के आभूषणों से सजाती हुई कई बैंकों के लगातार खाते खुलवाती वह अब एक मकान की भी स्वामिनी हो चुकी थी—कई सांसारिक लोगों की मदद से उसने बहुत ही कम समय में सामाजिक मान-प्रतिष्ठा भी पा ली थी, जो धन और वैभव के अनुरूप प्रदान की जाती है। उसने अब सभी देवी-देवताओं को दरकिनार करते हुए अब कुबेर को अपना इष्टदेव मान लिया था।

अचानक एक दिन दोपहर में अपने स्कूल का मुआयना करते हुए बच्चों को मिड-डे मील खाते देखकर उसके मन में एक विचार कौंधा, जिसे उसके साथ चल रहे चालबाजी के गुरु मिस्टर वर्मा, जो कि वहाँ बरसों से अकाउंटेंट थे, ने तुरंत ताड़ लिया। बस फिर क्या था, आँखों से ही चाँदनी ने स्वीकृति दे दी और खुशी के मारे पान की पीक निगलते हुए दूसरे ही दिन से कर्तव्यनिष्ठ वर्माजी ने मिड-डे मील का तीन-चौथाई

अनाज आस-पास की दुकानों पर पहुँचाना शुरू कर दिया और वहाँ से पुराना खराब अनाज स्कूल लाकर बनवाना—खाना बनानेवाले अब केवल कागज पर थे। उनकी कमियाँ निकालकर स्कूल की कामवाली बाइयों और चौकीदारों से ही खाना बनवाना शुरू कर दिया।

कुछ दिन तो बच्चों ने कोई शिकायत नहीं की, पर जब खाने में रोज ही कीड़े मिलने लगे और खाना गले के नीचे उतरना कठिन हो गया तो बेचारे अपने घर से ही रूखी-सूखी लाकर खाने लगे। यह देखकर चाँदनी को बहुत सुकून मिला। हर बात में सरकार को कोसते हुए वह सबकी नजरों में बेदाग बनी रही, मानो सरकार कोई एक आदमी हो, जो कहीं दूर से बैठा यह सब तमाशा करवा कर खुश हो रहा हो। उधर बाबूजी चाँदनी की याद में बहुत बेचैन हो रहे थे। अचानक जब मन की पीड़ा मौन से भी मुखर हो उठी तो वे चल दिए अपना झोला उठाए चाँदनी के पास। कहीं उनकी ईमानदार कामकाजी बिटिया अपने स्कूल का कामधाम छोड़कर न दौड़ी चले आए, यह सोचकर उन्होंने अपना परिचय केवल चाँदनी के गाँव के पड़ोसी होने का दिया। उस समय मालती बैंक में पैसा जमा कराने गई हुई थी। पहले तो बाबूजी बैठे, फिर घूमते-टहलते उस ओर जाकर खड़े हो गए, जहाँ पर बच्चों का खाना बन रहा था। वे मन-ही-मन अपनी जीवन भर की तपस्या को फलीभूत होते देखकर खुशी से रो पड़े कि आज उनकी लड़की इस योग्य है, जो न जाने कितने नन्हे-मुन्ने बच्चों को भोजन करवा रही है—जिन बच्चों के घर में एक समय का भी खाना छीना-झपटी के साथ खाया जाता था, वे बेचारे उस खाने के इंतजार में बैठे थे, जिन्हें दूसरे बच्चे देखना भी पसंद नहीं करते थे। अचानक खाना बनानेवाली बुढ़िया अम्माँ फुसफुसाकर चौकीदार से बोली, ''हमका लागत हैं दो ठौ छिपकली ई दाल में गिर गई हैं।''

चौकीदार ने चमचे से हिलाकर देखा तो दो काली छिपकलियाँ अभी भी दाल के अंदर तड़प रही थीं। उसने इधर-उधर देखते हुए चुपचाप भगोने को तश्तरी से ढकते हुए धीरे से कहा, ''अभी मुझे चाँदनी मैडम के घर पर बरतन माँजने भी जाना है।'' अगर छिपकली निकालकर दूसरी दाल का पतीला चढ़ाऊँगा तो चार घंटे और लगेंगे, तुम नाहक ही परेशान मत हो, हमें तो कीड़ों से भरा खाना दिया ही जाता है रोज बनाने के लिए, तो दो छिपकली में कौन सी आफत हुई गई है।''

और अम्माँ ने भी माथे का पसीना पोंछते हुए चुप्पी साध ली।

जब खाना बच्चों को दिया जाने लगा तो बाबूजी के पसीने से तरबतर कुरते और पोपले मुँह को देखकर अम्माँ को दया आ गई। वे समझीं कि स्कूल में ही कोई नया आदमी काम पर आया है। उन्होंने एक प्लेट खाना उनके आगे भी रख दिया। बाबूजी अन्न का निरादर कर नहीं सकते थे, इसलिए वे बिना कुछ कहे खाने बैठ गए। अभी आधा खाना ही खाया था कि सभी बच्चों के साथ-साथ उनकी भी हालत बिगड़ने लगी। थोड़ी ही देर में सभी को उल्टी-चक्कर आने लगे। यह देखकर चपरासी और अम्माँ डर के मारे वहाँ से सिर पर पैर रखकर ऑफिस की ओर भागे। पर तब तक चाँदनी वापस लौटकर आ चुकी थी और अपने कमरे में बैठकर पेपर पढ़ रही थी।

जैसे ही हाँफते-काँपते वर्माजी और बाकी लोगों ने उसे इस घटना से अवगत कराया तो वह अस्पताल का नाम सुनकर ही बिदक उठी। डॉक्टरों की रिपोर्ट, अधिकारियों का निरीक्षण और बाबूजी की इज्जत का भी आज अचानक उसे पता नहीं कैसे ध्यान आ गया। उसने सभी लोगों को रोजमर्रा में ली जानेवाली दवाइयों को देने के लिए कहा और घर की ओर चल दी। उधर बाबूजी की हालत बिगड़ती ही जा रही थी। चाँदनी को चार बार संदेशा भिजवाया गया कि एक बूढ़े आदमी की तबीयत भी बहुत खराब है, पर वह नहीं आई।

आखिर रात में बाबूजी ने चाँदनी का नाम मन-ही-मन लेते हुए आखिरी साँस ली और उससे बिना मिले ही इस दुनिया से चले गए। आखिर अब चाँदनी को बड़बड़ाते हुए आना ही पड़ा। जैसे ही उसकी नजर जमीन पर गठरी जैसे पड़े हुए बाबूजी पर पड़ी, वह चेतना शून्य हो गई। उसने काँपते हाथों से बाबूजी का निर्जीव पड़ा ठंडा हाथ पकड़ा। वह बोलना चाह रही थी, पर जुबान जैसे तालू में चिपककर रह गई थी। उसके हाथ, पैर, आँखें, कान सभी इंद्रियों ने एक साथ काम करना बंद कर दिया था। वह बस बाबूजी की ठंडी पड़ी दुबली-पतली देह से एक अबोध शिशु की तरह लिपटी पड़ी थी। अचानक वह उठी और पागलों की तरह ठहाका मारकर हँसने लगी और एक-एक करके अपने सारे गहने फेंककर नंगे पैर स्कूल के बाहर जाने लगी। सब मूर्ति की तरह उसे अपलक निहार रहे थे और कुछ भी नहीं समझ पाने के कारण मानो पत्थर के बेजान बुतों की भाँति एक-दूसरे को फटी हुई आँखों से देख रहे थे। आखिरकार वर्माजी भागे और चाँदनी के पास जाकर हकलाते हुए धीरे से बोले, ''मैडम, आप इतनी रात में कहाँ जा रही हैं?''

चाँदनी ने उन्हें भरपूर नजरों से देखते हुए कहा, ''थाने!''

और स्याह होती चाँदनी सोई हुई काली सड़क के अँधेरे में कहीं गुम हो गई।

क्वार्टर नं. डी-१४३३
इंडियन ऑयल कॉरपोरेशन लि.
रिफाइनरी टाउनशिप
गाँव व पोस्ट-बहोली
पानीपत-१३२१४० (हरियाणा)
दूरभाष : ९६१६७९७१३८

राजस्थान के विश्वप्रसिद्ध लोक-वाद्ययंत्र

• दुर्गादत्त ओझा

विश्व में अपनी अनोखी आन-शान-बान और पहचान रखनेवाला देश के क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे बड़ा राज्य 'रंगीले राजस्थान' का महत्त्व संपूर्ण देश में ही नहीं, वरन् दुनिया में अद्वितीय है। चाहे यहाँ की संस्कृति, साहित्य, स्थापत्य कला, शिल्पकला, तीज-त्योहार, पहनावा, भोजन, शूरवीरता, दानशीलता, वैज्ञानिकता, लोक-नृत्य, लोकगीत, लोक-संगीत एवं सुरीले विलक्षण लोक-वाद्ययंत्र ही क्यों न हों, सब की खासियत अलग ही है। हर्ष का विषय है कि इन्हीं अनेकानेक विशिष्टताओं से भरा राजस्थान आज पर्यटन की दृष्टि से विश्व के मानचित्र पर आ चुका है।

गौरवमयी राजस्थान में उल्लास का रंग बिखेरते लोक-वाद्य हमारी सांस्कृतिक पहचान भी हैं। संगीत प्रकृति के कण-कण में रचा-बसा है। पक्षियों का कलरव, भौंरों का गुंजन, बादलों का गर्जन, पत्तों की सरसराहट और नदियों के जल की कल-कल का कर्णप्रिय संगीत सदैव ही प्रात्रिमात्र को आह्लादित करता है। संगीत मानव-मन की सुंदर अभिव्यक्ति है। परंपरा और धरोहर से साक्षात् कराते, लोक-जीवन में समरसता लाते वाद्य यंत्र संगीत के प्राण हैं। शिव का डमरू, कृष्ण की बाँसुरी, मीरा का इकतारा, अर्जुन का पाँचजन्य (शंख) और सरस्वती की वीणा वाद्ययंत्रों की दिव्यता सिद्ध करते हैं। सुर, लय और ताल से सजे राजस्थानी लोकवाद्यों की स्वर लहरियाँ समृद्ध परंपरा की प्रतीक हैं। माटी की सौंधी महक के ताने-बाने से बने राजस्थान के लोकवाद्य अपना एक अलग स्थान रखते हैं। जन-मन को झंकृत करते इन लोक-वाद्यों ने बड़ी ख्याति अर्जित की है। राजस्थान लोक-वाद्यों की मुख्यत: तीन श्रेणियाँ हैं—तार वाद्य, फूँक वाद्य तथा खाल से गढ़े वाद्य। तार वाद्य—जैसे भपंग, इकतारा, सारंगी, रावण हत्था इत्यादि। फूँक वाद्य—अलगोजा, शहनाई व मोरचंग इत्यादि। खाल वाद्य—ढोलक, नौबत, नगाड़ा इत्यादि।

भपंग— भपंग डमरू के आकार का एक देसी साज है। यह वाद्य कटे हुए तूंबे से बना होता है, जिसके एक सिरे पर चमड़ा मढ़ा होता है। चमड़े में एक छेद निकालकर उसमें जानवर की आँत का तार अथवा प्लास्टिक की डोरी डालकर उसके सिरे पर लकड़ी का टुकड़ा बाँध दिया जाता है। वादक इस वाद्य को काँख में दबाकर एक हाथ से उस डोरी या ताँत को खींचकर या ढीला छोड़कर उसपर दूसरे हाथ से लकड़ी के टुकड़े से प्रहार (आघात) करता है। तन-मन में थिरकन पैदा करता यह वाद्य मेवात इलाके में विख्यात है।

पुरातन एवं अद्यतन विज्ञान विषयों पर हिंदी में ५० से अधिक कृतियाँ, सहस्राधिक विज्ञान आलेख एवं शताधिक शोध-पत्र प्रकाशित। डॉ. ओझा अनेक राष्ट्रीय पुरस्कारों एवं सम्मानोपाधियों से अलंकृत हैं।

इकतारा— प्राचीन वाद्य इकतारा भारत का अति लोकप्रिय तंतु वाद्य है। इसका दंड बाँस का बना होता है। गोल तूंबे में एक बाँस फँसा दिया जाता है। इसके नीचे तुंबड़ा लगाते हैं। तुंबड़े का कुछ भाग काटकर उस पर चमड़ा मढ़ देते हैं। इसके ऊपर फौलाद के तार चढ़ाते हैं।

यह वाद्ययंत्र एक हाथ से ही बजाया जाता है। इसे संस्कृत ग्रंथों में तंत्रीवीणा भी कहा जाता है। प्राचीनकाल में संगीतकार भी इसका रियाज करते थे। इकतारा घुमक्कड़ साधुओं के पास प्राप्त होता है, जिस पर वे स्वांत: सुखाय भजन गा लिया करते हैं। कृष्ण-भक्ति में लीन मीराबाई के हाथ में इकतारा शोभायमान रहता था।

रावण हत्था— भोपों का प्रमुख वाद्य है रावण हत्था। पाबूजी की फड़ पूरे राजस्थान में विख्यात है, जिसे भोपे बाँचते हैं। ये भोपे विशेषकर थोरी जाति के होते हैं। भारतीय संस्कृति की इस ऐतिहासिक धरोहर को वर्षों से उन्होंने अपनी परंपरा में सँभालकर रखा और विकसित किया है। फड़ कपड़े पर पाबूजी के जीवन-प्रसंगों के चित्रों से युक्त एक पेंटिंग होती है। भोपे पाबूजी की जीवनकथा को इन चित्रों के माध्यम से कहते हैं और गीत भी गाते हैं। फड़ के सामने ये नृत्य भी करते हैं। ये गीत रावण हत्था पर गाए जाते हैं, जो सारंगीनुमा वाद्ययंत्र होता है। यह भोपों का प्रमुख वाद्य है, जिसकी बनावट सरल है, लेकिन सुरीलापन अनूठा है। इसमें नारियल की कटोरी पर खाल मढ़ी होती है, जो बाँस के साथ लगी होती है। बाँस में जगह-जगह खूँटियाँ लगी होती हैं, जिनमें तार बँधे होते हैं। दो मुख्य तारों में से एक घोड़े की पूँछ का बाल व एक लोहे या स्टील का तार होता है। साथ ही ३ से १३ तक अन्य सहायक तार भी ब्रिज के ऊपर लगे होते हैं। यह वायलिन की तरह गज या कमान से बजाया जाता हैं। इसमें एक सिरे पर घुँघरू बँधे होते हैं। बजाते समय हाथ के ठुमके से घुँघरू भी बजते हैं।

मशक—मशक भैंरूजी के भोपों का प्रमुख वाद्य है। चमड़े की सिलाई कर बनाए गए इस वाद्य में एक सिरे पर लगी नली से मुँह से हवा भरी जाती है तथा दूसरे सिरे पर लगी अलगोजेनुमा नली से स्वर निकाले जाते हैं। इसके स्वर पूँगी की तरह सुनाई देते है।

सारंगी—संगत वाद्य के रूप में बजाए जानेवाली सारंगी के राजस्थान में विविध रूप दिखाई देते हैं। लोक-कलाकार इसे बड़े चाव से बजाते हैं। मारवाड़ के जोगियों द्वारा गोपीचंद भृर्तहरि, निहालदे आदि के खयाल गाते समय इसका प्रयोग किया जाता है। मीरासी, लंगे, जोगी, मांगणियार आदि कलाकार सारंगी के साथ ही गाते हैं। सारंगी सागवान, कैर तथा रोहिड़ा की लकड़ी से बनाई जाती है। सारंगी के तार बकरे की आँत के और गज में घोड़े की पूँछ के बाल बँधे होते हैं। इसे बिरोजा पर घिसकर बजाने पर ही तारों से ध्वनि उत्पन्न होती है। कानों में मिश्री घोलती सारंगी की धुन मन मोह लेती है।

रबाब—सर्वप्रथम अहोबल द्वारा चरित 'संगीत पारिजात' नामक ग्रंथ में रबाब का उल्लेख मिलता है। इसका पेट सारंगी से कुछ लंबा त्रिभुजाकार तथा डेढ़ गुना गहरा होता है। शास्त्रीय संगीत का वर्तमान सरोद इसी का परिष्कृत रूप है। इसमें तीन से सात तार तक होते हैं। इसे जवा से बजाया जाता है। यह एक तत् लोकवाद्य है। इसकी मधुर तान दिन भर की थकान दूर कर देती है।

कमाँयचा—कमाँयचा लंगा, मांगणियार कलाकारों की पहचान है। यह सारंगी की तरह का एक वाद्ययंत्र है, जो रोहिड़े या आक की लकड़ी से बनाया जाता है। इसमें जानवर की खाल लगाई जाती है। इसमें तीन मुख्य तार लगे होते हैं, जो पशुओं की आँत के होते हैं। साथ ही चार सहायक स्टील के तार ब्रिज के ऊपर लगे होते हैं। इसकी लकड़ी की गज या कमान भी घोड़े के बाल की बनती है। यह जैसलमेर-बाड़मेर के मांगणियारों के द्वारा बजाया जाता है।

सुरनाई—सुरनाई बनाने में शीशम, सागवान, टाली की लकड़ी का प्रयोग होता है। पीतल एवं ताँबे की नलीवाली सुरनाई शहनाई के समान होती है। जहाँ शहनाई शास्त्रीय वाद्य है, वहीं सुरनाई लोकवाद्य है। सवा फुट, लंबाई का यह लोक-वाद्य दो रीड का होता है, जो खजूर या ताड़ वृक्ष की पत्ती की बनती है। इसे बजाते समय रीड को पानी से गीला किया जाता है। यों तो सुरनाई पूरे राजस्थान में प्रचलित है, लेकिन मुख्य रूप से जोगी, भील, ढोली तथा जैसलमेर क्षेत्र के लंगा लोग इसे बजाते हैं।

मांगणियार गायकों के प्रमुख वाद्यों में सारंगी, कमाँयचा, खड़ताल, मोरचंग, ढोलक, भपंग, मटका, मुरली और सुरनाई आदि हैं।

अलगोजा—अलगोजा वादन से १९८२ के दिल्ली एशियाड का शुभारंभ हुआ था। प्रसिद्ध फूँक वाद्य अलगोजा बाँसुरी की तरह का होता है। इसमें सात छिद्र होते हैं। वादक दो अलगोजे मुँह में रखकर एक साथ बजाता है। एक अलगोजे पर स्वर कायम किया जाता है तथा दूसरे पर बजाया जाता है। यह वाद्य केर व बाँस अथवा सुपारी की लकड़ी से बनाया जाता है। इसे चरवाहों तथा राणका फकीरों का वाद्य कहा जाता है।

शहनाई—शहनाई एक लोकप्रिय मांगलिक वाद्य है। विवाह आदि प्रमुख अवसरों पर शहनाई वादन पूरे माहौल को एक अलग रंग में सराबोर कर देता है। चिलम की आकृति का यह वाद्य पीतल, ताँबे, शीशम या सागवान की लकड़ी से बनाया जाता है। वाद्य के ऊपरी सिरे पर ताड़ के पत्ते की तूँती बनाकर लगाई जाती है। फूँक देने पर इसमें से मधुर स्वर निकलता है।

मोरचंग—मोरचंग/मुरचंग लंगा गायक समुदाय का पारंपरिक वाद्ययंत्र है। 'संगीत परिजात' नामक ग्रंथ में इसे मुखचंग बताया गया है। मोरचंग लोहे का एक यंत्र है, जो काफी छोटा होता है तथा कैंची जैसा दिखता है। इस यंत्र को दाँतों के बीच रखकर बाएँ हाथ से पकड़ा जाता है। दाएँ हाथ की उँगलियों से बजाते हुए साँसों को अंदर या बाहर खींचने पर इस यंत्र से धुनें निकलती हैं। घरासिया, कालबेलियों द्वारा बाँस का मुरचंग बजाया जाता है, जिसे 'घुरालियो' कहते हैं। डीजे और आधुनिक वाद्यों को मात देता राजस्थान के मोरचंग का भी जवाब नहीं है, इससे मंत्रमुग्ध कर देनेवाली धुनें निकलती हैं।

पुंगी—पुंगी वाद्य एक विशेष प्रकार के तूंबे से बनता है। तूंबे का ऊपरी हिस्सा लंबा और पतला तथा नीचे का हिस्सा गोल होता है। तूंबे के निचले गोल हिस्से में छेदकर दो नलियाँ लगाई जाती हैं। इन नलियों में स्वरों के छेद होते हैं। अलगोजे के समान ही उस नली में स्वर कायम किया जाता है और दूसरी से स्वर निकाले जाते हैं। कालबेलियों और सपेरों का यह प्रमुख वाद्य है।

बाँकिया—पीतल का बाँकिया बना वाद्य ढोल के साथ मांगलिक अवसरों पर बजाया जाता है। आकृति में यह बड़े बिगुल की तरह होता है। इसे तुरही का एक प्रकार माना जा सकता है। जोश, जुनून और जज्बे को उजागर करता बाँकिया वाद्य प्राचीन समय में युद्ध के समय प्रयोग में लाया जाता था।

खड़ताल—अन्य वाद्यों के साथ केवल ताल और लय में चमक पैदा करने के लिए खड़ताल बजाए जाता है। छह इंच से आठ इंच लंबी और डेढ़-दो इंच चौड़ी साधारण सी दिखाई देनेवाली लकड़ी

की दो पटियाँ खड़ताल कहलाती हैं। खड़ताल बनाने के लिए सामान्य तथा रेगिस्तान में पैदा होनेवाले कैर और बबूल की लकड़ी का उपयोग किया जाता है। कैर और शीशम की लकड़ी से बनी खड़ताल से अद्‌भुत ध्वनि निकलती है। चौकोर लकड़ी की इन पटियों के कोने थोड़ी गोलाई लिये होते हैं, ताकि हाथ में चुभे नहीं। हाथ के एक अँगूठे के आंतरिक भाग एवं दूसरी चारों उँगलियों में हथेली के बीच खड़ताल रखकर बजाया जाता है। मीराबाई के एक हाथ में इकतारा तो दूजे में खड़ताल दृष्टिगोचर होता है।

नगाड़ा—कहावत मशहूर है कि ढोल की थाप और नगाड़े की चोट एवं नगाड़े की संगत के बिना रंगत ही नहीं आती। नगाड़ा दो प्रकार का होता है—एक छोटा और दूसरा बड़ा। छोटे नगाड़े के साथ एक नगाड़ी भी होती है। इसे लोकनाट्यों में शहनाई के साथ बजाया जाता है। लोक-नृत्यों में बड़ा नगाड़ा नौबत की तरह ही होता है। इसे बम या टामक भी कहते हैं। यह युद्ध के समय भी बजाया जाता था। यह वाद्य लकड़ी के डंडों से ही बजाया जाता है। ढोल और नगाड़े के सम्मिलित वादन को नौबत कहते हैं। नगाड़े का छोटा रूप ढमामा कहलाता है।

करणा—तुरही से मिलता-जुलता करणा एक फूँक लोक-वाद्य है। इसे मांगलिक अवसरों पर बड़े चाव से बजाया जाता है। इसकी मधुर तान सुननेवालोंपर जादू सा असर करती है। इसकी लंबाई ८ से १० फुट तक होती है। यह पीतल की चादर से बनता है। इसके तीन-चार भाग होते हैं, जिन्हें अलग-अलग करके जोड़ा व समेटा जा सकता है। देखने में यह चिलम की शक्ल का होता है। इसके सँकरे भाग में शहनाई की तरह रीड लगी होती है, जिसे होंठों में दबाकर फूँक से बजाया जाता है।

यह वाद्य मुख्यत: युद्धक्षेत्र व राज दरबारों में बजाया जाता था। पाली क्षेत्र के मंदिरों में भी इसका वादन किया जाता है।

डमरू—शिवजी का डमरू जगप्रसिद्ध है। बंदर नचानेवाले, नट, जादूगर तथा जोगी लोगों का यह एक प्रतीक वाद्य है। एक से दो बालिश्त तक लंबा डमरू दोनों सिरों पर चमड़े से मढ़ा होता है। इसके दोनों मुख रस्सी से कसे रहते हैं। इसके बीच का हिसा एकदम पतला होता है, जिसमें एक रस्सी अलग से लटकी रहती है और रस्सी के मुख पर घुंडी बनी होती है। हाथ को इधर-उधर घुमाने से घुंडीदार रस्सी डमरू के दोनों मुखों पर चोट करती है तो डिम-डिम की ध्वनि निकलती है। इसके छोटे स्वरूप को डुगडुगी या डिम-जिमी कहते हैं।

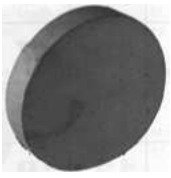

चंग—चंग चार अंगुल चौड़े लकड़ी के छोर पर चमड़े से मढ़ा हुआ या चक्राकार १६ से २० अंगुल व्यास तक का होता है। इसे बाएँ हाथ से पकड़कर हृदय के समीप स्थित कर दाहिने हाथ के द्वारा बजाते हैं। इसके छोटे स्वरूप को डफली और बड़े को डफ कहते हैं। चंग के जरिए लोक-गाथाओं और शेरो-शायरी की प्रस्तुति भी की जाती है। आज भी ग्रामीण होली के अवसर पर चंग की थाप पर झूमते-नाचते और गीत गाते हैं।

ताशा—ताशा मुगलकालीन वाद्य है। मिट्‌टी की दो बालिया व्यास की कटोरी जैसा इस वाद्य को जब चमड़े से मढ़ दिया जाता है तो उसे ताशा कहते हैं। दोनों हाथों में दो इंद्रियों (खपच्चियाँ) लेकर तड़बड़ शब्द निकाले जाते हैं। ताशे को गले में भी लटका लिया जाता है और ढोल के आश्रय से विभिन्न लयकारियाँ प्राप्त की जाती हैं।

खंजरी—डफली के घेरे में तीन या चार जोड़ी झाँझ लगे हों तो उसे खंजरी कहते हैं। इसका वादन चंग की तरह हाथ की थाप से किया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों का यह प्रसिद्ध वाद्य है। बाँसुरी के साथ इसका वादन मनोहारी होता है।

जंतर—यह वाद्य वीणा की तरह होता है। वादक इसको गले में डालकार खड़ा-खड़ा ही बजाता है। वीणा की तरह इसमें दो तूंबे होते हैं। इनके बीच बाँस की लंबी नली लगी होती है। इसमें कुल चार तार होते हैं। राजस्थान में यह गूजर भोपों का प्रचलित वाद्य है।

झाँझ—आठ से सोलह अंगुल के व्यास तक के धातु के गोल टुकड़े झाँझ कहलाते हैं। इनके मध्य में डोरी निकालकर उसपर रस्सी या कपड़ा बाँधकर इसे हाथ से पकड़ने योग्य कर लेते हैं। और फिर एक-एक हाथ में एक-एक टुकड़ा पकड़कर दोनों को आघात से मनचाही झंकार निकालते हैं। झाँझ का छोटा स्वरूप मंजीरा है। प्राय: देवी-देवताओं की स्तुति के साथ इनको बजाया जाता है।

नड़—माता या भैरव का गुणगान करने के लिए राजस्थान के भोपें मशक की तरह के जिस वाद्य को फूँक द्वारा बजाते हैं, उसे नड़ कहते हैं। उत्तर भारत में इसे भोपे की बीन कहा जाता है। मुँह की फूँक द्वारा मशक में पहले पूरी हवा भर ली जाती है, फिर बाँसुरी की तरह उसमें लगी हुई नली के तीन छिद्रों पर उँगली के संचालन से स्वर पैदा किए जाते हैं।

तांबूरा—यह कटहल की लकड़ी को खोखला करके या कद्‌दू की मोटी छाल का बना होता है। इसका ब्रिज लकड़ी या हाथी-दाँत का बना होता है। तांबूरा में तीन स्टील और एक पीतल का तार होता है। प्रथम और चतुर्थ तारों की ध्वनि-खूटियाँ गरदन के एक ओर होती है और दूसरी व तीसरी सिर के ऊपर सीधी खड़ी होती है।

नौबत—धातु की लगभग चार फीट गहरी अर्ध-अंडाकार कुंडी को भैंसे की खाल से मढ़कर चमड़े की डोरियों से कसा जाता है। इसे लकड़ी के डंडों से बजाया जाता है। नौबत प्राय: मंदिरों में या राजा-महाराजाओं के महलों के मुख्य द्वार पर बजाया जाता था।

ढोल—राजस्थानी लोक-वाद्यों में ढोल का प्रमुख स्थान है। यह लोहे अथवा लकड़ी के गोल घेरे पर दोनों तरफ चमड़ा मढ़कर बनाया जाता है। इस पर लगी रस्सियों को कड़ियों के सहारे खींचकर इसे कसा जाता है। वादक इसे गले में डालकर लकड़ी के डंडे से बजाता है।

श्रीमंडल—डेढ़ मीटर धातु का एक ढाँचा होता है, जिसमें कई प्लेटें लटकी रहती हैं। ये प्लेटें भिन्न-भिन्न मोटाई और व्यास की होती हैं और भिन्न-भिन्न तारता के संगीत-स्वर उत्पन्न करती हैं। यह अन्य तरंग वाद्यों की तरह है। यह ताज्जुब की बात है कि ठीक इसी तरह का वाद्य चीन में पाया जाता है, जिसे वे युनलो कहते हैं।

भूंगल—यह भवाई जाति के लोगों का वाद्य है। पीतल का बना यह वाद्य तीन हाथ लंबा होता है। यह वाद्य बाँकया से मिलता-जुलता है। इसे भेरी भी कहते हैं। इस वाद्य को रणक्षेत्र में भी बजाया जाता था।

रमझोल—ये घुँघरू से बड़े आकार के होते हैं, जो चमड़े की एक पट्टी पर टँगे रहते हैं। ये पट्टी पैर में पिंडली तक बाँधी जाती है। राजस्थान में होली के अवसर पर नृत्यमंडली में इनका प्रयोग किया जाता है।

पाबूजी के माटे—मिट्टी के दो बरतनों से बना वाद्य नीचे स्वर में मिला वाद्य नर कहलाता है और ऊँचे स्वर का मादा कहलाता है। पश्चिम राजस्थान की थोरी या भील जातियों द्वारा प्रयुक्त किया जाता है।

तंदूरा—इसमें चार तार होने के कारण कहीं-कहीं इसे चौतारा भी कहते हैं। यह पूरा लकड़ी का बना होता है। कामड़ जाति के लोग तंदूरा ही बजाते हैं। यह तानपुरे से मिलता-जुलता वाद्य है।

ढाँक—लोक देवी-देवताओं के आह्वान के लिए ढाँक का प्रयोग किया जाता है। यह डमरू जैसा, आकार में उससे करीब चौगुना होता है।

धौंसा—यह भी नगाड़े की तरह का ही वाद्य है। इसे घोड़े पर दोनों तरफ रखकर लकड़ी के डंडों से बजाया जाता है।

माँदल—मिट्टी से बनी माँदल मृदंग जैसी होती है। यह आदिवासी भीलों और गरासियों का प्रमुख वाद्य है।

कुंडी—मिट्टी का बना हुआ वाद्य है। मेवाड़ के जोगियों के पंचपद नृत्य में इसका प्रयोग होता है।

गूजरी—रावण हत्था से छोटे आकार का वाद्ययंत्र है।

अन्य लोक-वाद्ययंत्र—सुरमंडल, सुरिंदा, घेरा, डैंरू, ढोलक, काँसे की थाली, तसली, झालर, घंटा, मटका, तारपी, सिंगा, नागफणी, लेजिम, सतारा, पैली, वीणा, चिकारा, घुँघरू, मुरली।

ब्रह्मपुरी, हजारी चबूतरा
जोधपुर-३४२००१
दूरभाष : ९४१४४७८५६४

कविता

घंटों तक घूरता है

• तुषार सिंह

बूढ़ी औरत

एक औरत थी
बूढ़ी सी
रोज सुबह-सवेरे छत पर
आया करती थी,
वह मुसकराती, प्याला उठाती
और भरती पानी
हमें गुटुर-गूँ कहकर
बुलाया करती थी,
हम भी चहकते, फड़फड़ाते
उड़कर जाते
पानी पीते दाना चुगते
गगन में फिर गुम हो जाते।

लेकिन आजकल वह बूढ़ी औरत
नहीं दिखती,
उसकी जगह
एक बूढ़ा आदमी आता है
पानी भरता है
दाना रख जाता है,
पर कभी मुसकराता नहीं
बस हमें लाल, मुरझाई हुई
आँखों से
घंटों तक घूरता है
हम भी कई बार सोचते हैं
क्या यह कभी सोता है?

कभी-कभी घूरते-घूरते
उसकी आँखों से
जले हुए आँसुओं की
बहार आ जाती है,
लगता है शायद इसे हममें वह
बूढ़ी औरत दिख जाती है।

रिक्शेवाला

देखा मैंने आज एक रिक्शेवाला
फटे कपड़े, रंग साँवला, लगा थोड़ा भोला-भाला,
यों तो रोज ही देखता हूँ ऐसे लोगों को
लेकिन आज जरा गौर से जाँचा

देखा मैंने, पीछे बैठी थीं सवारियाँ दो
तेजी से ले जा रहा था इन्हीं सवारियों को

पहली सवारी एक मोटी नारी
थी बड़ी भरकम भारी,
नाम था जिम्मेदारी
दूसरी सवारी एक लंबी कहानी
पहुँचा रही थी बड़ी हानि
कहलाती थी परेशानी

परेशानी और जिम्मेदारी, इन्हीं दो प्राणियों को
बड़ी मशक्कत से खींच रहा था रिक्शेवाला
सोच रहा था, कहीं उतरती नहीं, ऐसा क्यों?
क्या कोई था इस सवाल का जवाब देनेवाला?

अब कौन बताए इसे, इन दो रिश्तेदारों से
जिंदगी भर का नाता होता है,
कौन समझाए इसे, इन दो मेहमानों का
हर एक के घर में आना-जाना होता है

गरीबी की इस कड़क धूप में
क्षण भर के लिए रुकता है अगर
तो घर के पहिए को जमीन दबा जाती है,
इसलिए पूरे दम से चलता है, मगर
इस कमबख्त जिंदगी की चेन उतर जाती है।

क्यू-४, एस.एम.एस. अस्पताल कैंपस
जयपुर-३०२००४ (राजस्थान)
दूरभाष : ९१९१६६७०१९

उदयपुर व आबू की यात्रा

● रुक्मणी संगल

यों तो भारत विविधता का संगम है। यहाँ नाना भाषा, बोली, वेषभूषा, नाना पंथ, समुदाय जीवन जीते हैं। बोली के विषय में तो यहाँ तक कहा जाता है, 'कोस-कोस पर बदले पानी, चार कोस पर बानी'। भिन्न खान-पान, भिन्न रहन-सहन होते हुए भी इसका मूल एक है। यह बात कमोबेश इसके प्रदेशों पर भी सटीक बैठती है। विशेषरूप से राजस्थान के विषय में तो यह अक्षरश: सत्य है।

बात २०११ की है। जयपुर में हम निजानंदियों का एक धार्मिक कार्यक्रम था, उसमें जाना था, इसलिए हम घर से कार्यक्रम से कई दिन पूर्व ही चल पड़े और पहुँच गए उदयपुर, जो वीरता के स्तंभ उदयसिंह के नाम पर है। वही उदयसिंह, जिसकी रक्षा हेतु उनकी धाय माँ ने न केवल अपनी स्वामिभक्ति, देशप्रेम, त्याग और बलिदान की ऐसी मिसाल कायम की जो आज सदियों बाद भी राजस्थानी इतिहास की अनुपम धरोहर है, जिसकी कर्तव्यनिष्ठा हर नर-नारी की प्रेरणास्रोत है। ऐसी महान् नारी के समक्ष शीश स्वत: श्रद्धा से झुक जाता है। शायद ऐसी ही नारियों के कारण प्रसादजी कह उठे थे, 'नारी, तुम केवल श्रद्धा हो।'

हाँ जी तो, मैं बता रही थी कि हम जयपुर से पहले उदयपुर पहुँच गए, जबकि उदयपुर इससे पहले भी हम जा चुके थे अर्थात् यह हमारी उदयपुर की दूसरी यात्रा थी। कारण कि जब पहली बार उदयपुर से देहली आ रहे थे, तो ट्रेन में एक व्यक्ति से भेंट हुई, जो अपनी नौ-दस वर्षीय पुत्री के पैरों का ऑपरेशन कराकर आ रहा था। उससे ज्ञात हुआ कि वह भी उदयपुर से ही आ रहा है। वहाँ नारायण सेवा संस्थान है, जो गरीबों का मसीहा है, बिना किसी खर्च के ऑपरेशन कराता है। साथ ही, रहने व खाने का खर्च भी उठाता है। तब से ही मन में था कि हम उदयपुर के बहुत से स्थल देख आए, लेकिन 'नारायण सेवा संस्थान' नहीं देखा, वहाँ के सेवाभावियों के दर्शन नहीं किए। बस अपनी इसी लालसापूर्ति हेतु हमारा यह उपक्रम था।

वहाँ पहुँचने पर हम अपनी पूर्वपरिचित धर्मशाला में गए। सामान्य औपचारिकताओं के बाद सामान एक कक्ष में स्थापित किया और निकल पड़े 'नारायण सेवा संस्थान' के लिए। एक ऑटोरिक्शा वाले ने हमें वहाँ पहुँचा दिया। देखा कि संस्थान के बाहर काफी लोग हैं। कुछ लोग पंक्तियों में खड़े हैं, एक ओर रोगी बच्चे हैं। वहाँ के कार्यकर्ता थोड़ी लिखा-पढ़ी जैसी औपचारिकताओं की पूर्ति कर रहे हैं। हम भी उनके पास पहुँच गए और संस्थान में प्रवेश की अनुमति लेकर अंदर चले

सुपरिचित लेखिका। धार्मिक, सामाजिक एवं साक्षरता गतिविधियों में सहभागिता। भारत के कोने-कोने में भ्रमण। पत्र-पत्रिकाओं में अनेक लेख और कहानियाँ प्रकाशित।

गए। एक कक्ष से दूसरे कक्ष, सभी में ऑपरेशन किए जा चुके बच्चे व किशोर थे। उनके साथ उनकी माँ या माँ सरीखी परिचारिका। एक कक्ष में भगवान राम, कृष्ण, हनुमान व महादेव जैसे देवों की सुंदर प्रस्तर प्रतिमाएँ भी स्थापित थीं, जिससे वह कक्ष देवालय के रूप में प्रतिष्ठित था। घूमते हुए हम ऊपर की मंजिल पर भी पहुँच गए। एक कक्ष की खुली छत पर खड़े हुए हमने देखा कि दूसरी छत पर एक व्यक्ति टहल रहा है, जिसके साथ एक सहायक जैसा व्यक्ति भी है। पूछने पर ज्ञात हुआ कि वे मानवजी हैं, जो इस संस्थान के संस्थापक व संचालक हैं और वे सूरदास हैं। हम आश्चर्य व श्रद्धा से भर उठे। नीचे उतरते समय हमने एक-दो अभिभावकों से जानना चाहा कि वे कहाँ से और क्यों आए हैं? दूसरे-दूसरे प्रदेशों से आए उन अभिभावकों ने बताया कि उनके बच्चे की दोनों टाँगें पोलियोग्रस्त होने से वह चल-फिर नहीं सकता था। यहाँ आकर वह ठीक हो गया। जब खर्च के विषय में पूछा तो उन्होंने भी वही बताया, जो ट्रेन में मिले यात्री ने बताया था, जिससे यह विश्वास दृढ़ हो गया कि मानवजी स्वयं ज्योतिविहीन होकर भी न जाने कितने परिवारों को खुशियाँ बाँट रहे हैं। भगवान को दीनबंधु, दीनानाथ कहा जाता है, पर यहाँ मानवजी प्रत्यक्ष में इन विशेषणों को चरितार्थ कर रहे हैं। उनके अथक प्रयास व दृढ़संकल्प से संस्थान का विस्तार होते-होते कई भवन बन गए हैं, जिनमें सभी प्रकार के संसाधन जुटाए गए हैं, जिससे दूर-दराज से आए किसी भी रोगी व उसके तीमारदार को कोई कष्ट न हो। उनका पुत्र, पत्नी, यों कहूँ कि सारा परिवार व अन्य सेवाभावी जन संस्थान के प्रति समर्पित हो सेवाकार्य में लीन हैं। यहाँ तक कि अगर कोई किशोर या युवा स्वस्थ होकर वहीं रहना चाहे, तो रह सकते हैं; वहाँ रहकर लघुशिल्प सीखकर स्वावलंबी भी हो सकते हैं। इतना सब देख-सुनकर हमने भी उस परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना की कि ऐसे सेवाभावी मानवजी जैसे मानव को भी वह ज्योति प्रदान करे।

संस्थान के साथ ही एक मंदिर था, जिसमें शिव के विभिन्न रूप आकार पाए थे, उसके भी दर्शन करते हुए हम अपने पड़ाव पर आ

पहुँचे। थोड़ा विश्राम और रात्रि भोजन। यहाँ के दर्शनीय स्थल तो पहली यात्रा में देख चुके थे, इसलिए पुन: इन्हीं स्थलों को देखने की अपेक्षा हमने आबू जाने का निर्णय लिया। रात्रि में ही हम बस में सवार हो गए। यह रात्रि-यात्रा होने के बस-पथ के आस-पास के दृश्यों की तो हम जानकारी नहीं ले पाएँगे, इसलिए इस समय में मैं उदयपुर के देखे गए स्थलों को आपसे परिचय कराती हूँ।

पहला दर्शनीय स्थल जगन्नाथजी का मंदिर, राजस्थान के भव्यतम व विशालतम मंदिरों में से एक। शिल्पकला की दृष्टि से भी अनुपम व अनूठा। इसके निर्माण का श्रेय जाता है महाराजा जगत सिंह को, जिन्होंने सन् १६५१ में १५ लाख रुपयों की राशि से इसे निर्मित कराया। इस मंदिर की दीवारों पर भी दर्शनीय व आकर्षक खुदाई व रंगों का संयोजन है। भगवान् विष्णु ही जगन्नाथ स्वरूप में यहाँ प्रतिष्ठित हैं। जब-जब भी मैं इस प्रकार के देवालयों, ऐतिहासिक भवनों की शिल्पकला, स्थापत्यकला, मूर्तिकला व चित्रकला को देखती हूँ तो देखती ही रह जाती हूँ। अपने भारतीय कलाकारों के कारण गौरवान्वित अनुभव करती हूँ और ऐसे उन कलाकारों व शिल्पकारों को नमन करती हूँ, जिन्होंने अपने कौशल से जड़ पाषाण को भी सजीव कर उसमें प्राण-प्रतिष्ठा कर दी है।

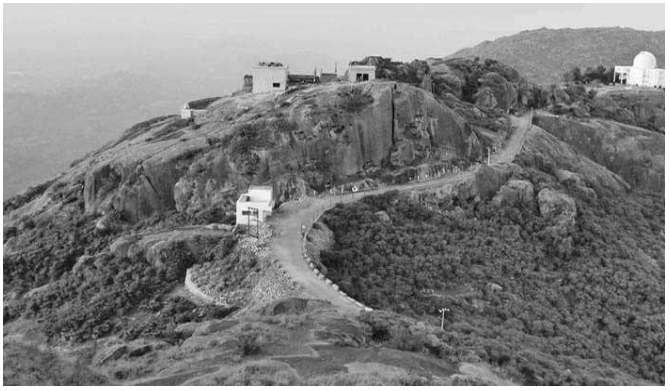

इस मंदिर के दर्शनों के बाद हम पहुँचे, सहेलियों की बाड़ी। यों तो यह एक वाटिका है, जिसमें तरह-तरह के पुष्पों की मादक गंध किसी को भी आनंदित करने में सक्षम है, लेकिन यहाँ तो फव्वारों से युक्त जलाशय व घास के मैदान भी हैं, जिनपर कभी राजकुमारियाँ अपनी सहेलियों के साथ जलक्रीड़ा हेतु आया करती थीं। उनकी सजीव सी प्रतिमाएँ भी यहाँ इस अंदाज में खड़ी दिखती हैं, मानो वे अभी दौड़कर अपनी सखी को पकड़ लेंगी और जलक्रीड़ा का आनंद भी लेंगी। जिस प्रकार कभी राजकुमारियाँ खेल के साथ ग्रीष्म की तपन से अपने को बचा पाती थीं, उसी प्रकार पर्यटक भी यहाँ पहुँचकर राजस्थान की गरमी को भूल जाता है।

उदयपुर का महाराणा प्रताप स्मारक फतहसागर झील के किनारे मोती नगरी पहाड़ी पर स्थित है। यहाँ चेतक पर सवार महाराणा की कांस्य मिश्रित प्रतिमा पर्यटकों का मन मोह लेती है। यहाँ भी उद्यान में फूलों की क्यारियाँ व फव्वारों युक्त जलाशय इसके सौंदर्य को द्विगुणित करते हैं। उदयपुर के नगररूप में स्थापित होने से पूर्व महाराणा उदयसिंहजी इसी स्थान पर रहा करते थे। उनके महल के अवशेष आज भी यहाँ देखे जा सकते हैं। बाद में उन्होंने यह नगर बसाया।

इसके बाद हमने फतहसागर झील को देखा, जो तीन ओर से पहाड़ी से व एक ओर मोती नगरी से घिरी है। महाराणा फतहसिंह ने इस झील का पुनरुद्धार १७५४ ई. में कराया, क्योंकि महाराणा जयसिंह द्वारा निर्मित झील उचित रखरखाव व अतिवृष्टि के कारण नष्टप्राय हो गई थी, यों कह सकती हूँ कि लुप्त होने के कगार पर थी। फतहसिंह द्वारा पुनर्जीवन दिए जाने के कारण उन्हीं के नाम से विख्यात हो गई। १८०० लंबी ३० गहरी यह झील नगर को रेगिस्तान से निजात दिलाती पूरे साजो-सामान के साथ पर्यटकों को आकर्षित करने में समर्थ है।

हमारा अंतिम पड़ाव लोककला मंडल था, जहाँ पहुँचकर हमने अनुभव किया कि यह लोककला मंडल सही अर्थों में भारतीय लोक कलाओं को संरक्षित कर उन्हें संजीवनी दे रहा है। यहाँ विभिन्न वेशभूषाओं में कठपुतलियाँ तरह-तरह के लोकनृत्य प्रस्तुत करती हैं। कभी बचपन में कठपुतलियों का नृत्य अभिनय देखा था, तब यह समझ नहीं आया था कि ये निर्जीव हैं या सजीव। यहाँ भी कठपुतलियों द्वारा जो प्रस्तुति दी गई, वह सराहनीय है, क्योंकि उसे देखते हुए हम एक अलग भावलोक में खो गए थे। यहाँ लोककलाओं से संबंधित चित्र, मूर्तियाँ, मॉडल वस्त्र व आभूषण आदि सभी संगृहीत हैं। रखरखाव की दृष्टि से भी यह प्रशंसनीय है।

हाँ, तो हमारी बस माउंट आबू के लिए बढ़ रही थी। लगभग प्रात: के तीन बजे हम लोग आबू रोड पहुँच गए। यों तो रास्ते भर यात्री उतरते-चढ़ते रहे, लेकिन यहाँ आकर तो हमें छोड़कर सभी यात्री उतर गए, जिससे हमने सोचा कि शायद यही बस का अंतिम पड़ाव है, हम भी उतरे और कंडक्टर के पास जाकर पूछा कि भई, आ गए क्या आबू? उत्तर 'न' में था। अभी २८ कि.मी. पीछे थी बस, इसलिए पुन: बस में बैठ गए और फिर रेहड़ीवालों से चना-चबैना, चिप्स आदि ले आए। दरअसल यही पश्चिम रेलवे की मीटर गेज लाइन अहमदाबाद-दिल्ली का 'आबू रोड स्टेशन' है। यहाँ से लगभग साढ़े चार बजे, डेढ़ घंटे के ठहराव के बाद बस पुन: चली। तब तक उसमें १५-२० यात्री और दाखिल हो गए थे। हम अपने गंतव्य पर पहुँच गए, बस से उतरे और ढाबेनुमा एक चायवाले की दुकान पर पहुँच गए। वहीं गरमागरम चाय की चुस्कियाँ लीं, साथ ही वहाँ के दर्शनीय स्थलों की जानकारी भी।

दिसंबर का महीना, तिस पर हम पहुँच गए राजस्थान के एकमात्र पर्वतीय क्षेत्र आबू। राजस्थान की मरुस्थली होने के सत्य को झुठलाता, तपती रेत का भ्रम तोड़ता यह शहर आबू नदी, झील व झरनों के उपहारों से मालामाल आबू, हिंदू व जैन धर्मावलंबियों की आस्था का बेजोड़ उदाहरण आबू राजस्थान का सिरमौर, मानव मन की सारी अवधारणाओं पर प्रहार करता आबू, वहाँ हम पहुँचे खड़े हैं। सिरोही जिले में स्थित यह पठारी शहर प्रकृति व अध्यात्म का बेजोड़ नमूना, जिसे देखने-

परखने की ललक में हम उस समय की शीत को भी मात दे गए और बढ़ चलें अर्बुद विश्वनाथ मंदिर की ओर।

शिव का यह मंदिर प्राचीन व भव्य है शिवलिंग को एक ऊँचे पीठ पर स्थापित किया गया है यहीं से हम कात्यायनी शक्तिपीठ पहुँचे, इसी को अर्बुदा देवी का मंदिर कहा जाता है। यह एक ऊँचे पहाड़ पर एक विशाल चट्टान के नीचे स्थापित किया गया है, इस मंदिर का प्रवेश द्वार अत्यंत छोटा है, जिसमें बैठकर या काफी झुककर प्रवेश कर पाते हैं। मंदिर में बनी यह प्रतिमा पृथ्वी से कुछ ऊपर होने के कारण इसे अधर देवी का मंदिर भी कहते हैं। इसके बाद हम पहुँचे ओऽम शांति भवन। यहाँ प्रवेश करते ही घोड़ों की पाँच प्रतिमाएँ दृष्टिगत होती हैं, जिन्हें एक जंजीर से पकड़ा गया है। पूछने पर ज्ञात हुआ कि ये अश्व मानव की पाँच इंद्रियों के प्रतीक हैं, जिन्हें आत्मरूपी जंजीर जकड़े हुए है।

यह भवन नवनिर्मित व स्तंभरहित है, तीन-चार हजार व्यक्तियों को बैठा सकता है, इसलिए एशिया के पाँच विशाल भवनों में से एक, भारत के तीसरे और प्रदेश के पहले स्थान पर है। अपने नाम की सार्थकता सिद्ध करता शांति प्रदाता भी है।

शांति भवन से शांति समेटते हुए हम पहुँच गए शिव मंदिर। यह अचलेश्वर मंदिर के नाम से विख्यात है, जो प्रवेश द्वार के दोनों ओर गज प्रतिमाओं से सुशोभित है। प्रवेश करते ही पीतल की पत्तर चढ़ी नंदी की प्रतिमा दीख पड़ती है। शिवलिंग के स्थान पर महादेव के चरण के अँगूठे की पूजा होती है, क्योंकि यहाँ शिवलिंग न होकर महादेव के अँगूठे से बना एक कुंड है। मान्यता है कि यह कुंड महादेव के अँगूठे से ही बना है। यहाँ से हम पहुँच जाते हैं दत्तात्रेय मंदिर, जो विष्णु के स्वरूप हैं। हिमालय व नीलगिरि पहाड़ियों के मध्य सबसे ऊँचे शिखर पर है, इसलिए इसको 'गुरु शिखर' भी कहा जाता है।

१५० सीढ़ियाँ चढ़ने पर मंदिर के दर्शन होते हैं, जहाँ चरण पादुकाएँ अंकित हैं। मंदिर में एक प्राचीन व विशाल पीतल का घंटा है, जिस पर सन् १४११ का लेख खुदा है। १४वीं सदी के धर्म सुधारक स्वामी श्री रामानंदजी व समाज-सुधारक संत कबीरजी के गुरु के पदचिह्न भी यहाँ अंकित हैं।

गुरु शिखर की चढ़ाई व दर्शनों के बाद हम पहुँच जाते हैं 'ब्रह्म कुमारी पीस पार्क', जो बहुत सुंदर व आकर्षक उद्यान के रूप में विकसित किया गया है। स्थान-स्थान पर संकेत चिह्न मार्गदर्शन हेतु लगाए गए हैं। अनेक प्रकार के फूलों की सुगंध सारे उद्यान को सुगंधित कर रही है, बीच-बीच में फव्वारों से निकलती जलफुहारें किसी भी पथिक की थकान को दूर करने में समर्थ हैं। यहाँ कई बड़े-बड़े हॉल हैं, जिनमें आत्मा-परमात्मा व अध्यात्म ज्ञान को परदा पर चलचित्र की भाँति दरशाया जाता है, हमने भी उसका रसपान किया। एक उत्तम पिकनिक स्थल भी है, इस प्रकार यह पार्क लौकिक व पारलौकिक आनंद का संगम है। इस आनंद रस से सराबोर हो हम पहुँच जाते हैं आबू की नक्की झील, जो चारों ओर ऊँची-ऊँची पहाड़ियों से घिरी हरे-भरे पेड़ों की कतारों से सजी नयनाभिराम हो जाती है, जिस पर झील की सैर करने को तत्पर खड़ी रंग-बिरंगी नौकाएँ इसके सौंदर्य को चार चाँद लगाती हैं। बीच में एक फव्वारा व जलपान गृह पर्यटकों को अधिकाधिक आने का निमंत्रण देता है।

इस सबके बाद जो देखा—अद्‌भुत, अनुपम, दिलवाड़ा के जैन मंदिर। सफेद संगमरमर से बने इनके भवन शिल्प व स्थापत्य कला की अनुपम धरोहर हैं। ये मंदिर डाकघर से उत्तर की ओर जाती सड़क पर तीन कि.मी. की दूरी पर दिलवाड़ा ग्राम में स्थापित हैं। पाँच मंदिरों का समूह है दिलवाड़ा के मंदिर। पहला मंदिर गुजरात के महाराजा भीम के मंत्री विमलशाह द्वारा निर्मित विमलवसहि शिल्पकला का भव्य मंदिर है। १०३१ ई. में बनकर तैयार हुए इस मंदिर में उस समय १८ करोड़ ५३ लाख रुपए की राशि खर्च हुई। कहा जाता है कि विमलशाह ने अनेक युद्ध किए, जिसमें असंख्य मानवों के साथ असंख्य जीव भी काल कवलित हुए। अपने को उसका भागीदार मानते हुए श्री सूरीश्वर महाराज की प्रेरणा से प्रायश्चित्त स्वरूप एक भव्य मंदिर निर्माण का बीड़ा उठाया, किंतु यह क्षेत्र हिंदुओं की पवित्र तीर्थ भूमि होने के कारण ब्राह्मणों ने इसका विरोध किया। लेकिन राजा ने इस सारी भूमि का स्वर्ण मोहरों से ढककर विरोध को भी अपने पक्ष में कर लिया। फलतः यहाँ प्रथम मंदिर तीर्थंकर ऋषभदेवजी (आदिनाथ) को समर्पित है। मुख्य मंदिर का मंडप अष्टकोणीय है व ४८ स्तंभयुक्त है, जिसकी लहरदार मेहराबें एक-दूसरे से मिलती हैं। इसमें संगमरमर के ११ केंद्रगामी छल्लों द्वारा निर्मित छत पर मानव, हाथी व अन्य प्राणियों की सजीव सी मूर्तियाँ स्थापित हैं। मंदिर के मुख्यद्वार के सामने ही स्थित हस्तिशाला में १० हाथियों की प्रतिमाओं के मध्य विमलशाह की अश्वारोही प्रतिमा स्थापित है।

दूसरा मंदिर लूणवसहि, पहले मंदिर के दो सौ वर्ष बाद, लूणवेश के दो भाइयों ने सन् १२३० में १२ करोड़ ५३ लाख की राशि से बनवाया। इस मंदिर को श्रेष्ठ शिल्पकार शोमनदेव व उसके १,५०० कारीगरों ने अपनी कला के बेजाड़ नमूने के रूप में तैयार किया व भगवान नेमिनाथ को समर्पित किया। यह पहले मंदिर से कुछ छोटा किंतु शिल्पकला में उसे मात देता प्रतीत होता है। इसकी दीवारें, तोरण, स्तंभ व छत के गुंबजों पर बेलबूटे, फूल-पत्ती, हाथी-घोड़े व बाघ-सिंह आदि की आकृतियाँ उकेरी गई हैं। नर-नारी, देवी-देवताओं की मर्तियों के साथ-साथ राजदरबार, विवाहोत्सव व बारात आदि के दृश्यों को जीवंतता के स्तर पर दरशाया गया है, जिन्हें देखते हुए हम किसी स्वप्नलोक में विचरण करने जैसी अनुभूति करने लगे।

इस मंदिर के गूढ़ मंडप के मुख्य दरवाजे के बाहर नव चौकी द्वार में दोनों ओर दो अप्रतिम गोखले (आले) बनाए गए हैं, जो देवरानी व जेठानी की स्पर्धा के प्रमाण हैं। दो भाई निर्माण करा रहे हैं। छोटा भाई अपनी पत्नी के लिए गोखड़ा बनवाए तो बड़े भाई की पत्नी के लिए न बने, यह कैसे हो सकता है? यों भी वह बड़ी है, जेठानी है।

इस मंदिर की गजशाला में दस खंड हैं, जिनमें से प्रत्येक पर एक-एक संगमरमर की गज प्रतिमा और उन गजों पर वस्तुपाल व तेजपाल जैसा योद्धाओं की प्रतिमा प्रतिष्ठित हैं। इस मंदिर को तेजपाल मंदिर भी कहा जाता है।

लूणवसहि के दक्षिणी दरवाजे के बाहर दाईं ओर दादा साहब की पालकी व बाईं ओर चबूतरे पर कीर्ति स्तंभ खड़ा है। लूणवसहि से निकलने पर दाईं ओर श्वेतांबर मंदिरों की परिधि में बना यह एक दिगंबर जैन मंदिर है, जिसमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की एक सौ आठ मन वजनी पीतल की प्रतिमा स्थापित है।

एक मंदिर में काले संगमरमर से निर्मित तीन तल के चौमुखे मंदिर में जैन प्रतिमाएँ हैं। यह मंदिर यों तो पार्श्वनाथ को समर्पित है, इसलिए उनकी चौमुखी प्रतिमा प्रतिष्ठित है, लेकिन अन्य तीर्थंकरों व अश्वों आदि की प्रतिमाएँ भी हैं। इस मंदिर के निर्माण के विषय में कहा जाता है कि धनाभाव के कारण इस मंदिर का कार्य अपूर्ण रह गया है, जिसे उसके सेवाभावी शिल्पकारों ने अपनी आस्था व स्वामिभक्ति के कारण बिना पारिश्रमिक लिये अधूरे कार्य को संपन्न कर एक भव्य मंदिर बनाया।

दिलवाड़ा के मंदिरों की जितनी प्रशंसा की जाए, कम ही होगी। दिलवाड़ा के ये मंदिर किसी का भी दिल जीतनेवाले हैं। अपनी शिल्पकला, आस्था, समर्पण, रंगों के संयोजन, चित्रों के अंकन, सभी में अद्‌भुत व अनुपम। लगा कि माउंट आबू की यह यात्रा चिरस्मरणीय हो गई और हमारा उदयपुर आना सार्थक हुआ। उन्हीं विभिन्न भावों से भरे हम विवश से अपने जयपुर के कार्यक्रम के लिए चलने को विवश थे। सो चल पड़े और वहाँ के त्रिदिवसीय आयोजन का आनंद लेकर अपने गृह नगर पटियाला लौट आए, क्योंकि आरक्षण की नियत तिथि पर यहाँ पहुँचना भी आवश्यक होता है।

सा.अ.

२८-बी, प्रेमनगर,
पटियाला-१४७००१ (पंजाब)
दूरभाष : ०९४१७०८८४६६

लेखकों से अनुरोध

- मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।
- रचना फुलस्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित की हुई मूल प्रति भेजें।
- पूर्व स्वीकृति बिना लंबी रचना न भेजें।
- केवल साहित्यिक रचनाएँ ही भेजें।
- प्रत्येक रचना पर शीर्षक, लेखक का नाम, पता एवं दूरभाष संख्या अवश्य लिखें; साथ ही लेखक परिचय एवं फोटो भी भेजें।
- डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचनाएँ वापस भेजी जा सकती हैं। अतः रचना की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- किसी अवसर विशेष पर आधारित आलेख को कृपया उस अवसर से कम-से-कम तीन माह पूर्व भेजें, ताकि समय रहते उसे प्रकाशन-योजना में शामिल किया जा सके।
- रचना भेजने के बाद कृपया दूरभाष द्वारा जानकारी न लें। रचनाओं का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय होगा।

हिरणा की सूझ

● मथुरा कलौनी

काली नदी के किनारे एक जंगल में मनसुख नाम का बकरा और मंजरी नाम की बकरी रहा करते थे। इसी जंगल में एक दुष्ट सियार भी रहता था। इस दुष्ट सियार ने मनसुख और मंजरी के सभी बच्चों को खा डाला था। बच्चों के वियोग में दोनों बहुत दुःखी रहा करते थे। मनसुख और मंजरी ने बहुत उपाय किए, लेकिन सब व्यर्थ। सियार बहुत ही धूर्त था। जब भी मंजरी बच्चों को जन्म देती, सियार उन्हें उठाकर ले जाता था।

एक बार फिर मंजरी ने दो सुंदर बच्चों को जन्म दिया। बच्चों के पैदा होते ही सियार के डर से उन दोनों को न तो रातों को नींद आती थी और न ही दिन में चैन। दोनों ने बच्चों को एक गुफा में छिपा रखा था। गुफा के अंदर मंजरी बच्चों की देखभाल करती थी तथा मनसुख गुफा के बाहर पहरा देता था। सियार को जब पता चला कि मंजरी ने फिर दो बच्चों को जन्म दिया है और वह अपने बच्चों के साथ गुफा में छिपी बैठी है तो उसके मुँह में पानी भर आया। वह बच्चों को खाने के लिए आया, लेकिन जब उसने गुफा के बाहर मनसुख को पहरा देते देखा तो वापस चला गया। मनसुख के सींग बहुत नुकीले थे, जिनसे सियार को बहुत डर लगता था। इसलिए वह मनसुख से भिड़ना नहीं चाहता था। सियार रोज एक या दो बार बच्चों को खाने के इरादे से आता, लेकिन मनसुख हमेशा पहरे पर तैनात मिलता। सियार के डर से मनसुख और मंजरी दूर तक चरने भी नहीं जाते थे। जब गुफा के आस-पास की घास समाप्त होने लगी तो दोनों चिंता में और भरपेट खाना न मिलने के कारण दुबले पड़ने लगे।

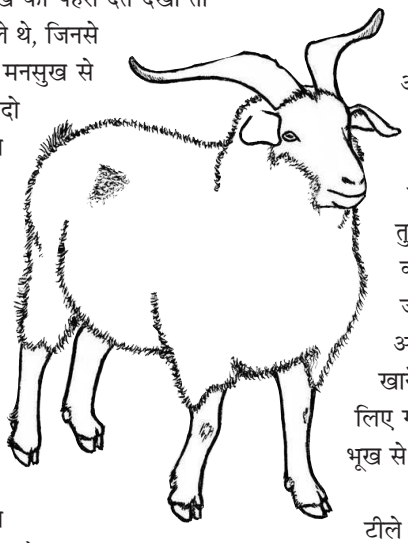

एक दिन हिरणा नाम का एक बुड्ढा बकरा उधर से निकला। हिरणा संकटग्रस्तों की सहायता के लिए जंगल-जंगल घूमता रहता था। वह बहुत ही बुद्धिमान था। उसका रंग दूधिया सफेद था तथा उसकी लंबी लहलहाती सफेद दाढ़ी भी थी। जब उसने भूख से कुम्हलाए, दुबले-पतले और चिंताग्रस्त मनसुख को देखा तो समझ गया कि मनसुख किसी विपत्ति में फँसा है।

उसने मनसुख के पास जाकर उससे कहा, ''क्यों भाई, इस हरे-भरे जंगल में तुम इतने दुबले-पतले क्यों हो? कौन सा दुख तुम्हें खाए जा रहा है?''

मूलतः नाटककार। अब तक उन्नीस नाटक, एक कहानी-संग्रह, चार लघु उपन्यास एवं पत्र-पत्रिकाओं में लगभग १५० कहानियाँ प्रकाशित। 'शब्द समाज साकार सम्मान', 'प्रमोद वर्मा सम्मान', 'गुरू घासीदास सम्मान', 'महाराज चक्रधर सम्मान', 'श्री सलेकचंद जैन स्मृति सम्मान' तथा अनेक देशों की यात्रा।

इस पर मनसुख ने अपनी दुःख भरी कहानी हिरण को सुनाई और कहा, ''हिरणा काका, तुम ही कोई ऐसा उपाय बताओ, जिससे उस दुष्ट सियार से छुटकारा मिल जाए और हम लोग भी सुख-चैन से जी सकें।''

हिरणा ने कुछ देर तक सोचा और फिर अपनी दाढ़ी हिलाते हुए कहा, ''एक उपाय है, जिससे वह दुष्ट सियार फिर तुम्हारे बच्चों की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखेगा।''

फिर हिरणा ने मनसुख को वह उपाय बताया और उससे गुफा के अंदर छिप जाने के लिए कहा। जब मनसुख गुफा में छिप गया तो हिरणा ने मंजरी से कहा, ''देखो मंजरी, मैं उस सामनेवाले टीले पर पहरा देता हूँ। जब भी मुझे सियार दिखाई पड़ेगा, मैं तुमसे पूछूँगा कि बच्चे क्यों रो रहे हैं?'' तब तुम एक काँटा लेकर बच्चों को चुभो देना, जिससे बच्चे जोर-जोर, से रोने लगें। उसके बाद तुम मुझे खूब ऊँची आवाज में कहना कि बच्चों को सियार का कलेजा खाने की आदत है। मनसुख सियार का कलेजा लाने के लिए गया हुआ है। आने में देर हो रही है, इसीलिए बच्चे भूख से शोर मचा रहे हैं।''

इस तरह मनसुख और मंजरी को समझाकर हिरणा टीले पर चढ़ गया और सियार की प्रतीक्षा करने लगा। जब सियार आता दिखाई पड़ा तो हिरणा ने खूब जोर से कहा, ''ओ मंजरी, ओ मंजरी! तुम्हारे बच्चे क्यों रो रहे हैं?''

मंजरी ने भी वैसा ही किया, जैसा उसको सिखाया गया था। काँटा चुभा-चुभाकर बच्चों को रुलाते हुए उसने कहा, ''क्या करूँ हिरणा

काका, बच्चों को सियार का कलेजा खाने की आदत है। इनके बाबू सियार मारने गए हैं। उनके आने में देर हो रही है, इसलिए बच्चे भूख से शोर मचा रहे हैं।''

हिरणा ने कहा, ''अरे, तो मुझे बताया होता, मैं ही दो-चार सियार मारकर ले आता। अब भी चिंता मत करो। सामने एक सियार आ रहा है, मैं अभी उसे मारता हूँ और उसका कलेजा निकालकर बच्चों को देता हूँ।''

सियार ने जब यह सुना तो डर के मारे दुम दबाकर भाग खड़ा हुआ।

एक बंदर ने उसको भागते हुए देखा तो उससे पूछा, ''ओ सियार दा, ओ सियार दा! ऐसे क्यों भाग रहे हो? कौन पड़ा है तुम्हारे पीछे?'' सियार हाँफते हुए बोला, ''क्या बताऊँ बंदर भाई, एक बकरा मेरे पीछे पड़ा हुआ है। वह मुझे मारकर मेरा कलेजा निकालना चाहता है, अपने बच्चों को खिलाने के लिए।''

'हो-हो-हो' हँसते हुए बंदर बोला, ''सियार दा, लगता है, तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। घास खानेवाला बकरा भी कहीं सियार को मार सकता है भला?''

सियार ने कहा, ''बंदर भाई, मैं तो अपने कानों से सुनकर आ रहा हूँ।''

बंदर ने कहा, ''सियार दा, मुझे भी तो दिखाओ इस सियार मारनेवाले बकरे को।''

डर से सिहरते हुए सियार बोला, ''नहीं भाई, मैं तो नहीं जाता। मुझे अपने प्राण नहीं गँवाने हैं।''

बंदर ने कहा, ''कैसी बातें करते हो, सियार दा! बकरा तुमको चकमा दे रहा है। डरो मत। फिर मैं भी तो तुम्हारे साथ हूँ।''

बंदर के बहुत कहने पर सियार राजी तो हो गया, लेकिन उसकी एक शंका बनी रही। वह बोला, ''कहीं ऐसा न हो कि बकरे ने हमला किया और तुम भाग निकले। मैं तो फिर अकेला ही रह जाऊँगा।''

''नहीं भागूँगा, सियार दा। अगर विश्वास न हो तो अपनी पूँछ मेरी पूँछ से बाँध लो।''

बंदर के ऐसा कहने पर सियार ने अपनी पूँछ उसकी पूँछ से बाँध ली और दोनों साथ-साथ बकरे की तरफ चले।

हिरणा ने उनको आते देख लिया था। जब वे थोड़ा पास पहुँचे तो हिरणा ने जोर से कहा, ''ओ मंजरी-ओ मंजरी! बच्चों को चुप कराओ। वह देखो, हमारे मित्र बंदरजी एक सियार को पूँछ से बाँधे ले आ रहे हैं। अभी मैं उस सियार का कलेजा निकालकर बच्चों को देता हूँ।''

इतना सुनते ही सियार ठिठक गया। हिरणा ने फिर कहा, ''अरे ओ बंदर भाई! मनसुख को कहाँ छोड़ आए? तुम तो मनसुख के साथ सात सियार मारने निकले थे। तुम तो एक ही पकड़कर ला रहे हो। बाकी क्या मनसुख मारकर ला रहा है?'' यह सुनकर सियार को पूरा विश्वास हो गया कि बंदर उसको धोखा देकर यहाँ लाया है। अब ये लोग उसे मारने वाले हैं। वह प्राणों के डर से भागा। अंधाधुंध भागा। पूँछ से बँधा बंदर भी उसके पीछे घसीटता चला गया। भागते-भागते सियार को ठोकर लगी और वह पहाड़ से नीचे लुढ़क गया। उसकी पूँछ से बँधा बंदर भी उसके साथ ही लुढ़का। लुढ़कते-लुढ़कते दोनों एक चट्टान से टकराकर मर गए।

मनसुख और मंजरी ने हिरणा दादा को धन्यवाद दिया और वह आगे चल पड़ा, फिर किसी दुखिया की सहायता करने। मनसुख और मंजरी निर्भय होकर चैन से अपने बच्चों का लालन-पालन करने लगे।

ए-४०२, फ्लोरियाना एस्टेट
कोरमंगला ब्लॉक-३, ५३ सरजापुर रोड
बेंगलुरु-५६००३४
दूरभाष : ९९००५६६४८०

नारी ईश्वर की अवतार

कविता

• रीमा मौर्या

परमेश्वर की वरदान हूँ
कुछ अलग मिट्टी से बनाया उसने
हर साँचे में ढलती हूँ
नादान बन हर बाधा का सामना करती
चहारदीवारी के अंदर रहती
घूँट-घूँट आँसुओं को पीकर
सबका गुनती सबकी सुनती
पर अपना अपने दिल में रखती
भाव मुझे है कब बहकाते

जितनी घिसती उतनी निखरती
कभी मोम सी बनकर पिघलती
कभी दीप की बाती बनकर जलती
पर खुद को अंधकार में रखकर
नहीं रहता खुद के लिए जीवन
पर चलती जाती पथ पर
संसार की उत्पत्ति का साधन
जगती की पालनहार, तारनहार
सब घर-जन का मुझसे नाता

उसके बिन घर कहाँ घर रह पाता
कहते ऐसे सब जन
नारी ही है इस धरती पर
ईश्वर की अवतार
नारी बिन सूना संसार।

ग्रा. सहादतपुर, पो. निजामाबाद,
जिला-आजमगढ़
दूरभाष : ९४५०५१८७१६

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

'साहित्य अमृत' का अप्रैल अंक प्राप्त हुआ। इसमें उषा यादव और दया दीक्षित की कहानियाँ श्रेष्ठ लगीं। कृष्ण मनु की दो लघुकथाएँ भी अच्छी हैं। बाल साहित्यकार बद्री प्रसाद वर्मा 'अनजान' की रचनाएँ पत्रिका में अकसर पढ़ने को मिलती हैं, अच्छी होती हैं। संपादकीय '२०१९ के आम चुनावों की ओर' सारगर्भित है। मैंने कई जगह इन तथ्यों को रेखांकित किया है।

—केदारनाथ 'सविता', मीरजापुर (उ.प्र.)

'साहित्य अमृत' का अप्रैल अंक प्राप्त हुआ। 'साहित्य अमृत' साहित्य एवं संस्कृति का संवाहक है और यह उसी के अनुरूप आलेख, कहानी, संस्मरण, यात्रा-वर्णन, कविताएँ आदि पाठकों को पढ़ने को प्रदान कर रहा है। संपादकीय में पूरे राष्ट्र की राजनीति को बहुत विस्तार दे रहा है। पाठक देश-समाज की गतिविधियों से रुबरू हो जाते हैं। २०१९ के चुनाव होनेवाले हैं। उसकी चर्चा भी आवश्यक है। बंकिमचंद्र चट्टोपाध्यायजी को प्रतिस्मृति के अंतर्गत याद किया। डॉ. विद्या विंदु सिंह की कहानी 'बंदनवार' में बहू रूपा ने अंत में समझदारी का कार्य कर घर में बंदनवार लगवा ही दिया। 'डायल सौ नंबर' कहानी में एक साहित्यकार महिला ने अपने कर्तव्य को अच्छी तरह निभाया है। व्यंग्य 'आम आदमी खास आदमी' भी बहुत अच्छा लगा। 'एक छत के नीचे' कहानी में बेटी अपनी माँ और सास दोनों को अपने घर रखने के लिए तैयार होती है। डॉ. मालती शर्मा का लोकपर्व पर आलेख 'हमारे पुरखों का फास्ट फूड सत्तू' बहुत अच्छा लगा। 'झूठा सच' कहानी एक संन्यासी की है, उसने भी अपना कर्तव्य निभाया और संतोष की साँस ली।

—विनोद शंकर गुप्त, हिसार

'साहित्य अमृत' का मार्च अंक मिला। 'राष्ट्रीय सुरक्षा और अंतरराष्ट्रीय संबंधों के कुछ पक्ष' विषय पर संपादकीय बहुत अच्छा एवं प्रेरक लगा। बसंत ऋतु एवं पर्वों पर अंक में प्रतिस्मृति के अंतर्गत 'ब्रज में मनुष्य ईश्वर नहीं, ईश्वर मनुष्य है' पं. विद्यानिवास मिश्र का आलेख उम्दा लगा। 'बीता जाए बसंत' कविता सामयिक एवं सरस लगी। 'भारतीय लोक संस्कृति का महापर्व : होली' आलेख में कुलभूषण सोनी ने विभिन्न स्थानों की होलियों का अच्छा वर्णन किया है। 'नवदुर्गा' पं. के.के. त्रिपाठी के 'हिंदू देवी-देवता' ग्रंथ के अंश प्रेरक सामयिक एवं अच्छे लगे। अन्य आलेख एवं कविताएँ फाग एवं होली पर होने के कारण बहुत अच्छी सरस एवं मस्ती भरी लगीं।

—विजयपाल सेहलंगिया, महेंद्रगढ़ (हरि.)

'साहित्य अमृत' का मार्च अंक प्राप्त हुआ। स्वनामधन्य संपादक महोदय की लेखनी सभी बिंदुओं पर जितनी बेबाकी से चलती है, उतना तो विचारा भी नहीं जा सकता। चूँकि होली का अवसर रहा, इसलिए एक आध लेख और कविताएँ पढ़ने को मिले। अच्छा लगा, क्योंकि पूरी पत्रिका में रंग बिखेरने का कोई लाभ भी नहीं था। रंगीन तो अंतर्मन होना चाहिए। डूबना तो उसे चाहिए रंगों में। मन के मैल का कलुष मिटना चाहिए। और यह शब्दों से थोड़े ही मिटता है, भावनाओं से मिटता है। प्रतिस्मृति में आदरणीय गुरुवर को पढ़ना सौभाग्य है, क्योंकि पत्रिका के उत्तरोत्तर विकास में उन्हीं का आशीर्वाद कार्यरत है। कुलभूषण सोनीजी के आलेख में होलीमय ब्रज के ठाठ दिखे। सुरेंद्र वर्मा ने अपने आलेख में गाय को आत्मबल और धैर्य का प्रतीक बना, उसी प्राचीन भारतीय संस्कृति को प्रदर्शित किया है, जिसके बल पर वह सनातन है। प्रणव शास्त्रीजी ने अपने आलेख में साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रित संबंध दरशाकर भारतीय समाज में साहित्य की उपयोगिता सिद्ध की है। विनोद शंकर गुप्तजी का व्यंग्य 'विज्ञापन बाजी एक कला' निश्चित तौर पर उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रचार-प्रसार का एक नमूना भर है; इसके खतरे इससे कहीं अधिक हम लोगों के दैनिक जीवन में अपनी जड़ें जमा चुके हैं।

—रजनीश कुमार त्रिवेदी, बरेली (उ.प्र.)

'साहित्य अमृत' का अप्रैल अंक प्राप्त हुआ। संपादक महोदय त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी का 'सावरकर के चार मुख अभियोग' पढ़कर ऐसा लगा मानो वे स्वतंत्रता के महान् ही नहीं, अद्‌भुत सेनानी थे। भारत माता के प्रति उनका प्रेम अत्यंत प्रशंसनीय अध्याय है, जिसे हम कभी नहीं भूल सकते। वे इस देश के सच्चे सपूत थे। आज की परिस्थितियाँ ऐसे ही महान् पुरुषों की आवश्यकता की ओर ध्यान आकर्षित करती हैं। भारत सरकार के महत्त्वपूर्ण पदों पर रहे चतुर्वेदीजी ने अपने दिल में ऐसे महान् सपूतों के प्रति जो प्रेम सँजोकर रखा है, उसकी जितनी प्रशंसा की जाए, कम है।

—धीरेंद्र प्रसाद सिंह, नई दिल्ली

'साहित्य अमृत' के अप्रैल अंक का कवर पृष्ठ आकर्षक है। खुली हवा में लहलहाती गेहूँ की बालियाँ मनोहारी हैं, जो माटी की सोंधी महक पैदा करती हैं। साथ ही संपादकीय में देश व समाज का आईना प्रस्तुत किया गया है। लोकतांत्रिक परंपरा में जनता अपने देश का भविष्य तय करती है। इस वर्ष के उप चुनावों में जो चित्र सामने आया है, उससे राजनीतिक फलक में हलचल मच गई है। वर्ष २०१९ के आम चुनाव पर संपादकजी की बेबाक टिप्पणी जनमत के पक्ष में है। पढ़ने से लगा जनता की आवाज है। वहीं आशारानी व्होरा ने 'वंदे मातरम्' के उद्‌घोषक महान् लेखक बंकिमचंद्र चटोपाध्याय के जीवन-वृत्त पर ज्ञानवर्धक जानकारी दी है। कहानियों में विद्या विंदु सिंह की रचना 'बंदनवार' ने मर्म को छू लिया। बदले परिवेश में आधुनिक बहुएँ बाह्य दुनिया से कितनी अलग हो गई हैं कि अपने सास, ससुर व पति की उपेक्षा में आत्मसुख ढूँढ़ती हैं। 'आज अइहें मोर राम हो शबरी के घरवा, केसिया से अपने शबरी बहारे दुवारवा···' पारंपरिक गीत मनभावन लगा। उषा यादव की रचना 'एक छत के नीचे', रमाकांत शर्मा की 'जूते की नोंक पर', बद्री प्रसाद वर्मा 'अनजान' की बाल रचना 'ओवरकोट' अच्छी लगी। लघुकथा 'सार्थक सोच' पठनीय है। रचनाकार कृष्ण मनु को हार्दिक बधाई। फरवरी अंक में तुलसी देवी तिवारी की रचना 'राख के नीचे' पढ़कर मन विभोर हो उठा। उसी अंक में लेखक जसवीर चावला की कहानी 'सियाचीन का पेड़' अच्छी लगी। पत्रिका की अन्य सामग्री भी पठनीय एवं ज्ञानवर्धक है।

—जनकदेव जनक, धनबाद (झार.)

वर्ग पहेली (१५२)

अगस्त २००५ अंक से हमने '**वर्ग पहेली**' प्रारंभ की, जिसे सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् एवं ज्ञान-विज्ञान की अनेक पुस्तकों के लेखक **श्री विजय खंडूरी** तैयार कर रहे हैं। हमें विश्वास है, यह पाठकों को रुचिकर लगेगी; इससे उनका हिंदी ज्ञान बढ़ेगा और पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे तथा पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा—

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ ३१ मई, २०१८ तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध उत्तरवाले पत्रों में से ड्रॉ द्वारा दो विजेताओं का चयन करके उन्हें दो सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कार विजेताओं के नाम-पते जुलाई २०१८ अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने उत्तर '**वर्ग पहेली**', **साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२** के पते पर भेजें।

वर्ग पहेली (१५०) का शुद्ध हल

१अं	त	२रं	३ग	■	४ता	५र	को	६ल
ध	■	७गी	ति	८रू	प	क	■	घु
९वि	१०मा	न	■	मा	■	११म	म	ता
१३श्वा	न	■	१४प	ल	१५क	■	नो	■
१६स	म	झौ	ता	■	१७म	र्मा	ह	१८त
■	नौ	■	१९का	२०बु	ल	■	२१र	न
२२प	ती	२३ला	■	लं	■	२४प	ता	का
द	■	२५द	२६न	द	२७ना	ना	■	स
२८क	ठि	ना	ई	■	२९च	ह	ब	च्चा

★ पुरस्कार विजेता ★

१. **सुश्री मिथलेश कुमारी**
C/o श्री जगदीश सरूप एडवोकेट
आनंदीदास स्ट्रीट, कन्नौज (उ.प्र.)
दूरभाष : ९१९३३६९५५८

२. **डॉ. विनीता सहल**
ए-२, रत्न समूह, कॉ.हा.सो.
न्यू डी.एन. नगर, अंधेरी (प.)
मुंबई-४०००५३ (महा.)
दूरभाष : ९८२०३६१४७८

पुरस्कार विजेताओं को हार्दिक बधाई।

वर्ग-पहेली १५० के अन्य शुद्ध उत्तरदाता हैं—सर्वश्री विजयपाल सेहलंगिया, खुशी खिच्ची (महेंद्रगढ़), कविता जैन, सुभाष शर्मा, दिनकर सहल (दिल्ली), सी.आर. नाहड़िया (नारनौल), रजनीश कुमार त्रिवेदी (बरेली), फकीरचंद ढुल (कैथल), रामकिशन पँवार (हनुमानगढ़), रुक्मणी संगल (पटियाला), राम प्रकाश राय (गोरखपुर), नवीन कांडपाल (अल्मोड़ा), सुरेश सोनी (उदयपुर), मनीष मंडल (कटनी), सुनीता शर्मा (गुरुग्राम)।

बाएँ से दाएँ—

१. शिव, शंकर (४)
४. नुकसानदेह (४)
७. प्रसन्नता देनेवाला (५)
९. तबादला, छोटा बादल (३)
११. डाल, शाखा (३)
१३. मनोहर, परमात्मा, ईश्वर (२)
१४. तिथि (३)
१६. बुद्धि, सूझ-बूझ (२)
१७. ज्ञापक, संकेत देनेवाला (३)
१८. काफिले या पथिकों का कुछ समय विश्राम के लिए मार्ग में कहीं ठहरना (३)
१९. भस्म, खाक (२)
२०. गरम होना (३)
२२. किनारा (२)
२४. पुरस्कार (३)
२६. खफ्त, धुन (३)
२७. एक बड़ी संख्या (२,३)
३०. —¯— करना : समाप्ति (२-२)
३१. खेलने या मनोरंजन करने का स्थान (४)

ऊपर से नीचे—

१. कब्र पर बना गुंबद (४)
२. घर के दरवाजे की चौखट में नीचे की लकड़ी (३)
३. साल (२)
४. पराजय (२)
५. नजदीक, पास में (३)
६. सेना का व्यूहन करने का ढंग (४)
८. कर्नाटक और तमिलनाडु से बहनेवाली एक बड़ी नदी (३)
१०. डर जाना (२,३)
१२. जो एक ही देश के रहनेवाले हों (५)
१४. शक्ति, सामर्थ्य (३)
१५. अनावश्यक वस्तु का काम में आना (३)
१९. जरा-सा, बहुत थोड़ा (२-२)
२१. शत्रु से रक्षा का स्थान (३)
२३. सिक्के ढालने और मुद्रांकित करने का स्थान (४)
२५. सहायता (३)
२६. सीधी और सच्ची स्त्री (३)
२८. स्वच्छ, निर्मल (२)
२९. नकली, झूठा (२)

वर्ग पहेली (१५१) का हल अगले अंक में।

वर्ग पहेली (१५२)

१		२	३	■	४	५		६
	■	७		८			■	
९	१०		■		■	११	१२	
१३		■	१४		१५	■	१६	
■	१७			■	१८			■
१९		■	२०	२१		■	२२	२३
२४		२५	■		■	२६		
	■	२७	२८		२९		■	
३०				■	३१			

प्रेषक का नाम : .....

पता : .....

.....

.....

दूरभाष : .....

अटलजी पर तीन पुस्तकें लोकार्पित

१० अप्रैल को नई दिल्ली के कॉन्स्टीट्यूशन क्लब में उपराष्ट्रपति मान. एम. वेंकैया नायडू ने पूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी पर केंद्रित तीन पुस्तकों 'जननायक अटलजी' (किंशुक नाग), 'सर्वप्रिय अटलजी' (डॉ. सुरेश चंद) और 'अटल जीवनगाथा' (डॉ. रश्मि) का लोकार्पण किया। प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित इन पुस्तकों के लोकार्पण समारोह में विशिष्ट अतिथि के रूप में केंद्रीय मंत्री विजय गोयल के अलावा अटल बिहारी वाजपेयी के पूर्व ओ.एस.डी. श्री अशोक टंडन भी मौजूद थे।

अपने उद्‌बोधन में उपराष्ट्रपतिजी ने भारतीय राजनीति में वाजपेयी के योगदान को रेखांकित करते हुए कहा कि अटलजी ने पाँच वर्ष पहली गैर-कांग्रेसी सरकार का सफल नेतृत्व किया। उन्होंने परमाणु परीक्षण कर विश्व को भारत की सामर्थ्य और शक्ति से परिचित कराया। वे जितने बड़े राजनेता हैं, उतने ही बड़े कवि, लेखक, चिंतक और विचारक भी। अपनी ओजपूर्ण वाणी और विशिष्ट चुटीली शैली के कारण लोग दूर-दूर से पैसा खर्च करके उन्हें सुनने आते थे। अटलजी सही मायने में एक विराट पुरुष हैं और भारतीय राजनीति के अप्रितम हस्ताक्षर हैं। केंद्रीय मंत्री विजय गोयल ने कहा कि अटलजी की प्रसिद्धि इतनी थी कि वे जहाँ जाते थे, वहाँ के लोग कहते थे कि अटलजी का विशेष स्नेह उन्हें प्राप्त है। उन्होंने देश में शुचिता की राजनीति स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिक निभाई।

इस अवसर पर अटल बिहारी वाजपेयी की चुनी हुई कविताओं की एक प्रदर्शन भी लगी थी, जिसे देखकर उपराष्ट्रपति भावुक हो गए और एक कविता गुनगुनाने लगे—'हार नहीं मानूँगा, रार नहीं ठानूँगा, काल के कपाल पर लिखता मिटाता हूँ। गीत नया गाता हूँ।' समारोह में केंद्रीय मंत्री अर्जुनराम मेघवाल, सांसद भुवनचद्र खंडूरी, नरेंद्र जाधव सहित अनेक गण्यमान्य जन उपस्थित थे। □

'भवदीय' पुस्तक लोकार्पित

१९ अप्रैल को दिल्ली के सिविक सेंटर में डॉ. मुकर्जी स्मृति न्यास द्वारा प्रकाशित 'भवदीय' ग्रंथ (केदारनाथ साहनीजी के पत्रों का संकलन) का लोकार्पण मुख्य अतिथि भारत के उपराष्ट्रपति मान. श्री एम.वेंकैया नायडू एवं विशिष्ट अतिथि केंद्रीय मंत्री डॉ. हर्षवर्धन एवं भारतीय जनता पार्टी के राष्ट्रीय महामंत्री श्री रामलालजी के कर-कमलों से संपन्न हुआ। इस अवसर पर अतिथियों के अलावा प्रो. विजय कुमार मलहोत्रा ने अपने विचार व्यक्त किए। □

'अमृत महोत्सव' एवं लोकार्पण संपन्न

२ अप्रैल को सुलभ इंटरनेशनल सोशल सर्विस ऑर्गनाइजेशन, सुलभ ग्राम, नई दिल्ली के तत्त्वावधान में सुलभ संस्था के संस्थापक पद्‌मभूषण डॉ. विंदेश्वर पाठक के ७५वें जन्मदिवस के उपलक्ष्य में 'अमृत महोत्सव' का आयोजन किया गया। जिसमें हिंदी के यशस्वी कवि डॉ. राहुल द्वारा रचित 'विंदेश्वर विभा' प्रबंधकाव्य पुस्तक इन्हें सादर-सम्मानार्थ भेंट की गई। प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित यह पुस्तक डॉ. पाठक की विश्वस्तरीय प्रतिष्ठा और उनकी रचनात्मक उपलब्धियों का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। इस अवसर पर संपूर्ण देश से सुलभ से संबद्ध अधिकारी, शुभचिंतक, भारतीय प्रशासनिक सेवा के पूर्व अधिकारी, सैकड़ों महान् विभूतियों के साथ अनेक प्रतिष्ठित साहित्यकार विशेषकर सर्वश्री अमोला पाठक, एस.पी. सिंह, सरोजनी प्रीतम, एस.पी.एन. सिन्हा, सुरेश नीरव, मधु मिश्रा, सविता चड्‌ढा, धीरेंद्र प्रसाद सिंह, हरिसिंह पाल, सुमन चहार, इंद्राणी मजूमदार, ललित कुमार, अशोक कुमार ज्योति, मणिभूषण मिश्र, आरती अरोड़ा, तरुण शर्मा, मधु श्रीवास्तव और कई अन्य सामाजिक-सांस्कृतिक संस्थानों के गण्यमान्य व्यक्तियों की गरिमामयी उपस्थिति रही। डॉक्टर पाठक के सम्मान में सुलभ संस्था की छात्र-छात्राओं के सांस्कृतिक कार्यक्रमों की प्रस्तुति कर सभी आगंतुकों का मन मोह लिया। संचालन सुश्री याचिका ने किया। □

'असल से तो नकल अच्छी' कृति विमोचित

विगत दिनों साहित्य मंथन के तत्त्वावधान में डॉ. शिव शर्मा की अध्यक्षता एवं श्री यशवंत व्यास के मुख्य आतिथ्य में प्रसिद्ध व्यंग्यकार श्री शशांक दुबे के व्यंग्य-संग्रह 'असल से तो नकल अच्छी' का लोकार्पण किया गया, जिसमें सर्वश्री बी.एल. आच्छा, पिलकेंद्र अरोरा, ओम वर्मा, ब्रजेश कानूनगो, रमेशचंद्र शर्मा ने रचना पाठ किया। संचालन डॉ. संदीप नाडकर्णी ने किया तथा आभार डॉ. हरीशकुमार सिंह ने व्यक्त किया। □

पुस्तक विमोचन समारोह संपन्न

२८ फरवरी को दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी के सभागार में इंद्रप्रस्थ साहित्य भारती की ओर से आयोजित समारोह में गोवा की राज्यपाल श्रीमती मृदुला सिन्हा के मुख्य आतिथ्य में डॉ. सीतेश आलोक की तीन पुस्तकों 'चलती चक्की', 'आधारशिला' तथा 'भावार्थ गीता' का विमोचन किया गया, जिसमें डॉ. सुरेश ऋतुपर्ण एवं डॉ. रामशरण गौड़ ने अपने विचार व्यक्त किए। □

'तेरा होना तलाशूँ' पुस्तक लोकार्पित

१८ अप्रैल को अलवर में श्री विनय मिश्र के दूसरे गजल संग्रह 'तेरा होना तलाशूँ' के लोकार्पण समारोह के मुख्य अतिथि आलोचक प्रो. असगर वजाहत थे। कवि विनय मिश्र ने अपनी गजलों का पाठ किया एवं अपनी गजल यात्रा से लेकर हिंदी कविता तथा हिंदी में गजल की विकास यात्रा को विस्तार से बताया। इस अवसर पर सर्वश्री जीवन सिंह, दिनेश कुमार, शंभुनाथ तिवारी, रामकुमार कृषक, ज्योत्सना प्रवाह, लवलेश दत्त, हरिशंकर शर्मा आदि ने विनय मिश्र को बधाई दी एवं अपने विचार प्रकट किए। संचालन डॉ. सीमा विजयवर्गीय एवं आभार प्राचार्य डॉ. रमेशचंद्र खंडूडी ने व्यक्त किया। □

लोकार्पण समारोह संपन्न

१८ मार्च को पटना में बी.आई.ए. सभागार में श्री राम गोपाल पांडे की अध्यक्षता एवं डॉ. संतोष दीक्षित के मुख्य आतिथ्य में श्री अशोक प्रजापति के कहानी-संग्रह 'मंगेतर का मोबाइल' का लोकार्पण किया गया, जिसमें सर्वश्री रामयतन यादव, सिद्धेश्वर, राज किशोर राजन, अरविंद पासवान, उषा ओझा, जया अग्निहोत्री ने अपने विचार व्यक्त किए। धन्यवाद श्री राजेश शुक्ला ने ज्ञापित किया। □

'चंबल में बंदूकें गांधी के चरणों में' कृति विमोचित

२२ मार्च को भोपाल में माधवराव सप्रे स्मृति समाचार-पत्र संग्रहालय के सभागार में श्री श्रवण गर्ग की अध्यक्षता में 'चंबल की बंदूकें गांधी के चरणों में' कृति का विमोचन किया गया। मुख्य अतिथि डॉ. एस.एन.

सुब्बाराव एवं विशिष्ट अतिथि डॉ. आर.एल.एस. यादव तथा प्रो. श्याम बिल्लोरे थे। ☐

लोकार्पण समारोह संपन्न

विगत दिनों नई दिल्ली की पोयट्री सोसाइटी एवं आई.आई.सी. के संयुक्त तत्त्वावधान में वरिष्ठ साहित्यकार प्रो. रामदरश मिश्र की अध्यक्षता एवं जनसत्ता के संपादक श्री मुकेश भारद्वाज के मुख्य आतिथ्य में श्री नरेंद्र मोहन की कविताओं के दो खंडों 'नरेंद्र मोहन की कविता : जिंदगी का पर्याय' एवं 'नरेंद्र मोहन : कविता समग्र' का लोकार्पण किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री लवलीन खडानी, ऋतु मेहरा, प्रताप सहगल, पवन माथुर, रेखा सेठी ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री बृजेंद्र त्रिपाठी ने किया। ☐

'कुंभ : मंथन का महापर्व' कृति लोकार्पित

२९ मार्च को नई दिल्ली के मावलंकर सभागार में दिव्य प्रेम सेवा मिशन के २१ वर्ष पूरे होने पर सेवा-समर्पण-सम्मान समारोह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सह सरकार्यवाह डॉ. कृष्ण गोपाल के मुख्य आतिथ्य एवं श्री जवाहरलाल कौल की अध्यक्षता में श्री संजय चतुर्वेदी द्वारा संपादित एवं प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित कृति 'कुंभ : मंथन का महापर्व' का लोकार्पण किया गया, जिसमें विशिष्ट अतिथि भारत सरकार में वित्त राज्य मंत्री श्री शिवप्रताप शुक्ल व वरिष्ठ पत्रकार श्री उपेंद्र राय थे। ☐

'परिवर्तन अभी शेष है' कृति लोकार्पित

२७ मार्च को रायबरेली में श्री सूर्यनारायण दुबे 'सूरज' की अध्यक्षता में सुश्री आरती जायसवाल की कृति 'परिवर्तन अभी शेष है' का लोकार्पण किया गया, जिसमें सर्वश्री पृथ्वीनाथ पांडेय, किरण शुक्ल, रजनीकांत वर्मा, परमानंद मिश्र, आनंदस्वरूप श्रीवास्तव, अरविंद जायसवाल, चंद्रप्रकाश शुक्ल, देवेंद्र पांडेय, दिनेश मिश्र, जय चक्रवर्ती, राम सनेही ने विचार व्यक्त किए। संचालन डॉ. संतलाल ने किया। ☐

'एक पल अपल' कृति लोकार्पित

विगत दिनों जमशेदपुर में डॉ. श्रीकृष्ण सिन्हा संस्थान में बेनीपुरी साहित्य परिषद् के तत्त्वावधान में श्री हरिवल्लभ सिंह आरसी की अध्यक्षता में श्री राजदेव सिन्हा की काव्य-कृति 'एक पल अपल' का लोकार्पण सर्वश्री शांति सुमन एवं संजय पंकज द्वारा किया गया। संचालन श्री वरुण प्रभात ने किया। ☐

'नदी कहना जानती है' कृति लोकार्पित

विगत दिनों रायबरेली के लेखागार सभागार में डॉ. ओम प्रकाश सिंह की अध्यक्षता में श्री राम नारायण रमण के सद्य:प्रकाशित नवगीत संग्रह 'नदी कहना जानती है' का लोकार्पण किया गया, जिसमें सर्वश्री अवनीश सिंह चौहान, नाज प्रतापगढ़ी, वेद प्रकाश, विनय भदौरिया, आनंद स्वरूप श्रीवास्तव, आर.पी. राम, शिवकुमार शास्त्री, संतोष डे, राजेंद्र राजन, प्रमोद प्रखर, शमसुद्दीन अजहर, बृजेश त्रिपाठी, दुर्गेश, निशिहर, दिलबर, राजेश चंद्रा ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री जय चक्रवर्ती ने किया तथा आभार श्री रमाकांत ने व्यक्त किया। ☐

'बनारस की हिंदी गजल' कृति लोकार्पित

२५ मार्च को सारनाथ, वाराणसी के महाबोधि सोसाइटी ऑफ इंडिया के सभागार में डॉ. हरिराम द्विवेदी की अध्यक्षता एवं डॉ. जीवन सिंह के मुख्य आतिथ्य में श्री विनय मिश्र की गजल कृति 'बनारस की हिंदी गजल' का लोकार्पण किया गया, जिसमें सर्वश्री पंकज गौतम, देवेंद्र आर्य, नित्यानंद श्रीवास्तव ने अपने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर काव्य पाठ आयोजित किया गया, जिसमें सर्वश्री लोलार्क द्विवेदी, वाचस्पति, रमेश प्रसाद, शिवली भंते, के. सुमेध थेरो, मीनाक्षी मिश्र, ज्योत्स्ना प्रवाह, केशव शरण, दानिश जमाल, शिव कुमार पराग, वशिष्ठ नारायण त्रिपाठी, श्याम किशोर पांडेय, गौतम अरोड़ा सरस, अर्चना अवस्थी, शशि श्रीवास्तव, मुकेश मिश्र, राजेंद्र प्रसाद पांडेय, नरोत्तम शिल्पी, सिद्धनाथ शर्मा, अशोक सिंह, रामानंद तिवारी ने काव्य पाठ किया। संचालन श्री धर्मेंद्र गुप्त 'साहिल' ने किया तथा आभार डॉ. मंजरी पांडेय ने व्यक्त किया। ☐

'कुछ अल्प विराम' कृति लोकार्पित

३० मार्च को नई दिल्ली के इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के सदस्य सचिव डॉ. सच्चिदानंद जोशी की प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित कृति 'कुछ अल्प विराम' का लोकार्पण किया गया। साथ ही प्रख्यात कहानीकार श्रीमती मालती जोशी को पद्मश्री से सम्मानित किए जाने के उपलक्ष्य में अभिनंदन कार्यक्रम भी आयोजित किया गया, जिसमें सर्वश्री अच्युतानंद मिश्र, रामबहादुर राय, सूर्यबाला, शांतनु जोशी, अनीता सक्सेना, राजीव, सविता खान, सच्चिदानंद जोशी ने अपने विचार व्यक्त किए। ☐

उत्तर प्रदेश का वार्षिकोत्सव संपन्न

१८ मार्च को उत्तर प्रदेश में श्री महेश चंद्र की अध्यक्षता में बीरबल साहनी पुरावनस्पति विज्ञान संस्थान के सभागार में भारतीय भाषा प्रतिष्ठापन राष्ट्रीय परिषद् का वार्षिकोत्सव आयोजित किया गया। मुख्य अतिथि श्री गोपाल चतुर्वेदी एवं विशिष्ट अतिथि श्री सुरेश कुमार श्रीवास्तव थे। इस अवसर पर सर्वश्री विष्णु गिरि गोस्वामी, निमिष कपूर, विनय कुमार अवस्थी, शेरसिंह बिष्ट, श्याम प्रकाश देवपुरा को सम्मानित किया गया तथा पर 'राजभाषा हिंदी : उद्भव, विकास एवं भविष्य की संभावनाएँ' विषय पर सम्मानित विद्वानों सहित डॉ. मोहन लाल अग्रवाल ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री राजेश शर्मा ने किया। ☐

पुरस्कार वितरण समारोह संपन्न

२५ मार्च को गंगतोक के प्रेस क्लब में अखिल भारतीय शिक्षा संस्थान, विद्या भारती सिक्किम प्रांत द्वारा श्री छुल्टिम भोटिया की अध्यक्षता एवं श्री हरिशंकर शर्मा के मुख्य आतिथ्य में भाऊराव देवरस छात्र पुरस्कार वितरण समारोह आयोजित किया गया। इस अवसर पर १२ विद्यार्थियों को चार हजार रुपए, ४ विद्यार्थियों को पाँच हजार रुपए एवं १ विद्यार्थी को दस हजार रुपए की सहयोग राशि से सम्मानित किया गया। संचालन श्री सूर्य धिताल ने किया तथा धन्यवाद श्री पवित्र दाहाल ने ज्ञापित किया। ☐

अंतरराष्ट्रीय परिसंवाद आयोजित

२१ फरवरी को भारत विद्या विभाग, मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान संकाय जाग्रेब विश्वविद्यालय तथा भारतीय दूतावास क्रोएशिया के संयुक्त तत्त्वावधान में 'यूरोप के मध्यभूभागीय विश्वविद्यालयों में हिंदी अध्ययन एवं अध्यापन : स्वरूप एवं दृष्टि' विषय पर एक दिवसीय अंतरराष्ट्रीय परिसंवाद का आयोजन श्री रवींद्रनाथ मिश्र की अध्यक्षता में किया गया। मुख्य अतिथि श्री संदीप कुमार, तान्या बुकोवचान एवं इवान आंद्रियानिच ने अपने विचार व्यक्त किए। डॉ. इवान आंद्रियाचिन की अध्यक्षता में आयोजित

प्रथम एवं द्वितीय सत्र में सर्वश्री अरुण कुमार मिश्र ने 'स्लोवेनिया : हिंदी शिक्षण, समस्याएँ एवं संभावनाएँ', मारियाना यांजिंच ने 'आज हिंदी : कैसी और क्यों', कटरीना कातविच ने 'रोमानी भाषा सीखते समय हिंदी ज्ञान में वृद्धि', मारिया नेगयेसी ने 'हंगरी में हिंदी अध्ययन का इतिहास' तथा विश्या ग्राबोविच ने 'हिंदी की पाठ्य पुस्तक एवं अन्य भाषाएँ : तुलनात्मक अवलोकन' विषय पर अपने आलेखों का पठन किया। प्रो. मारिया नेगयेसी की अध्यक्षता में आयोजित तृतीय सत्र में सर्वश्री मंदार पुरंदरे ने 'हिंदी गीत ऐड/ओडे द्वारा हिंदी शिक्षण', रवींद्रनाथ मिश्र ने 'क्रोएशिया में हिंदी अध्ययन-अध्यापन : स्वरूप एवं दृष्टि', सबीना पॉपरलन ने 'रोमानिया में हिंदी शिक्षण' विषय पर विचार व्यक्त किए। □

६९वाँ राजस्थान दिवस समारोह संपन्न

१ अप्रैल को कोलकाता के ओसवाल भवन में राजस्थान परिषद् द्वारा आयोजित ६९वें राजस्थान दिवस समारोह में 'गविलो राजस्थान' स्मारिका का लोकार्पण श्री बनवारीलाल सोती की अध्यक्षता में किया गया। इस अवसर पर मुख्य अतिथि श्री गजेंद्रसिंह शेखावत, विशिष्ट अतिथि सर्वश्री संदीप काबरा एवं यूनुस खान ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री बंशीधर शर्मा ने किया तथा धन्यवाद श्री अरुण प्रकाश मल्लावत ने किया। □

व्याख्यानमाला आयोजित

२९ मार्च को भोपाल के हिंदी भवन में 'स्त्री सर्जनात्मकता : एक यात्रा' विषय पर व्याख्यान तथा रचना पाठ का आयोजन श्री उदयन वाजपेयी की अध्यक्षता एवं श्री मनोज कुमार श्रीवास्तव के मुख्य आतिथ्य में किया गया। इस अवसर पर सुश्री रश्मि रमानी, प्रज्ञा रावत, संतोष श्रीवास्तव, निर्मला भुराड़िया, सुमन सिंह, रेखा कस्तवार, नीलेश रघुवंशी, सविता भार्गव, संगीता गुंदेचा, वीणा सिन्हा, श्रुति कुशवाहा तथा द्रौपदी चंदनानी ने कविता-पाठ किया। संचालन सुश्री उर्मिला शिरीष ने किया। □

सम्मान समारोह संपन्न

२८ मार्च को दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी द्वारा प्रो. बलवंत जानी की अध्यक्षता में पत्रिका संपादक सम्मान समारोह का आयोजन किया गया, जिसके मुख्य अतिथि केंद्रीय संस्कृति राज्यमंत्री डॉ. महेश शर्मा एवं विशिष्ट अतिथि डॉ. राजनारायण शुक्ल थे। इस अवसर पर संस्कृत भाषा की श्रेणी में प्रथम पुरस्कार डॉ. रमाकांत शुक्ल को, द्वितीय पुरस्कार श्रीमती मंजू शर्मा को, उर्दू भाषा की श्रेणी में प्रथम पुरस्कार जनाब इफ्तिखार इमाम सिद्दीकी को, द्वितीय पुरस्कार जनाब आदिल रजा मंसूरी को, पंजाबी भाषा की श्रेणी में प्रथम पुरस्कार श्री सुशील दोसांझ को तथा द्वितीय पुरस्कार डॉ. गुरइकबाल सिंह को प्रदान किया गया। प्रथम पुरस्कार के अंतर्गत एक लाख रुपए एवं द्वितीय पुरस्कार के अंतर्गत पचहत्तर हजार रुपए की राशि, प्रशस्ति-पत्र एवं शॉल प्रदान कर सम्मानित किया गया। □

काव्य-संध्या आयोजित

३ अप्रैल को पटना के कामता सदन स्थित डॉ. शंकर दयाल सिंह पुस्तकालय में डॉ. कुणाल कुमार की अध्यक्षता एवं पद्मश्री उषा किरण खान के मुख्य आतिथ्य में काव्य-संध्या का आयोजन किया गया, जिसमें सर्वश्री भगवती प्रसाद द्विवेदी, नसीम अख्तर, हरेंद्र सिन्हा, रानी श्रीवास्तव, भावना शेखर, सिद्धेश्वर, प्रकाश महतो वियोगी ने काव्य पाठ किया। धन्यवाद श्री वीरेंद्र कुमार सिंह ने ज्ञापित किया। □

कवयित्री सम्मेलन आयोजित

२३ मार्च को नई दिल्ली के बाल भवन में प्रसिद्ध साहित्यकार श्रीमती नासिरा शर्मा की अध्यक्षता में अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के उपलक्ष्य में कवयित्री सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें मुख्य अतिथि दिल्ली की महापौर श्रीमती कमलजीत सहरावत एवं श्रीमती कुसुम मित्तल, सर्वश्री महेश चंद्र शर्मा, अंजु जैन, सरिता शर्मा, ममता किरण, रजना विमल, कीर्ति माथुर, सरोज सिंह, हेमलता माहेश्वर ने काव्य पाठ किया। संचालन श्रीमती इंदिरा मोहन ने किया। □

मूल्यांकन कवि-गोष्ठी संपन्न

३० मार्च को हैदराबाद में गीत चाँदनी के तत्त्वावधान में हिंदी प्रचार सभा हैदराबाद के सभागृह में २५८वीं मूल्यांकन कवि-गोष्ठी का आयोजन डॉ. प्रेमलता श्रीवास्तव की अध्यक्षता में किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री कुमुद बाला, ओमप्रकाश श्रीवास्तव 'पंछी', दयाकृष्ण गोयल, उमा देवी सोनी, दिनेश अग्रवाल, कुंज बिहारी गुप्ता, सूरज प्रसाद सोनी ने काव्य-पाठ किया। संचालन श्री गोविंद अक्षय ने किया तथा धन्यवाद ज्ञापन सुश्री रत्नकला मिश्र ने किया। □

१५वाँ कवि-सम्मेलन संपन्न

विगत दिनों उज्जैन में सरल काव्यांजलि का १५वाँ कवि-सम्मेलन डॉ. वेदप्रकाश व्यास की अध्यक्षता में आयोजित किया गया। मुख्य अतिथि डॉ. रमणसिंह सिकरवार एवं विशिष्ट अतिथि सर्वश्री रामराजेश मिश्र, अनिल सिंह एवं शादाब अहमद सिद्दीकी थे। इस अवसर पर सर्वश्री अरविंद त्रिवेदी 'सनन' को 'इंजी. प्रमोद शिरढोकर 'बिरहमन' स्मृति सम्मान', विजयकुमार सुखवानी को 'श्री सहजराम वाधवानी स्मृति सम्मान', सुभाष कुआंरा को 'शरदचंद्र मोरे स्मृति सम्मान', रेणु इनानी को 'डॉ. वासुदेव रावल स्मृति सम्मान', दौलतसिंह दरबार को 'रामेश्वर प्रचंड स्मृति सम्मान', मोहम्मद आरिफ को 'श्रीमती आशा सुपेकर स्मृति सम्मान' एवं नासिर बेलिम को 'श्री डी.जी. पोल स्मृति सम्मान' से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री अशोक भाटी, संतोष सुपेकर, मोहन बैरागी ने काव्य-पाठ किया। संचालन श्री राजेंद्र देवधरे 'दर्पण' एवं श्री नितिन पोल ने किया तथा आभार श्री हरदयाल सिंह ठाकुर ने व्यक्त किया। □

सम्मान समारोह संपन्न

८ अप्रैल को वाराणसी में साहित्यिक संघ द्वारा अग्रवाल कन्या इंटर कॉलेज में श्री भगीरथ प्रसाद त्रिपाठी 'वागीश शास्त्री' की अध्यक्षता में 'सोच विचार' के १११वें अंक 'डॉ. रामदरश मिश्र एकाग्र' का लोकार्पण किया गया, जिसके मुख्य अतिथि डॉ. रामदरश मिश्र तथा विशिष्ट अतिथि श्री ओ.एन. सिंह व प्रो. राजेश्वर आचार्य थे। सर्वश्री स्मिता मिश्र, अशोक अग्रवाल, जयशीला पांडेय, विजयेंद्र नाथ मिश्र ने अपने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर डॉ. वागीश शास्त्री को सर्वश्री निरंकार सिंह, श्रीराम माहेश्वरी, वशिष्ठ अनूप, मुक्ता, चंद्रकला त्रिपाठी, भगवंती सिंह, माधवी तिवारी द्वारा उत्तरीय, पुष्पगुच्छ एवं स्मृति-चिह्न भेंट कर सम्मानित किया गया। संचालन डॉ. जितेंद्र नाथ मिश्र ने किया तथा धन्यवाद श्री वासुदेव उबेराय ने ज्ञापित किया। □

सम्मान समारोह संपन्न

विगत दिनों नई दिल्ली में एस.जी.टी.वि.वि. द्वारा श्री अच्युतानंद मिश्र

की अध्यक्षता में सम्मान समारोह आयोजित किया गया, जिसमें श्री मनमोहन सिंह चावला एवं श्रीमती मधु प्रीत चावला द्वारा प्रख्यात साहित्यकार पद्मश्री श्रीमती मालती जोशी का शॉल एवं स्मृति चिह्न भेंट कर सम्मान किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री रामबहादुर राय, सच्चिदानंद जोशी, राहुल देव ने अपने विचार व्यक्त किए। धन्यवाद एस.जी.टी.वि.वि. के कुलपति द्वारा ज्ञापित किया गया। □

सम्मान समारोह संपन्न

८ अप्रैल को बेंगलुरु के कमला गोइन्का फाउंडेशन द्वारा दिए जानेवाले सम्मानों में श्री चिरंजीव सिंह की अध्यक्षता में इक्कीस हजार रुपए की राशि के अंतर्गत 'पिताश्री गोपीराम गोइन्का हिंदी-कन्नड़ अनुवाद पुरस्कार' से श्री प्रभाशंकर प्रेमी को, 'बालकृष्ण गोइन्का अनूदित साहित्य पुरस्कार' से डॉ. पी.के. बालसुब्रह्मण्यन को, 'सत्यनारायण गोइन्का अनूदित साहित्य पुरस्कार' से डॉ. सी.जी. राजगोपाल को, 'बाबूलाल गोइन्का हिंदी साहित्य पुरस्कार' से डॉ. के. वनजा को सम्मानित किया गया। सम्मानस्वरूप राशि, प्रतीक-चिह्न, शॉल, श्रीफल एवं पुष्पमाला प्रदान की गई। संचालन डॉ. आदित्य शुक्ल ने किया तथा धन्यवाद श्रीमती सरोजा व्यास ने ज्ञापित किया। □

सम्मान समारोह संपन्न

१५ अप्रैल को कोलकाता में श्री बड़ाबाजार कुमारसभा पुस्तकालय के तत्त्वावधान में स्थानीय ओसवाल भवन सभागार में प. बंगाल के राज्यपाल श्री केशरीनाथ त्रिपाठी की अध्यक्षता में २९वें डॉ. हेडगेवार प्रज्ञा सम्मान समारोह आयोजित किया गया, जिसमें प्रेमचंद साहित्य के विशेषज्ञ वरिष्ठ समालोचक डॉ. कमलकिशोर गोयनका को सम्मान स्वरूप श्रीफल, शॉल, एक लाख रुपए की राशि एवं मानपत्र देकर सम्मानित किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री ब्रजकिशोर शर्मा, अवनिजेश अवस्थी, जिष्णु बसु, सज्जन कुमार तुल्स्यान, ओम प्रकाश मिश्र ने अपने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर श्री केशरीनाथ त्रिपाठी द्वारा डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र को शॉल ओढ़ाकर सम्मानित किया गया तथा डॉ. आशा त्रिपाठी की पुस्तक 'रामायण में राजनीति' का लोकार्पण भी किया गया। संचालन डॉ. प्रेमशंकर त्रिपाठी ने किया तथा धन्यवाद श्री विमल लाठ ने ज्ञापित किया। □

पुरस्कार घोषित

१६ मार्च को भोपाल के साहित्य सदन में स्व. अंबिका प्रसाद दिव्य की स्मृति में श्री जगदीश किंजल्क द्वारा दिव्य पुरस्कारों की घोषणा की गई। उपन्यास विधा में सर्वश्री कुसुम खेमानी को 'जड़िया बाई', तारकेश्वर उपाध्याय को 'हेमू', अरविंद जैन को 'चतुर्भुज'; व्यंग्य विधा में सुदर्शन सोनी को 'आरोहण', आलोक सक्सेना को 'पप्पू बन गया अफसर', बिहारी दुबे को 'चौंकना मना है'; कहानी विधा में आशा शर्मा को 'उजले दिन मटमैली शामें', सुमन लता श्रीवास्तव को 'कठघरे'; काव्य विधा में लक्ष्मी रूपल को 'तेरा पानी मेरा पानी', राम किशोर मेहता को 'अँधेरे का समाजवाद', गंगा शरण प्यासा को 'गंगा हजारिका', वृज श्रीवास्तव को 'ऐसे दिन का इंतजार', शैलेंद्र सिंह 'शैल' को 'तन्हा साया'; बाल साहित्य में परशुराम शुक्ल को 'परमचंद के कारनामे', घमंडीलाल अग्रवाल को 'नए-निराले गीत'; निबंध विधा में तनूजा चौधरी को 'साठोत्तर लेखिकाओं का स्त्री-विमर्श', ए. फातिमा को 'डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी के साहित्य में चित्रित ग्रामीण जीवन सभ्यता' के लिए सम्मानित किया जाएगा। □

सम्मान समारोह संपन्न

७ अप्रैल को रवींद्रनाथ त्यागी स्मृति सम्मान निर्णायक समिति द्वारा श्रीमती चित्रा मुद्गल की अध्यक्षता में की गई बैठक में सर्वश्री कमलकिशोर गोयनका, प्रताप सहगल, हरीश नवल, प्रेम जनमेजय, शारदा एवं इंदु त्यागी द्वारा डॉ. शेरजंग गर्ग को 'रवींद्रनाथ त्यागी शीर्ष सम्मान' एवं डॉ. लालित्य ललित को 'सोपान सम्मान' से सम्मानित करने का निर्णय लिया गया। रवींद्रनाथ त्यागी शीर्ष सम्मान के अंतर्गत इक्कीस हजार रुपए की नकद राशि, श्रीफल, शॉल एवं स्मृति-चिह्न प्रदान किया जाएगा तथा रवींद्रनाथ त्यागी सोपान सम्मान के अंतर्गत इक्यावन सौ रुपए की नकद राशि, सात हजार रुपए की रवींद्रनाथ त्यागी रचनावली, श्रीफल, शॉल एवं स्मृति-चिह्न प्रदान किया जाएगा। □

व्याख्यानमाला आयोजित

६ अप्रैल को नई दिल्ली में शिक्षा, संस्कृति उत्थान न्यास द्वारा केदारनाथ साहनी सभागार में मुख्य अतिथि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक डॉ. मोहन भागवत ने 'जनता को जनता की भाषा में न्याय' विषय पर विचार व्यक्त किए। उन्होंने कहा कि हमें हिंदी को अपनी अदालतों में लाना चाहिए। उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में हिंदी में काररवाई होना हर देशवासी के लिए गौरव की बात होगी। श्री अतुल कोठारी एवं श्री प्रमोद कोहली ने भी अपने विचार व्यक्त किए। अतुल कोठारी ने कहा कि भारत की भाषाओं में वे सभी क्षमताएँ हैं, जो न्यायिक क्षेत्र की किसी भी भाषा में होनी चाहिए। भारत की भाषाओं को न्यायालय में कामकाज की भाषा बनाने से जुड़ी तकनीकी एवं व्यावहारिक बाधाओं के समाधान भी खोजे जा सकते हैं। तीन दिवसीय ज्ञानोत्सव में महान्यायवादी, पूर्व न्यायाधीश और उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय के वकीलों समेत विधि क्षेत्र के कई विशेषज्ञ सम्मिलित हुए। □

हिंदी सेवा सम्मान-२०१६ घोषित

१३ अप्रैल को आगरा के केंद्रीय हिंदी संस्थान द्वारा वर्ष २०१६ के लिए सर्वश्री भारतभूषण शर्मा, सूर्यनारायण रणसुभे, अजयकुमार पटनायक, पी. माणिक्यांबा को हिंदी प्रचार एवं हिंदी प्रशिक्षण के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य के लिए 'गंगाशरण सिंह पुरस्कार'; शीला झुनझुनवाला, रोहित सरदाना को हिंदी पत्रकारिता तथा जनसंचार के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य के लिए 'गणेश शंकर विद्यार्थी पुरस्कार'; बनवारीलाल गौड़, महेंद्र प्रताप सिंह को विज्ञान तथा चिकित्सा विज्ञान एवं अभियांत्रिकी के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य के लिए 'आत्माराम पुरस्कार'; त्रिभुवननाथ शुक्ल, कैलाश चंद्र पंत को सर्जनात्मक एवं आलोचनात्मक क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य के लिए 'सुब्रह्मण्य भारती पुरस्कार'; दयाशंकर शुक्ल, महावीर सरन जैन को हिंदी माध्यम से ज्ञान के विविध क्षेत्र, पर्यटन एवं पर्यावरण से संबंधित क्षेत्र में मौलिक अनुसंधान के लिए 'महापंडित राहुल सांकृत्यायन पुरस्कार'; सत्यदेव टेंगर, जियांग जिंग ख्वे को विदेशी हिंदी विद्वान् को विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं लेखन में उल्लेखनीय कार्य के लिए 'डॉ. जॉर्ज ग्रियर्सन पुरस्कार'; देवेंद्र सिंह, उषा राजे सक्सेना को आप्रवासी भारतीय विद्वान् को विदेशों में हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं लेखन में उल्लेखनीय कार्य के लिए 'पद्मभूषण डॉ. मोटूरि सत्यनारायण पुरस्कार'; रमेश चंद्र तिवारी, कुलदीप चंद अग्निहोत्री को कृषि विज्ञान एवं राष्ट्रीय एकता के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य के लिए

'सरदार वल्लभ भाई पटेल पुरस्कार'; रामशरण गौड़, बद्री प्रसाद पंचोली को मानविकी के क्षेत्र में एवं कला, संस्कृति व विचार की भारतीय चिंतन परंपरा के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य के लिए 'दीनदयाल उपाध्याय पुरस्कार'; ठाकुर प्रसाद वर्मा, नंदलाल मेहता वागीश को भारतविद्या के क्षेत्र में विशेष योगदान के लिए 'स्वामी विवेकानंद पुरस्कार'; जगमोहन सिंह राजपूत, भगवती प्रसाद को शिक्षाशास्त्र एवं प्रबंधन में हिंदी के माध्यम से उल्लेखनीय लेखन के कार्य के लिए 'पं. मदन मोहन मालवीय पुरस्कार'; अवतार सिंह, सुरेंद्र कुमार कटारिया को विधि एवं लोक प्रशासन के क्षेत्र में हिंदी भाषा में उल्लेखनीय कार्य के लिए 'राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन, पुरस्कार से पुरस्कृत करने की घोषणा की गई। □

राष्ट्रभाषा उद्घोष अभियान का शुभारंभ

९ मार्च को नई दिल्ली में गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति तथा राष्ट्रभाषा स्वाभिमान न्यास के संयुक्त तत्त्वावधान में श्री उमाशंकर मिश्र की अध्यक्षता में हिंदी को राष्ट्रभाषा का संवैधानिक गौरव दिलाने हेतु देशव्यापी अभियान का शुभारंभ करने हेतु समारोह आयोजित किया गया, जिसके प्रथम सत्र में मुख्य अतिथि डॉ. रामशरण गौड़, गीता शुक्ला, शास्वती झलानी, नारायण कुमार ने अपने विचार व्यक्त किए। द्वितीय सत्र में मुख्य अतिथि पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि, सर्वश्री राजेंद्र मिलन, हरिसिंह पाल, वी.आर. सुरेश, आनंद अग्रवाल, राजीव पाल, विनोद बब्बर, मृणाल शर्मा, परमानंद शर्मा, भावना शुक्ला, श्रवण कुमार, रतनदीप जोशी, आलोक, रामप्रबल श्रीवास्तव, गंगाशरण 'प्यासा', रमेश कटारिया 'पारस', आरती खेड़कर, सुमन बिष्ट, सुनीता सिंह, मनीषी सिन्हा, शालिनी, श्रीलेखा नंदी, मैत्री मेहरोत्रा ने अपने विचार व्यक्त किए। इस अवसर पर सर्वश्री गंगाशरण प्यासा की 'आस्था' व 'बहुरंग चुनरिया', देवेंद्र कुमार मिश्रा की 'ये वो चेहरा नहीं' व 'दोषी कौन', आरती खेड़कर की 'चंदन बन गए मेरे गीत', मृणाल शर्मा की 'समसामयिक', सरोज गुप्ता की 'सरस्वती' की 'गूँजें-अनगूँजें', नव सप्तक साहित्य शृंखला के अंतर्गत 'यदा-कदाश्च-सर्वदा' का लोकार्पण किया गया। इस अवसर पर श्री श्रवण कुमार को 'राजभाषा विशिष्ट सम्मान २०१८' से सम्मानित किया गया। □

डॉ. सुशील कुमार पांडेय 'साहित्येंदु' सम्मानित

३० मार्च को भोपाल के मानस भवन में म.प्र. के पूर्व मुख्यमंत्री श्री बाबूलाल गौर, कथावाचक श्री उमाशंकर शर्मा 'व्यास' तथा सर्वश्री प्रभुदयाल मिश्र, रमाकांत दुबे, एन.एल. खंडेलवाल द्वारा डॉ. सुशील कुमार पांडेय 'साहित्येंदु' को उनके द्वारा रचित 'अगस्त्य' महाकाव्य के लिए नौ हजार रुपए की राशि के 'महर्षि अगस्त्य अलंकरण' से पुरस्कृत किया गया। □

अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी संपन्न

विगत दिनों डॉ. भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय के जेपी सभागार में भाषाविज्ञान विद्यापीठ द्वारा डॉ. कमल किशोर गोयनका के विशिष्ट आतिथ्य में 'प्रवासी हिंदी साहित्य की दशा एवं दिशा' पर दो दिवसीय अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया। इस अवसर पर प्रो. पुष्पिता अवस्थी की पुस्तक 'नीदरलैंड-डायरी' का लोकार्पण भी किया गया। □

गोष्ठी संपन्न

१७ अप्रैल को हैदराबाद में सतनाम आधार कबीर डेरा के तत्त्वावधान में कबीर चिंतन की १८८वीं मासिक कवि गोष्ठी एवं कबीर चिंतन का साहित्यिक कार्यक्रम श्रीमती उमादेवी सोनी की अध्यक्षता में आयोजित किया गया, जिसमें मुख्य अतिथि श्री नेहपाल सिंह वर्मा, विशिष्ट अतिथि श्री चंद्रप्रकाश दायमा ने विचार व्यक्त किए तथा सर्वश्री बी. शंकरलाल, नंदलाल यादव, सत्यनारायण, श्रीनिवास, के. राकेश, बी. राजू, केदारनाथ, जयंतराव मोतीकार, राजेश सिंह वर्मा, डी. लक्ष्मण, बी. पापा लाल, दयानंद, डी. मल्लेश ने भजन गायन किया। सर्वश्री सीता राम माने, चंद्रप्रकाश दायमा, शिवकुमार तिवारी, संत कुमार, सूरज प्रसाद सोनी, उमादेवी सोनी, नेहपाल सिंह वर्मा, रत्नकला मिश्र, नंदलाल यादव, बी.पापा लाल ने काव्य पाठ किया। संचालन श्री गोविंद अक्षय ने किया तथा धन्यवाद श्री डी. लक्ष्मण ने ज्ञापित किया। □

साहित्यिक गोष्ठी संपन्न

१२ अप्रैल को हैदराबाद के गांधी दर्शन मंडल में हिलेस की ५२०वीं साहित्यिक गोष्ठी का आयोजन डॉ. दयाकृष्ण गोयल की अध्यक्षता में किया गया, जिसमें सर्वश्री कुमुद बाला, राजनारायण अवस्थी, बृहस्पति शर्मा, जी. परमेश्वर, उमादेवी सोनी, चंद्र प्रकाश दायमा, सूरज प्रसाद सोनी, दुर्गाराज पटून, अब्दुल हमीद खान ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री गोविंद अक्षय ने किया तथा धन्यवाद सुश्री रत्नकला मिश्र ने ज्ञापित किया। □

डॉ. हरिप्रसाद दुबे सम्मानित

विगत दिनों लखनऊ में राय उमानाथबली प्रेक्षागृह में दृश्य भारती की ओर से आयोजित समारोह में प. बंगाल के राज्यपाल श्री केशरीनाथ त्रिपाठी के काव्य-संग्रह 'मनोनुकृति' पर आधारित नृत्य नाटिका का मंचन किया गया। इस अवसर पर उत्तर प्रदेश के राज्यपाल एवं मुख्य अतिथि श्री राम नाईक द्वारा डॉ. हरिप्रसाद दुबे को 'कवि साहित्यरत्न अलंकरण' से विभूषित किया गया। □

दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी की गतिविधियाँ

१२ अप्रैल को केंद्रीय पुस्तकालय के आमिर खुसरो सभागार में 'लेखक से साक्षात्कार—परिचर्चा' कार्यक्रम का विषय था 'भारत में अंग्रेजी का वर्चस्व और विश्व में हिंदी की स्थिति'। अध्यक्ष डॉ. रामशरण गौड़ ने स्वागत भाषण दिया। मुख्य वक्ता प्रो. सुरेंद्र गंभीर थे। अध्यक्षीय भाषण श्री नारायण कुमार ने प्रस्तुत किया। डॉ. लोकेश शर्मा ने सभी का आभार व्यक्त किया।

१३ अप्रैल को केंद्रीय पुस्तकालय के अमीर खुसरो सभागार में 'बाबा साहब डॉ. भीमराव अंबेडकर जयंती' पर आयोजित कवि-गोष्ठी में स्वागत भाषण डॉ. रामशरण गौड़ ने दिया। मुख्य वक्ता श्री हरी ओम आकाश थे। डॉ. हरी सिंह पाल के अलावा सर्वश्री मेहताब अचल, विजेंद्र पाल मयंक, मुख्य अतिथि श्याम सिंह शशि, लोकेश शर्मा ने अपने विचार व्यक्त किए।

१४ अप्रैल को दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी द्वारा बाग कड़े खाँ समुदाय भवन दिल्ली में डॉ. भीमराव अंबेडकर जयंती कार्यक्रम के मुख्य अतिथि सर्वश्री महेश चंद शर्मा, विनय विनम्र, प्रेम कुमार शुक्ल 'पथिक', दीपक, अजय आफतावजी, बी.एस. भारद्वाज सुश्री राशि गुप्ता, सभी ने डॉ. भीम राव अंबेडकरजी के जीवन आदर्शों एवं देश प्रेम से भरी कविताएँ सुनाईं। कवि श्री प्रेम कुमार शुक्लजी ने आल्हा रूप में देश प्रेम एवं बाबा साहेब का जीवन दर्शन प्रस्तुत किया। डॉ. रामशरण गौड़जी ने भी अपने विचार प्रस्तुत किए। अध्यक्ष श्री बे.के. चंद्रसखीजी ने महापुरुषों के आदर्शों पर चलने का संदेश दिया। श्री आर.के. मीनाजी ने धन्यवाद किया। □